भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रमाण-पत्र

(Certificate Course in Indian Knowledge System)

वैदिक विज्ञान एवं गणित

CCIKS-105

(Vadic Scienc and Mathematics)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **CCIKS- 105**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर जे. के. गोदियाल,
पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृतविभाग,
हे.न.ग.विश्वविद्यालय श्रीनगर।
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
श्री राहुल पन्त,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 सुधीर प्रसाद नौटीयाल,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

मुख्य-सम्पादक	**सह-सम्पादक**
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,	**श्री राहुल पन्त,**
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग	असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड**	**इकाई संख्या**
डॉ0 सुधीर प्रसाद नौटीयाल,	**खण्ड 1**	(इकाई 1)
असि. प्रोफे-ए.सी. संस्कृत विभाग	**खण्ड 2**	(इकाई 1)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी		
डॉ0 दिनेश कुमार,	**खण्ड 1**	(इकाई 2)
असि0 प्रोफे0 भौतिक विज्ञान		
ने.पी.जी. कॉलेज बड़हलगंज, गोरखपुर		
डॉ0 निर्भय अस्थाना,	**खण्ड 1**	(इकाई 3)
असि0 प्रोफे0 वनस्पति विज्ञान		
नेशनल पीजी कॉलेज बड़हलगंज, गोरखपुर		

प्रो0 गगन सिंह, **खण्ड 2** (इकाई 4)
विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग
निदेशक, स्कूल ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज एंड कॉमर्स
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 कान्ता प्रसाद, **खण्ड 2** (इकाई 2)
असि. प्रोफे-ए.सी. संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. श्रुतिकान्त पाण्डेय, **खण्ड 2** (इकाई 3)
असि0 प्रोफे0, संस्कृत विभाग, एमिटी यूनिवर्सिटी, उत्तरप्रदेश,
नोएडा, जे-134, पुराना रोशनपुरा, नजफगढ़, नई दिल्ली

श्री राहुल पन्त **खण्ड 3** (इकाई 1 से 3)
असि. प्रोफे-ए.सी. संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 नीरज कुमार जोशी, **खण्ड 4** (इकाई 1 से 4)
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

आवरण पृष्ठ

डॉ0 नीरज कुमार जोशी, असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139

कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

पुस्तक का शीर्षक- वैदिक विज्ञान एवं गणित CCIKS- 105

प्रकाशन वर्ष : 2025

ISBN No.

मुद्रक:

नोट:- इस अध्ययन सामग्री का प्रकाशन छात्र हित में शीघ्रता के कारण किया गया है। सम्पादित संस्करण का प्रकाशन अगले वर्ष सम्भव है । इस सामाग्री का उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित प्रशासनिक अनुमति के बिना अन्यत्र कहीं नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A) वैदिक विज्ञान का सैद्धान्तिक परिचय	**पृष्ठ संख्या 1- 4**
इकाई-1 वैदिकविज्ञान के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ	05-23
इकाई-2 वेदों में भौतिक एवं रसायन विज्ञान के तत्व	24-39
इकाई-3 वैदिक वनस्पति एवं पर्यावरण विज्ञान	40-51
खण्ड- दो (Section-B) विज्ञान के विविध आयाम	**पृष्ठ संख्या 52**
इकाई-1 वैज्ञानिक भाषा के रूप में संस्कृत	53-67
इकाई-2 खगोल विज्ञान	68-84
इकाई-3 वैदिक मनोविज्ञान	85-97
इकाई-4 वैदिक अर्थशास्त्र	98-127
खण्ड- तीन (Section-C) वैदिक गणित का परिचय	**पृष्ठ संख्या 128**
इकाई-1 वैदिक गणित का उद्भव एवं विकास	129-142
इकाई-2 भारतीय गणित के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ परम्परा	143-155
इकाई-3 उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित (जैन, बौद्ध आदि)	156-167
खण्ड- चार (Section-D) सृष्टि विज्ञान	**पृष्ठ संख्या 168**
इकाई-1 सृष्टि की वैदिक अवधारणा	169-191
इकाई-2 सृष्टि संरचना एवं स्वरूप	192-210
इकाई-3 सृष्टि की उत्पत्ति के विविध सिद्धान्त	211-224
इकाई-4 ब्रह्माण्ड के अवयव	225-235

खण्ड- एक (Section-A)

वैदिक विज्ञान का सैद्धान्तिक परिचय

इकाई.1 वैदिक विज्ञान के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ

इकाई की रूप रेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आयुर्विज्ञान के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ
1.4 गणित के प्रमुख आचार्य परम्परा एवं ग्रन्थ
1.5 खगोल विज्ञान के प्रमुख आचार्य परम्परा एवं ग्रन्थ
1.6 कृषि विज्ञान के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ
1.7 रसायनशास्त्र के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ
1.8 सारांश
1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 उपयोगी पुस्तकें
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों,

भारत का प्राचीन वैज्ञानिक ज्ञान वेदों, उपवेदों और विभिन्न शास्त्रों में संकलित है। ऋषियों और आचार्यों ने विभिन्न क्षेत्रों में गहन अध्ययन और प्रयोग किए, जिनका प्रभाव आज भी विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में देखा जा सकता है। आयुर्वेद, गणित, खगोलविज्ञान, कृषिविज्ञान और रसायनशास्त्र जैसे विषयों में भारतीय विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके द्वारा लिखित ग्रंथों में न केवल वैज्ञानिक तथ्यों का उल्लेख है, बल्कि वे प्राचीन भारतीय समाज की समृद्ध बौद्धिक परंपरा को भी दर्शाते हैं। इस इकाई के माध्यम से हम वैदिक विज्ञान के महान वैज्ञानिक आचार्यों से परिचित होगें, जिन्होनें आयुर्विज्ञान, गणितविज्ञान, खगोलविज्ञान, कृषिविज्ञान एवं रसायनविज्ञान के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही हम उनके व्यक्तित्व एवं उनके द्वारा रचित ग्रन्थों का सामान्य परिचय भी प्राप्त करेंगें।

1.2 उद्देश्य

- वैदिक विज्ञान के प्रमुख आचार्य के एवं उनके ग्रन्थों को जानेगें।
- आर्युविज्ञान सम्बन्धित प्राचीन आचार्य परम्परा एवं ग्रन्थ परम्परा को जानेगें।
- प्राचीन गणित शास्त्रीय आचार्य परम्परा एवं ग्रन्थ परम्परा को जानेगें।
- खगोल विज्ञान सम्बन्धित आचार्य परम्परा एवं ग्रन्थ परम्परा को जानेगें।
- कृषि विज्ञान के आचार्य एवं ग्रन्थों को जानगें।
- रसायन विज्ञा की आचार्य परम्परा एवं ग्रन्थ परम्परा को जानेगें।

1.3 आयुर्विज्ञान के प्रमुख आचार्य परम्परा एवं ग्रन्थ

संस्कृत विश्व की सबसे समृद्ध और प्राचीनतम भाषा है, इस भाषा में वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान की धारा नितप्रवाहित हो रही है। वेद, वेदांग, दर्शन, धर्मशास्त्र, आदि के साथ-साथ इसमें मानव कल्याण के लिए आयुर्वेद का ज्ञान भी निहित है। आयुर्वेद से मानव के स्वास्थ्य का रक्षण और रोगों का शमन किया जाता है, ताकि मानव का जीवन रोग मुक्त रहे।

चरकसंहिता के अनुसार आयुर्वेद के मूल प्रणेता के रूप में ब्रह्मा प्रतिष्ठित है। चरक के मत में ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति, प्रजापति से अश्विनी कुमार एवं अश्विनी कुमारों से यह ज्ञान इन्द्र ने ग्रहण किया।आचार्य सुश्रुत के अनुसार आयुर्वेद का आदि अन्त अज्ञेय है। उनके अनुसार आयुर्वेद अनादि, शाश्वत अक्षुण्ण प्रवाह मान धारा है जो सृष्टि के पूर्व से भी विद्य मान है।

सत्रहवीं सदी के 'भावप्रकाश' नामक ग्रन्थ में भी आयुर्वेद की गंगा ब्रह्मकमण्डलु से प्रवाहित उल्लिखित है। आयुर्वेद की उत्पत्ति के पश्चात्द प्रजापति ने इसके अङ्गों सहित आयुर्वेद का अध्ययन किया और दक्ष प्रजापति से अश्विनी कुमारों ने इसे आत्मसात किया यथा- **'ततःप्रजापतिंदक्षंदक्षंसकलकर्मसु।विधिर्धीनीरधिंसाङ्गमायुर्वेदमुपादिशत्॥'** इस प्रकार आयुर्वेद की दक्ष प्रजापति से लेकर सुश्रुतादि ऋषियों पर्यन्त आयुर्वेद की एक दीर्घ परम्परा चली। अब इस शास्त्र के सन्दर्भ में कुछ प्रश्न उठते है कि जैसे इस शास्त्र का प्रतिपाद्य क्या होगा? आयुर्वेद के

ग्रन्थों में सामान्यतः यह निर्देश प्राप्त होता ही है कि इस शास्त्र विशेष का विषय क्या है यथा भावप्रकाश में वर्णित है-

'आयुर्हितमहितंव्याधिर्निदानंशमनंतथा।

विद्यतेयत्रविद्वद्भिःसआयुर्वेदउच्यते॥" अर्थात् जिस शास्त्र में आयु के लिए हितकर और अहित कर पदार्थों का उल्लेख हो और रोगों का प्रधान कारण और उसके शमन का निदान वर्णित हो उस शास्त्र को आयुर्वेद कहते है। अब प्रश्न उठता है कि आयु क्या है? इस शास्त्र के अनुसार शरीर और आत्मा के संयोग की अवधि का नाम आयु है।

आयुर्वेद की आचार्य परम्परा और उनके ग्रन्थ-

वैदिक परम्परा के आचार्य- वैदिक साहित्य में दो प्रकार से भिषक का उल्लेख प्राप्त होता है-(१) दैवभिषक् और (२) मानुष भिषक्। दैवभिषक् अग्नि, रुद्र, वरुण, इन्द्र, अश्विनौकुमार, मरुत एवं सरस्वती को माना गया है। इस परम्परा में सरस्वती स्त्री वाची है। परमात्मा को देवों में सबसे बडा़ वैद्य बताया गया है। सर्वानुक्रमणिका नामक ग्रन्थ में वेद मन्त्रों में आए आयुर्वेदिक मन्त्रों के दृष्टा ऋषियों का नाम भी प्राप्त होता है, जिनमें- अथर्वा, अत्रि, अथर्वाङिरा, अंगिरा, वृहस्पति, विश्वामित्र, मनु, गौतम, शौनक, सविता आदि ७६ की गणना ग्रन्थ में दी गई है।

ब्रह्मा- ब्रह्मा को आयुर्वेद का आदि प्रवर्तक और प्रथम उपदेष्टा कहा गया है। एक लाख श्लोकों से युक्त एक हजार अध्यायों वाली उनकी रचना "ब्रह्मसंहिता" नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ सृष्टि काल से आयुर्वेद के होने की पुष्टिकरता है। जब कोई वस्तु अनादि काल से परम्परा में प्रवाहित होती है तब उसे शाश्वत कहते है। अतः आयुर्वेद को शाश्वत कहा जा सकता है। ब्रह्मा को सृष्टि में ज्ञान का प्रसार कभी कहा गया है। जलप्लावन जैसी स्थितियों के पश्चात्पृथ्वी पर पुनःऔषधियों और अन्नकी उत्पत्ति हुई। इन्हीं औषधियों के रस से परमशक्ति संपन्न परमात्मा द्वारा ब्रह्मा जी का सातवाँ जन्म हुआ और उन्हीं के साथ अन्य परम सप्तऋषि भी प्रकट हुए हरि वंश-पुराण में इसका उल्लेख प्राप्त होता है- **'यदिदंसप्तमंजन्मपद्मजंब्रह्मणोनृपः'** शब्द कोशों और पुराणों के अनुसार स्वयंभू, विरंचि, पितामह, हिरण्य गर्भादि ये पर्यायवाची नाम ब्रह्मा के लिए आए है। इनके द्वारा रचित मूल संहिता प्राप्त नहीं होती है।

दक्षप्रजापति- चरक के अनुसार ब्रह्मा से आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति को प्राप्त हुआ। सुश्रुतसंहिता, काश्यपसंहिता, अष्टांगसंग्रह, अष्टांगहृदय, भावप्रकाश आदि सभी ग्रन्थोंने भी स्वीकारा है कि ब्रह्मा द्वारा दक्ष प्रजापति को आयुर्वेद का ज्ञान दिया था।

अश्विनीकुमार- विवस्तान्के चार पुत्रों में से अश्विनीकुमारद्वय भी थे। युगल रूप में ये दोनों कायचिकित्सा एवं शल्य चिकित्सा दोनों के प्रतीक थे। ये देव-मनुष्य और पशु चिकित्सा में अत्यन्त निपुण थे। विशेष रूप से इन कुमारों की ख्याति देवताओं के वैद्य के रूप में हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम "आश्विन्संहिता" उल्लेख कई प्राचीन ग्रन्थों में आता है। हठ योग के अनुसार वाम और दक्षिणनासापुटों को ही अश्विनी कुमार कहा है। इन्हीं को इड़ापिंगला भी कहा गया है।

इन्द्र- सुश्रुत संहिता के अनुसार धन्वन्तरि ने इन्द्र से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था। त्रेता युग से पूर्व संसार की अवस्था रोग रहित थी। त्रेतायुग के प्रारम्भ में धर्म का एक चरण नष्ट हो चुका था। दक्ष प्रजापति का यज्ञ नष्ट होने से ज्वरों की उत्पत्ति हुई थी। इस स्थिति में भृगु, अंगिरा, अत्रि आदि ऋषि

इन्द्र के साथ मिलकर हिमालय पर एकत्रित हुए। इन्द्र ने हिमालय वासियों की शारारिक अवस्था को देखकर कहा- हे ऋषियों! आयुर्वेद के ज्ञान का समय आ गया है, आप सब इस ज्ञान को मुझ से ग्रहण करें और चिकित्साकार्य में प्रवृत हों।

इन्द्र से आयुर्वेद ज्ञान प्राप्त ऋषि-

महर्षि भृगु- भृगु ब्रह्माजी के मानस सन्तान थी। इतिहासकारों के अनुसार भृगु अथर्ववेदीय सूक्तों के भी दृष्टा थे। महर्षि भृगु को धर्म शास्त्र का उपदेष्टा भी माना जाता है। ज्योतिष शास्त्र में भी भृगुसंहिता नामक एक वृहद ग्रन्थ उपलब्ध है।

महर्षि अंगिरा- बृहत सर्वानुक्रमणी के अनुसार अथर्ववेदीय के कुछ सूक्तों के दृष्टा भृगु एवं अंगिरा संयुक्तरूप में माने गये हैं। अंगिराऋषि को भी ब्रह्म का मानस पुत्र कहा जाता है। परन्तु आयुर्वेद सम्बन्धी इनका कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है।

महर्षि अत्रि- धर्म, वास्तु विद्या तथा ज्योतिष के ज्ञाता महर्षि अत्रि आयुर्वेद के भी मर्मज्ञ थे। बङौदा पुस्तकालय में "आत्रेयसंहिता" से इनका एक पत्र सुरक्षित है। मत्स्यपुराण औ ररामायण में इनका होना स्वीकार किया गया है। रामायण के अनुसार इनकी पत्नीका नाम अनुसया था जो आयुर्वेदज्ञ की भार्या होने से अनेक आयुर्वेदीय क्रियाएँ जानती थी।

महर्षि वसिष्ठ- सप्तऋषियों में स्थान प्राप्त महर्षि वसिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र माने जाते हैं। रामायण के अनुसार ये दशरथ के पुरोहित भी थे। चरक संहिता में भी इनका नामोल्लेख मिलता है। अष्टांगहृदय में कास प्रकरण में महर्षि वशिष्ठ के उत्तमचिकित्सक होने का प्रमाण मिलता है। "वसिष्ठसंहिता" इनके ग्रन्थ का नाम है जिसकी उपलब्धतता के विषय में अभी प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं।

महर्षि कश्यप- महाभारत के अनुसार ऋषि कश्यप को मरीची का मानस पुत्र माना जाता है। अनेक शास्त्रों के ज्ञाता महर्षि कश्यप ने आयुर्वेद का ज्ञान अपने पुत्र इन्द्र से प्राप्त किया था।

महर्षि अगस्त्य- महर्षि अगस्त्य त्रेता युग के प्रारम्भ में माने जाते हैं, इन्हें व्याकरण, धर्मशास्त्र, कल्पसूत्र, तर्कशास्त्र, नाट्य, ज्योतिष और धनुर्वेद का ज्ञाता भी माना जाता है। आदिकाव्य रामायण के अनुसार इनके पास दीर्घायुप्रदरसायन माना जाता है। इनकी पत्नी लोपामुद्रा और इनके भाई दोनों ने इनसे दीर्घायुप्राप्त की थी। भास्कर से ही इन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था।

पुलस्त्य- सप्तऋषियों में इनकी गणना प्रसिद्ध है। इनके पुत्रविश्रवा और पौत्र का नाम रावण था। रावण को आयुर्वेद का ज्ञान इसी कारण से पैतृक प्रवृत्ति से होने का अनुमान लगाया जा सकता है। ऋषिपुलस्त्य का कोई भी आयुर्वेद विषयक ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है।

वामदेव-ऋषि वामदेव को ऋग्वेद के दृष्टा के रूप में भी ख्याति प्राप्त है। इनका जन्म अंगिरा कुल में माना जाता है। रामायण में राजा दशरथ के वशिष्ठ एवं वामदेव मन्त्री पद पर अलंकृत थे, इन्हें ज्योतिष और आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त था।

असित- काश्यप संहिता के अनुसार ऋषि कश्यप ने परम तप किया था जिसके परिणाम स्वरूप असित की उत्पत्ति हुई थी। असित की भार्या एक पर्णा थी जिनसे देवल नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। देवल और असित दोनों कश्यप गोत्र में उत्पन्न आयुर्वेद के ज्ञाता थे।

गौतम- यह नाम संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर आता है। इन्हें अंगिरा कुल में उत्पन्न भी माना जाता है। इन्हें धर्म, शिक्षा, व्याकरण के साथ पशुशास्त्र का भी ज्ञान था। आयुर्वेद पर इनका कोई भी ग्रन्थ प्राप्त नहीं है।

लौकिक परम्परा के प्रसिद्ध आयुर्वेदीय आचार्य-

वैदिक परम्परा के पश्चात्लोक कल्याण की भावना से आयुर्वेद का ज्ञान भूलोक पर बहुत विस्तृत हुआ। लौकिक परम्परा में आयुर्वेद के अनेक संहिताकार और टीकाकार हुए।

भरद्वाज-पृथ्वी पर आयुर्वेद के ज्ञान की धारा प्रवाहित करने वाले ऋषि भरद्वाज इस विषय के सर्व प्रथम आचार्य थे। चरक संहिता में इनका विशेष उल्लेख मिलता है। चरक संहिता में इन्हें प्रथम चिकित्साशास्त्री भी कहा गया है। भरद्वाज को ऋषि अंगिरस का वंशज भी माना जाता है। 'भैषजकल्प' नामक ग्रन्थ इनकी कृति मानी जाती है।

आत्रेय- चरकसंहिता में अनेक स्थानों पर आचार्य आत्रेयका नाम आया है। ऋषि अत्रि ने इन्द्रसे विद्याग्रहणकी थी एवं अपने पुत्र आत्रेय को आयुर्वेदके ज्ञान के लिए आचार्य भरद्वाज के पास भेजा था। पुनर्वसु आत्रेय ने अपने छः शिष्यों को आयुर्वेद का ज्ञान प्रदान किया- अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि। इन आचार्यों की क्रमशः रचनाएं अग्निवेशतन्त्र, भेलसंहिता, जतूकर्णसंहिता, पराशरतन्त्र, हारीतसंहिता और क्षारपाणितन्त्र।

धन्वन्तरि- इन्हें भगवान विष्णु का अवतार भी माना जाता है। भगवान विष्णु की तरह इन्हें पालक कहा गया है जो लोगोंके स्वास्थ्य के पालक हैं। वैदिककाल में जो महत्त्व अश्विन कुमारों का था वहीं महत्त्व लोक में समय के साथ धन्वन्तरि को मिला। धन्वन्तरि के हाथों में अमृत कलश दिखाया जाता है उसी प्रकार अश्विन कुमारों के हाथ में जीवन प्रदायक मधुकलश होता था। धन्वन्तरि शल्यचिकित्सा में प्रधान थे। दिवोदासधन्वन्तरि ने चिकित्सादर्शन और चिकित्साकौमुदी इन दो प्रधान ग्रन्थों के साथ-साथ योगचिन्तामणि, सन्निपातकलिका, धातुकल्प, अजीर्णामृतमञ्जरी, धन्वन्तरि निघण्टु, रोगनिदान, वैद्यचिन्तामणि, वैद्यभास्करोदय, चिकित्सासारसंग्रह इत्यादि ग्रन्थ भी है।

सुश्रुत- 'सौश्रुततन्त्र' के प्रणेता आचार्य सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र थे। उपनिषत्काल इनका समय माना जाता है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'सुश्रुतसंहिता' शल्यशास्त्र का प्रमुखग्रन्थ है। काशिराज दिवोदासधन्वंतरि ने सुश्रुत्, औषधेनव, वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्यगोपुररक्षित आदि शिष्योंको पढाया। अध्ययन के पश्चात् आचार्य सुश्रुतने 'सुश्रुतसंहिता' की रचना की।

चरक- महर्षिचरक (ई०पू०द्वितीयशताब्दी) में अग्निवेश तन्त्र को पुनः प्रति संस्कृत करने बाले ऋषि हैं। वर्तमान में उपलब्ध चरकसंहिता वास्तव में अग्निवेश तन्त्र है। इस संहिता में वर्णित विषयोंको आचार्य आत्रेय ने अग्निवेश, जतूकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि अपने इन शिष्यों को पढाया। इसके पश्चात सभी शिष्यों ने अपने अपने नाम से ग्रन्थों की रचना की। शिष्य अग्निवेश द्वारा रचित 'अग्निवेशतन्त्र' को ही द्वितीय शताब्दी में पुनः सम्पादित किया। इस ग्रन्थ में कुल आठ स्थान है- सूत्र, निदान, विमान, शरीर, इन्द्रिय, चिकित्सा, कल्प, और सिद्धि है। इस ग्रन्थ में कुल १२० अध्याय है। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आठ अंगों का वर्णन है। आयुर्वेद के उपलब्ध ग्रन्थों में यह सबसे

प्राचीनतम् है। कायचिकित्सा और पंचकर्मका वर्णन इस ग्रन्थ में व्यवस्थित वर्णन है। औषधि वर्णन भी इस ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय है।

वाग्भट- भारतीय वाङ्मय में अनेक वाग्भट पृथक-पृथक विषयों के विशेषज्ञ के रूप में उल्लिखित हैं। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टांगहृदय' के रचियता का समय १३वीं शताब्दी निर्धारित है। इस ग्रन्थ में रसायनतन्त्र का विशेष ग्रन्थ है। यह पद्यात्मक ग्रन्थ है। दक्षिण भारत के वैद्यों में ग्रन्थ बहुत प्रचलित है। इस ग्रन्थ पर अनेक संस्कृत टिकाएं उपलब्ध हैं।

1.4 गणित के प्रमुख आचार्य परम्परा एवं ग्रन्थ

भारतीय ज्ञान परंपरा में प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का अत्यंत महत्व है। संस्कृत ग्रन्थों में विद्यमान ज्ञान विज्ञान के विविध तत्व संपूर्ण वाङ्मय में भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय ज्ञान विज्ञान परंपरा में प्रारंभिक वैदिक काल से ही ज्ञान के सभी अंगों रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, कृषि विज्ञान, आयुर्विज्ञान, गणित विज्ञान आदि सभी विषयों की समय-समय पर अनेक आचार्य ने विवेचना तथा नवीन चिंतन प्रस्तुत किए हैं। इन आचार्य ने पूर्व में निहित ज्ञान को समृद्ध करने के साथ ही नवीन तथ्यों ज्ञान के सरल सूक्ष्म रूप को सर्वसुलभ करने का कार्य भी किया।

भारतीय विद्या परंपरा में ज्ञान के अनेक रूपों में गणित को विशेष महत्व प्रदान किया गया है गणित विज्ञान को सभी शास्त्रों में शीर्षस्थ कहते हुए आचार्य लिखते हैं-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।

तद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि वर्तते॥

गणित को सर्वाधिक महत्व प्रदान कर जिन आचार्य ने गणित को समृद्ध किया एवं भारतीय ज्ञान परंपरा को गौरव प्रदान करने का कार्य किया उनका सूक्ष्म विवेचन यहां प्रस्तुत है-

आर्यभट्ट- संस्कृत वाङ्मय में प्रचीन काल से ही यत्र तत्र गणित शास्त्र की विवेचना होती रही है। गणित शास्त्र का प्रारंभिक क्रमिक विकास 'आर्यभटीयम्' से ही प्रारंभ हुआ है। गणित शास्त्र को स्वर्णिम प्रगति प्रदान करने में इनका सर्वाधिक योगदान है। आर्यभट्ट का जन्म 476 ईस्वी में पटना के सन्निकट स्थान कुसुमपुर में माना जाता है। इनके द्वारा गणित शास्त्र पर लिखी गई उनकी पुस्तक '**आर्यभटीयम्**' गणित शास्त्र का एक प्राचीन प्रमाणिक ग्रंथ हैं। इस ग्रंथ को आचार्य ने वैज्ञानिक पद्धति के अनुरूप चार भागों में विभाजित किया है। इन्हीं में से पादद्वय गणित तथा खगोल विषय से संबंधित है।

गणित से संबंधित अनेक विषय पर इन्होंने लगभग 33 सूत्र दिए हैं जिसमें अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, और त्रिकोणमिति जैसे विषयों पर सरल व्याख्या प्रस्तुत की है। इन्होंने संख्या लिखने की अनोखी रीति का निर्माण, पाई का सूक्ष्म मान, वर्गमूल, घनमूल, त्रैराशिक नियम, बीजगणितीय प्रक्रियाएं, रेखा गणित प्रक्रियाएं आदि विषयों की सूक्ष्म विवेचना की है। वर्गमूल पद्धति की व्याख्या करते हुए आचार्य लिखते हैं-

भागं हरेदवर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन।

वर्गादवर्गे शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मूलम्॥

इसका तात्पर्य है कि वर्ग के अंतिम स्थान पर बड़ी से बड़ी जिस वर्ग संख्या को घटा सकते हैं, उसे घटा देना चाहिए। हमेशा वर्गमूल को दोगुनी से अवस्थित संख्या को भाग दे देना चाहिए। भाग कर

देने से जो प्राप्त लब्धि के वर्ग को उसके आगे अवस्थित वर्ग स्थान से घटाओ जो संख्या पृथक पंक्ति में रखी हुई होती है वह संख्या वर्गमूल को सूचित करती हैं।

लल्ल- गणितशास्त्र परम्परा में आर्यभट्ट के पश्चात् आचार्य लल्ल का उल्लेख मिलता है। आचार्य लल्ल को आर्यभट्ट का शिष्य भी माना जाता है-

ब्रह्मगुप्त- गणित शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान आचार्य ब्रह्मगुप्त भारतीय ज्ञान परंपरा में सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ विद्वानों में से एक समझ जाते हैं उनके द्वारा प्रतिपादित गणित विषयक सिद्धांतों का सर्वकालिक महत्व है।ब्रह्मपुत्र का जन्म 598 ईस्वी में हुआ उनकी कर्मभूमि प्रसिद्ध उज्जैन नगरी थी। मात्र तीस वर्षों की अवस्था में ही उन्होंने गणित तथा ज्योतिष शास्त्र पर सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ '**ब्राह्मस्फूटसिद्धान्त**' की रचना की। यह शास्त्र दो भागों में विभक्त है जिसमें दो अध्याय गणित शास्त्र से संबंधित है एवं अतिरिक्त सभी ज्योतिष शास्त्र से संबंधित है गणित शास्त्र परंपरा में इस ग्रंथ का अत्यन्त महत्व है। गणित विषयक अध्यायों में अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामिति के सूत्र प्राप्त होते हैं। इसका अंग्रेजी अनुवाद T. Olebrooke द्वारा किया गया जो सन् 1917 में लंदन से प्रकाशित हुआ था। आचार्य ब्रह्मगुप्त के अनुसार एक अच्छा गणक वही है जो गणित की 20 क्रियो तथा आठ व्यवहारों का ज्ञान रखता हो-

परिकर्मविंशतिमिमां संकलिताद्यां पृथग्विजानाति।
अष्टौ व व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः ॥

आचार्य ब्रह्मागुप्त द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में परिकर्म के २० भेद, व्यवहार ८ भेद, कुट्टक समीकरण, समखात, सूची के घनफल निकालने के नियम, गुणोत्तर श्रेणी के योग नियम, एवं चतुर्भुज के परिगत वृत्त की त्रिज्या निकालने का भी नियम बताया। इनके द्वारा पाइथागोरस प्रमेय की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है-

कर्णकृतेः कोटिकृतिं विशोध्य मूलं भुजो भुजस्य कृतिम्।
प्रोह्य पदं कोटि कोटिबाहुकृतियुतिपदं कर्णः ॥

अर्थात् – कर्ण^२ - कोटि^{२} = भुज^२

कर्ण^२ – भुज^२ = कोटि^{२}

कोटि^{२} + भुज^२ = कर्ण^२

आचार्य ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रतिपादित गणितीय सिद्धान्त आज भी प्रासाङ्गिक है। गणितशास्त्र में आचार्य का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस बात पर किञ्चित भी सन्देह नही कि आचार्य ब्रह्मगुप्त भारतीय गणित परम्परा के एक महान गणितज्ञ है।

श्रीधर- श्रीधराचार्य भारतीय गणित शास्त्र परम्परा के एक महान गणितज्ञ है। इनके द्वारा प्रतिपादित गणितशास्त्र के नियमों का अत्यन्त महत्त्व है। श्रीधराचार्य का जन्म समय 750 ई. के लगभग माना जाता है। सुधारकर द्विवेदी जी के अनुसार 'न्यायकन्दली' नामक ग्रन्थ में इनके पिता बलदेव एवं माता अब्वोका थीं। दक्षिणराढ़ो देश में भूरिसृष्टि नाम का गांव इनका जम्न स्थान था। इनके द्वारा गणितशास्त्र पर लिखी गई पुस्तक का नाम 'त्रिशतिका' 'पाटीगणित', बीजगणित (लुप्त) है। गणितशास्त्र विषय ग्रन्थ 'त्रिशतिका' ग्रन्थ में 300 श्लोकों में श्रेढ़ी व्यवहार, श्रेत्र व्यवहार, चिति व्यवहार, राशिव्यवहार, एवं छाया व्यवहार के नियमों की विवेचना है। बीजगणितीय विषय का

ज्यामितीय उपचार करने वाले ये अकेले व्यक्ति थे। इनके द्वारा गणितशास्त्र पर लिखे गए इनके मौलिक सिद्धान्त ही इनको गणितपरम्परा में विशेष स्थान प्राप्त कराते हैं।

आचार्य महावीर- जैन धर्मावलम्बी महावीराचार्य राजा राष्ट्रकूटवंशीय जैनधर्मी राजा प्रथम अमोघवर्ष राज्य के आश्रित थे। उनका समय शके 775 के आसपास माना जाता है। महावीर आचार्य की गणित शास्त्र से सम्बन्धित 'गणितसारसंग्रह' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में उन्होनें लघुत्तम समापवर्त्य, चतुर्भुज के क्षेत्रफल,भिन्नों, श्रेढियों, आयतवृत्त तथा अंकगणितीय एवं श्रेत्रगणितय विषयक नियमों का प्रतिपादन किया है।

भास्कराचार्य- भास्कराचार्य का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त में सह्यादि के समीप विज्जडविड नामक ग्राम में १०३६ शकाब्द (1114 ई.) में हुआ था। आचार्य भास्कर शाण्डिल्य गोत्र के बाह्मण कुल में उत्पन्न हुये थे। इनके पिता का नाम महेश्वर वे ही इनके गुरू थे। इनकी गणित शास्त्रीय सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ 'लीलावती' है। जिसमें उन्होनें अंकगणित, बीजगणित, और ज्यामिति से सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। भास्कराचार्य के इस ग्रन्थ को प्रमुख तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम खण्ड में परिभाषा, अङ्कों के स्थान, अभिन्न-भिन्न परिकर्माष्टक, गुणक कर्मादि श्रेणी व्यवहारापर्यन्त अनेक व्यवहारगणितीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। द्वितीय खण्ड में श्रेत्रव्यवहार, त्रिभुज, चतुर्भुज, अनेक भुजवृत्त आदि के फल की विधि दर्शायी गई है। तृतीय खण्ड में खातव्यवहार से अंकपाशपर्यन्त सात व्यवहारों का सन्निवेश है। भास्कराचार्य ने 'लीलावती' ग्रन्थ में वैज्ञानिक एवं आसान भाषा में गणितीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

नारायण पंडित- नारायण पंडित का काल १३५६ ई. माना जाता है। इनका अपर नाम नारायण दैवज्ञ है। नारायण दैवज्ञ के पिता का नाम नृसिंह दैवज्ञ है। गणित शास्त्र सम्बन्धित आचार्य के प्रमुख दो ग्रन्थ है– गणित कौमुदी एवं बीजगणितावतंस । गणित कौमुदी १४ अध्यायों मे विभक्त है। इसमें अंकगणित के आठ परिकर्म, श्रेढ़ी का प्रयोग, त्रिभुजात्मक अंको के योग पद्धित का निर्माण आदि विषयों का विवेचन किया गया है। बीजगणितावतंस में बीजगणितीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है तथा मान और अवर्गात्मक संख्याओं के वर्गमूल निकालने की विधि का विवेचन किया है।

माधव- आचार्य माधव का जन्म सन् १४०० ई. में माना जाता है। इन्होनें **वेण्वारोह** नामक ग्रन्थ की रचना की है। १९५६ ई में के.वी. शर्मा के द्वारा मलयाली टीका के साथ इसका संपादन किया है। इस ग्रन्थ में आचार्य नें चन्द्रमा की स्पष्ट गतियों का विचार किया है तथा त्रिकोणमिति सूक्ष्मताएँ एवं पाई के मान आदि विषयों का विवेचना किया है।

परमेश्वर- आचार्य परमेश्व का जम्न सन् १४३० ई. में अलट्टर नामक ग्राम में माना जाता है । आचार्य परमेश्व को दृग्गणित का जनक कहा जाता है। गणित शास्त्र से सम्बन्धित इनकी रचना दृग्गणित तथा गोलदीपिका नामक ग्रन्थ है। दृग्गणित का सम्पादन सन् १९६३ में के. वी. शर्मा द्वारा किया गया है। इन्होनें मूल ग्रन्थ के साथ-साथ गणित शास्त्रीय अन्य कई ग्रन्थों पर टीकाएँ भी लिखी है।

नीलकंठ सोमयाजी- आचार्य नीलकंठ दक्षिण मालाबार के त्रिक्कन्ट्यूर स्थान के केल्लालूर परिवार में सन् १४४३-१५४३ ई.जन्म हुआ है। इनका अपर नाम नीलकंठ सोमसुत्वन है। इनके पिता का नाम जातदेव तथा गुरु दामोदर थे। आचार्य नें आर्यभटीयभाष्य तथा तंत्रसंग्रह नामक ग्रन्थ लिखे

है। तंत्रसंग्रह नामक ग्रन्थ में आचार्य नें बीजगणितीय सम्बन्धित विषयों के विषय में लिखा है तथा ज्यामिति आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला है।

ज्ञानराज- आचार्य ज्ञानराज का जन्म सन् १५०३ ई. में हुआ है। इनके पिता का नाम नागनाथ था। इन्होनें गणितशास्त्रीय सम्बन्धित सिद्धान्तसुन्दर एवं सिद्धान्तसुन्दरबीज नामक दो ग्रन्थ लिखे है। आचार्य ज्ञानराज ने अपने गन्थों में ज्या सारणी एवं त्रिकोणमिति आदि विषयों का विवेचन किया है।

चित्रभानु- आचार्य चित्रभानु का जन्म १४७५-१५५० ई. मध्य माना जाता है। चित्रभानु नीलकंठ सोमयाजी के शिष्य है। इनके द्वारा करणामृत नामक ग्रन्थ की रचना की गयी है। जो गणितशास्त्रीय अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है।

कमलाकर- इनका जम्न सन् १६१६ –१७०० ई. में महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार में माना जाता है। इनके पिता का नाम नृसिंह दैवज्ञ एवं गुरु दिवाकर दैवज्ञ थे । इन्होनें सिद्धान्ततत्त्वविवेक नामक ग्रन्थ की रचना की है। इनके ग्रन्थ में गणतिशास्त्रीय सम्बन्धित त्रिकोणमिति की सोपपत्तिक व्याख्या मिलती है। इसके अतरिक्त ज्योत्पत्ति आदि विषयों का विवेचन मिलता है। आचार्य कमकाकर की अन्य रचनायें ग्रहगोलतत्त्व, ग्रहसारणी तथा कौराश्युदाहरण है। मूल ग्रन्थ के अतरिक्त इन्होनें भास्कराचार्य की लीलावती पर मनोरमा टीका लिखी है।

पंडितराज जगन्नाथ- संस्कृत भाषा के महान् विद्वान पण्डितराज जगन्नाथ का जन्म सन् १६५७-१७५० ई. में माना जाता है। इनका गणतिशास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ रेखागणित एवं सिद्धान्तसम्राट् है। रेखागणितज्यामिति पर आधारित है। इसमें रेखाओं,कोणों, त्रिभुजों, चतुर्भुजों और वृत्तों के गुणों का वर्णन किया गया है। पंडितराज ने इस ग्रंथ में यूक्लिड के ज्यामिति के सिद्धांतों को सरल और स्पष्ट भाषा में प्रस्तुत किया है। उन्होंने कुछ नए प्रमेय भी दिए हैं और ज्यामिति के कई महत्वपूर्ण समस्याओं को हल किया है।

बापूदेवशास्त्री- इनका जन्म सन् १८२१ ई. में महाराष्ट के अहमद नगर जिले केटोंके गाँव में हुआ था। इनके गुरु ढुण्ढिराजमिश्र थे। गणितज्ञ आचार्य बापूदेव शास्त्री ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। रेखागणित प्रथमाध्याय, त्रिकोणमिति, प्राचीन ज्योतिषाचार्या शयवर्णन, अष्टादश विचित्र प्रशनसंग्रह, सायनवाद, मानमंदिरस्थयंत्रवर्णन, अंकगणित, तत्त्वविवेक परीक्षा।

नीलांबरशर्मा- आचार्य नीलांबरशर्मा का जन्म सन् १८२३ ई. में मैथिल ब्राह्मण परिवार में हुआ है। इन्होनें गोल प्रकाश नामक ग्रन्थ लिखा है। ज्योत्पत्ति, त्रिकोणमिति सिद्धान्त, चापीयरेखागणित सिद्धान्त, चापीयत्रिकोणमिति सिद्धान्त एवं प्रश्न इन पाँच अध्यायों में विभक्त है।

उपर्युक्त आचार्यों के अतरिक्त भी गणित शास्त्रीय अनेक आचार्य यथा केतकर, सुधाकर द्विवेदी आदि आचार्यों का महत्त्वपूर्ण का योगदान रहा है।

1.5 खगोल विज्ञान के प्रमुख आचार्य परम्परा एवं ग्रन्थ

लगधाचार्य- भारतीय ज्ञान परंपरा को पुष्ट करने वाले में खगोलीय तथ्यों की व्याख्या करने वाला आचार्य लगध का "वेदांगज्योतिष" है। विद्वानों द्वारा इनका समय 1350 ई. पू. माना गया है। इस ग्रन्थ में आचार्य लगध द्वारा सभी ऋग्वेद आदि ग्रंथों के ज्योतिष ग्रंथों का प्रतिपादन किया गया है साथ ही इनमें दो अयन, षड् ऋतुओं के समय निर्धारण, बारह मास- तपः, तपस्या, मधु, माधव, शुक्रं, शुचि आदि का वर्णन किया गया है।

आर्यभट्ट- भारतीय खगोल शास्त्र का क्रमबद्ध प्रणयन आचार्य आर्य भट्ट के समय से माना जाता है। इनके ग्रन्थ "आर्यभटीय" के अनुसार इनका जन्म 476 ई. में कुसुमपुर (बिहार) नामक स्थान में हुआ था। इनके द्वारा विरचित आर्यभट्टियम् नामक ग्रन्थ 121 श्लोकों एवं चार पादों (दशगीतिका, गणित, कालक्रिया एवं गोलपाद) में उपनिबद्ध है। आर्यभट्ट भारत के प्रथम खगोलशास्त्री थे, जिन्होंने पृथ्वी के भ्रमण सिद्धांत का निरूपण किया। आर्यभट्ट की खगोल विज्ञान सम्बन्धी तथ्यात्मक नियम औदायक प्रणाली कहलाती है, जिसके अनुसार दिन का प्रारम्भ सूर्य के भूमध्य रेखा पर उदय से होता है। इनके द्वारा प्रतिपादित सौर माडल के अनुसार सूर्य ब्रह्माण्ड के केंद्र में है एवं सभी ग्रह उसका चक्कर लगाते हैं। आर्यभट्टियम् के गोलपाद में एक उधाहरण के माध्यम से उन्होंने सूर्यादि ग्रहों की गतिशीलता एवं पृथ्वी की स्थिर आभास होने वाली प्रक्रिया को स्पष्ट किया है-जिस प्रकार नाव में बैठा हुआ व्यक्ति नाव को स्थिर तथा अन्य पदार्थों को गतिशील अनुभव करता है। उसी प्रकार वह पृथ्वी को स्थिर एवं सूर्यादि ग्रहों को गतिशील मानता है।

वराहमिहिर- ज्योतिष शास्त्र के प्रकांड विद्वान का जन्म 505 ई. कम्पिल्ल नगर में हुआ था। इन्होंने अपने पिता से ज्योतिष की शिक्षा लेने के बाद यह उज्जैन में रहने लगे। इनकी रचनाओं में पंचसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता, बृहत्जातक, लघुजातक, विवाहपटल, समाससंहिता तथा योगयात्रा प्रमुख हैं। इनकी "पंचसिद्धान्तिका"खगोल विज्ञान की दृष्टी से अति महत्वपूर्ण कृति है। इसमें पांच सिद्धांतों का उल्लेख होता है-सूर्यसिद्धान्त, पितामहसिद्धांत, रोमकसिद्धांत, पौलिशसिद्धांत एवं वशिष्ठसिद्धांत। वराहमिहिर ने आर्यभट्ट की ज्या सारणी में संशोधन कर शून्य एवं ऋणात्मक संख्याओं के बीजगणित संबंधी गुणों का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार धरती गोल है एवं उसकी कोई शक्ति है जो वस्तुओं को आकाश से अपनी और खींचती है।

लल्ल- त्रिविक्रम भट्ट के आत्मज लल्ल खगोल विज्ञान के प्रख्यात विद्वान थे। आचार्य लल्ल द्वारा प्रतिपादित "शिष्यधीवृद्धितंत्र" नामक ग्रन्थ है। इनके जन्म एवं समय के संबध में इन्होंने अपनी रचना में कोई संकेत नहीं दिए हैं, किन्तु विद्वानों द्वारा अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर इनका समय 770 शक संवत माना गया है। इन्होंने आर्यभट्ट के खगोल सम्बन्धी मतों को आधार मानकर अपने सिद्धांत का निर्माण किया। साथ ही अपने ग्रन्थ में आर्यभट्ट के विभिन्न विषयों की आलोचना की, जिसमें धरती गोल है या समतल है, राहू एवं केतु ग्रहण के मुख्य कारण हैं आदि। लल्ल तर्क देते हैं की यदि धरती समतल है तो ताड़ के वृक्ष दूर से क्यों नजर नहीं आते? इन्होंने अपने ग्रन्थ में 12 यंत्रों का उल्लेख किया है- गोल, भ्रमण, चक्र, धनुष, घड़ी, शंकु, शकट, कर्तय, पीस्टक, पाल, शलाका तथा यंत्र।

ब्रह्मगुप्त- सिद्धांत ज्योतिष के प्रकांड विद्वान आचार्य ब्रह्मगुप्त का समय 528 ई.पू. का माना जाता है। इनके पिता का नाम जिष्णु था एवं इनका निवास स्थान राजस्थान के भीनमाल क्षेत्र माना जाता है। इन्होंने ब्राह्मस्फुटसिद्धांत एवं खंड्खाद्यकरण नामक खगोलीय ग्रंथों की रचना की। गणीतीय संशोधन के कारण इन्हें विद्वानों द्वारा सुधाराचार्य की संज्ञा दी गई है। ब्रह्मगुप्त ने पृथ्वी की परिधि का ज्ञान करवाया साथ ही गणित में अनिर्धाय समीकरण को हल करने की विधि का आविष्कार जिसे चक्रवाल विधि कहा जाता है।

श्रीपति- ज्योतिषशास्त्र की विभिन्न शाखाओं के अद्वितीय विद्वान थे। विद्वानों द्वारा इनका समय 1039 ई.पू. माना गया है। इन्होंने खगोलीय गणित में कार्य किया एवं विशिष्ठ प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं-धीकोटिदकरण एवं सिद्धान्तशेखर। इनका कार्य क्षेत्र खगोलीय गणित में था। प्रबोधसेन गुप्ताचार्य के मत में श्रीपति से पहले खगोलशास्त्रीय परंपरा में ऐसा कोई आचार्य नहीं हुआ जिसने भारतीय ज्योतिष काल समीकरण में उस भाग का अन्वेषण किया जो रवि मार्ग की गति की त्रियकता से प्रभावित होता है।

भास्कराचार्य- ज्योतिषशास्त्र की अद्भुत प्रतिभा के धनी भास्कराचार्य का जन्म शक् संवत 1036 (1114ई.) शांडिल्य गोत्र में हुआ। इनके पिता का नाम माहेश्वर था। इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में- सिद्धांतशिरोमणि, बीजगणित, लीलावती तथा करकुतूहल प्रमुख हैं। सिद्धांतशिरोमणिके दो भाग हैं- गोलाध्याय एवं गणिताध्याय। गोलाध्याय में आकाश में सूदूर दृष्टीगत तारामंडल, ग्रह एवं उनके उपग्रह, अर्क मार्ग के बराबर भाग, 12 राशियों, भुवनकोश आदि का वर्णन 15 अध्यायों में किया गया है। भास्कराचार्य ने गणित ज्योतिष का विस्तार किया एवं खगोलगणित सम्बन्धी उप्पत्तियों का निराकरण किया। इनके मत में पृथ्वी की माप भूमध्य रेखा से उज्जयनी की दूरी माप कर उसे 16 से गुना कर प्राप्त होने वाला फल पृथ्वी की परिधि कहा जाता है।

कमलाकर- खगोल विज्ञान के प्रख्यात आचार्य कमलाकर का जन्म शक संवत 1530 (1630ई.) के लगभग हुआ था। इनकी प्रसिद्ध रचना "सिद्धांततत्त्वविवेक" है। इनके इस ग्रन्थ में खगोल सम्बन्धी नवीन तथ्यों का समावेश है, जिसमें तुरीय यंत्र वेध रीति का विस्तार, मेघ, उल्कापात, भूकंप आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने ध्रुव तारे की गति के विषय में अनुसनधान किया, जिसका उल्लेख खगोलीय परंपरा में इनसे पहले किसी ने नहीं किया।

रघुनाथ- भारतीय एवं यूरोपीय खगोलशास्त्र के विद्वान आचार्य रघुनाथ का जन्म भारत के तमिलनाडु प्रांत में हुआ था। खगोल विषयक इनका ग्रन्थ "ज्योतिष चिंतामणि" है, जो मूलतः तमिल भाषा में है। इन्होंने बुद्ध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल आदि ग्रहों के नामसूची एवं तारों की सूची का प्रतिपादन करते हुए दो रूपविकारी तारों का अन्वेषण किया।

नित्यानंद- आचार्य नित्यानंद कुरुक्षेत्र के समीप इंद्रापुरी के निवासी थे। इन्होंने अपने खगोलीय ग्रन्थ सिद्धांतराज की रचना 1639 ई. में की। इनके इस ग्रन्थ में 84 तारों के योगांशों का वर्णन किया गया है।

गणेशदैवैज्ञ- भारत में ग्रहगणित नाम से प्रसिद्ध खगोलीय ग्रन्थ के प्रणेता गणेशदैवैज्ञ के पिता केशव एवं माता का नाम लक्ष्मी था। विद्वानों द्वारा कौशिक गौत्र में उत्पन्न इनका निवास स्थान नंदीग्राम माना जाता है।इनकी रचनाओं में गृह्लाघव, लघुतिथिचिंतामणि, बृहत्तिथिचिंतामणि, सिद्धांतसिरोमणि टीका आदि प्रमुख है। खगोलविज्ञान के क्षेत्र में इनका प्रमुख ग्रन्थ गृह्लाघव है।

सुधाकर द्विवेदी- महामहोपाध्याय की उपाधि से सुशोभित गणित एवं ज्योतिष के विद्वान प्रसिद्ध खगोलशास्त्री सुधाकर द्विवेदी का जन्म काशी के खजूरी गाँव में सन 1860 ई. में हुआ था। इनकी दस मूल रचनाएँ हैं-दीर्घवृत्तलक्षण, विचित्रप्रश्नसमंग, वास्तवचन्द्र, द्युचचार, पिंडप्रभाकर, भ्रामररेखानिरूपण, धराभ्रम, ग्रहणकरण, गोलीयरेखागणित एवं गणतरंगिणी। वास्तवचन्द्र में इन्होंने

लल्ल, भास्कर, ज्ञानराज, गणेशकमलाकर, बापूदेवदेव आदि की खगोल सम्बन्धी रीतियों में छिद्रान्वेष करने का प्रयत्न किया है।

बालगंगाधर तिलक- गणित, ज्योतिष, विज्ञान, दर्शन एवं वेदों के प्रकांड विद्वान बालगंगाधर तिलक का जन्म 1856 ई. में हुआ। खगोलविद्या के क्षेत्र में इनकी प्रसिद्ध आंग्ल पुस्तक ओरायन(Oriyan)है। इसमें वेद, ब्राह्मण, संहिता एवं ज्योतिष ग्रंथों के आधार पर मृगशिरा नक्षत्र आदि से वेदों के रचनाकाल के समय का निर्धारण करने का उल्लेख किया गया है ।

सवाई जयसिंह- भारतीय खगोल शास्त्र की परंपरा में महाराज सवाई जय सिंह का महत्वपूर्ण योगदान है। इनका जन्म सन 1688 ई. में हुआ। मात्र 13 वर्ष की आयु में वह राज सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इन्होंने अपनी राजधानी जयनगर स्थापित की, जो कालान्तर में जयपुरनगर कहा गया। अपने शासनकालवधि में इन्होंने जयनगर, कशी, मथुरा तथा उज्जैन में ज्योतिष वेधशालाओं का निर्माण करवाया एवं भारतीय खगोल व ज्योतिष के विभिन्न तथ्यों के परीक्षण हेतु इन वेध शालाओं में नाडीयंत्र, गोलयंत्र, दिगंशयंत्र, दक्षिणोदगभित्ति एवं सम्राटयंत्रों को स्थापित किया। इन आचार्यों के अतिरिक्त ज्ञानराज, चन्द्रसिंह, शंकर बालकृष्ण दीक्षित आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने खगोल के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

1.6 कृषि विज्ञान के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ

कृषि विज्ञान मानव सभ्यता की नींव है, जो आर्थिक विकास और सामाजिक स्थिरता में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में कृषि विज्ञानका इतिहास अत्यंत प्राचीन है, जिसका उल्लेख वेदोंएवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों में उपलब्ध होता है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक कृषि ने भारतीय संस्कृति, परंपरा और जीवनशैली को आकार दिया है। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में कई प्रमुख आचार्य और विद्वान हुए हैं, जिन्होंने अपने ज्ञान और अनुभव से कृषिविज्ञान की विभिन्न पद्धतियों का विकास तथा उनको समृद्ध किया है। इन आचार्यों ने न केवल पारंपरिक विधियों को समृद्ध किया, अपितु नई तकनीकों और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को भी अपनाया। उनके योगदान से कृषि के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि फसल उत्पादन, भूमि प्रबंधन, जल संरक्षण आदि को समझने में मदद मिली है,उन प्रमुख आचार्यों और उनके ग्रंथों पर ध्यान केंद्रित करेंगे, जिन्होंने कृषि विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। कृषिविज्ञान के प्रमुखा आचार्य निम्नवत है-

महर्षि पराशर- "कृषि पराशर" रचित एक प्राचीन ग्रंथ है, जिसे **महर्षि पराशर** द्वारा रचा गया माना जाता है। इस ग्रंथ में कृषि को जीवन का आधार बताया गया है। इसमें कहा गया है कि अन्न सभी प्राणियों का पोषण करता है और अन्न का उत्पादन केवल कृषि के माध्यम से ही संभव है। इसलिए कृषि को सर्वोच्च कर्म के रूप में अपनाने की प्रेरणा दी गई है। ग्रंथ में जल को कृषि का प्रमुख आधार बताया गया है और जल संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। इसमें विभिन्न ऋतुओं और ग्रहों की स्थिति के आधार पर वर्षा के प्रभाव का उल्लेख किया गया है। इसके अलावा, कृषि कार्य में उपयोग होने वाले पशुओं की देखभाल और गोशालाओं की स्वच्छता पर जोर दिया गया है, ताकि पशु स्वस्थ रहें और कृषि कार्य को सुगम बना सकें। कृषि पराशर में बीज प्रबंधन का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। बीजों को शुद्ध करने, संरक्षित करने और उपयुक्त समय पर बोने के लिए निर्देश दिए गए हैं। फसल काटने और उसका उचित भंडारण करने की विधियों का भी उल्लेख

किया गया है। वृक्षों और पर्यावरण के संरक्षण को भी कृषि का अभिन्न हिस्सा माना गया है।ग्रंथ में शुभ मुहूर्त में कृषि कार्य आरंभ करने और विधिवत पूजन करने की परंपरा का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार यह ग्रंथ प्राचीन भारतीय कृषि परंपरा का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जो आज भी प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और सतत कृषि के लिए प्रेरणा स्रोत है।

"काश्यपीय कृषि सूक्त" एक प्राचीन संस्कृत ग्रंथ है, जिसे ऋषि काश्यप द्वारा रचित माना जाता है। यह ग्रंथ कृषि विज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर केंद्रित है और इसमें भूमि, जल, बीज और फसल प्रबंधन का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में भूमि को विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है, जैसे नदी किनारे की उर्वर भूमि, पथरीली भूमि, और सूखी भूमि। राजा को भूमि की उपजाऊता बढ़ाने और कृषि कार्यों के लिए उपयुक्त भूमि का चयन करने की सलाह दी गई है। इसके साथ ही जल संरक्षण को भी कृषि का महत्वपूर्ण हिस्सा माना गया है। जलाशयों, कुओं और नहरों के निर्माण और रखरखाव की विधियों का वर्णन किया गया है, जिससे सिंचाई की समुचित व्यवस्था की जा सके। ग्रंथ में उत्तम बीजों के चयन, शुद्धिकरण और संरक्षण की प्रक्रिया का उल्लेख है। फसल की गुणवत्ता और उत्पादन बढ़ाने के लिए समय पर बीज बोने और उनकी उचित देखभाल करने की सलाह दी गई है। इसके अलावा, पशुपालन को भी कृषि का एक महत्वपूर्ण अंग बताया गया है। पशुओं की देखभाल, उनके आहार, और उनकी स्वास्थ्य रक्षा के उपायों पर भी जोर दिया गया है। काश्यपीय कृषि सूक्त में कृषि और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की शिक्षा दी गई है। यह ग्रंथ प्राचीन भारतीय कृषि परंपरा और विज्ञान का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जो आज भी प्रासंगिक है और सतत कृषि के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

1.7 रसायन शास्त्र के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ

नागार्जुन – भारतीय रसायन शास्त्र के इतिहास में आठवीं शताब्दी के महान सिद्ध और श्रीशैल पर्वतीय क्षेत्र के निवासी नागार्जुन का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका जन्म मध्य प्रदेश के बालुका नामक एक गुमनाम गांव में हुआ है। नागार्जुन की सबसे प्रसिद्ध और उपलब्ध रचना **'रसरत्नाकर', राश्रुदया**या**" रसेन्द्रमंगल"**है। इसके अतिरिक्त **"कक्षपुटतंत्र"** और**" आरोग्यमंजरी"** नामक दो अन्य ग्रंथ भी उनके द्वारा रचित माने जाते हैं। **'रसरत्नाकर'** बौद्ध महायानियों का एक तांत्रिक ग्रंथ है। इसमें नागार्जुन को महान सिद्ध और श्रीशैल का निवासी बताया गया है। इस ग्रंथ में रसायन शास्त्र से संबंधित विषयों की व्याख्या प्रसिद्ध रसायनाचार्यों—रत्नघोष, नागार्जुन, वटयक्षिणी, शालिवाहन, और मांडव्य—के संवाद के रूप में की गई है। इसमें पारे को बांधने (रसबंध) और उससे साधारण धातुओं जैसे तांबा और सीसे को स्वर्ण में बदलने की विधियों का उल्लेख है। इन प्रक्रियाओं में कोष्ठिका, वक्रनाल, गोबर, लकड़ी का ईंधन, धौंकनी, लोहे के पात्र, औषधियां, कांजी और विड आदि का उपयोग किया जाता है। साथमें विभिन्न यंत्रों का उल्लेख किया गया है, जिन्हें "अयातो रसेन्द्र मंगलानि यंत्रविधिः" के रूप में वर्णित किया गया है, जिसमें शिलायंत्र, पाषाणयंत्र, नारायणयंत्र, जालिकायंत्र, और चारण यंत्र जैसे यंत्रों का नाम दिया गया है। नागार्जुन ने महारसों (विशेष धातुएं और रसायन) जैसे राजावर्त, गंधक, रसक, दरद, माक्षिक, विमल, हेम और तार के शोधन और उपयोग का विवरण दिया है।

भिक्षु गोविन्द– भिक्षु गोविन्द प्राचीन भारत के एक प्रसिद्ध रसायनशास्त्री थे। उनके जन्मसमय एवं स्थान के विषय में इतिहासकारों को कोई प्रमाणिक साक्ष्य उपलब्ध नही है। उन्होंने कई गन्थों की रचना की जिसमें 'रसहृदयतन्त्र' उनकी रसायनशास्त्रीय ग्रन्थ है। 'रसहृदयतन्त्र का काल १० वीं शताब्दी इस ग्रन्थ के अन्त में उन्होनें अपना परिचय देते हुए आठवीं शताब्दी में चन्द्रवंश के हैहय कुल के किरात नृपति श्री मदन राजा मदनराज का उल्लेख किया है।

तीसट – प्राचीन रसायन शास्त्र ज्ञाता तीसट का जन्म 9 वीं शताब्दी में माना जाता है। उनके पुत्र चन्द्रट भी आयुर्वेद के महान विद्वान थे। तीसट द्वारा 'चिकित्साकलिका' नामक ग्रन्था लिखा है। जिसका प्रकाशन सन् 1950 ई० में श्री शंकर शर्मा द्वारा वैद्यसारथि प्रेस कोट्टयम केरल से किया गया। 'चिकित्साकलिका' में लगभग ४०० छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस ग्रन्थ में वनस्पतियों एवं प्राकृतिक पदार्थों के द्वारा औषधि निर्माण पर बल दिया है। द्रव्यों को १८ गणों मे विभाजित किया गया है। इस ग्रन्थ में तीसट द्वारा अपने पूर्वाचायों का उल्लेख भी किया है जिसमें – चरक, सुश्रुत, भेड, पराशर, विदेह, धन्वन्तरि, च्यवन ऋषि, आस्तीक मुनि आदि नामों का उल्लेख किया गया है।

रसार्णव - रसार्णव ग्रन्थ के रचयिता एवं काल के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ शिव- पार्वती के संवाद में ही प्रसिद्ध है। आचार्य प्रफूल्लचन्द्र राय ने कई हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर रसार्णव का एक प्रामाणिक संस्करण सन् १९१० में एशियाटिक सोसायटी आव् बंगाल की ओर से प्रकाशिर कराया है। आचार्य राय के अनुसार यह ग्रन्थ १२ वीं शताब्दी माना है। इस ग्रन्थ में अध्यायों का नाम 'पटल' है और यह १८ पटलों में विभाजित है। इस ग्रन्थ में रसशोधन के लिए उपयोगी सामग्री का विस्तृत विवरण मिलता हैं यहाँ पर एक विशेष वैज्ञानिक तथ्य का वर्णन किया गया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि किस धातु की ज्वाला किस रंग की होती है। आजकल भी धातुवैज्ञानिक इस तथ्य का उपयोग लोहे तथा ताँबे की की प्राप्त में करते हैं। रसार्णव ग्रन्थ के अनुशीलन से स्पष्ट पता चलता है कि उस समय कच्चे धातु में से शुद्ध धातु निकालने की प्रथा जारी हो गई थी और रसायन विद्या अपनी प्रारम्भिक अवस्था को पार करके प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ रही थी। रसार्णव ग्रन्थ में भिन्न-भिन्न धातुओं की ज्वाला का रंग भिन्न-भिन्न होता है।

नित्यनाथ सिद्ध – नित्यानाथ सिद्ध का जन्म १२ बीं शताब्दी माना जाता है। उनके द्वारा रसरत्नाकर नामक ग्रन्थ की रचना की गई जो रसायन शास्त्र परम्परा में एक महान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में पाँच खण्ड है – रसखण्ड, रसेन्द्रखण्ड, वादिखण्ड, रसायनखण्ड, और मन्त्रखण्ड। रसशास्त्र की दृष्टि से रसायन खण्ड विशेष उपयोगिता है। इसका पृथक संस्ककरण वैद्य श्री यादव जी त्रिविक्रमजी आचार्य ने आयुर्वेदीय गन्थमाला के अन्तर्गत सन् १९१३ ई० में प्रकाशित किया था। रसायन खण्ड में आचार्य ने पारा मारने की ग्यारह विधियों का विवेचन किया है। रसरत्नाकर के वादिखण्ड में बीस उपदेश मिलते है और उनमें से बीसवें उपदेश में पारद का भस्मीकारण, स्वर्ण, रजत, ताम्र, वंग, नाग आदि धातुओं की निर्माण क्रिया का वर्णन है।

गोविन्दाचार्य – गोविन्दाचार्य का जन्म १३ वीं शती माना जाता है। इनके पिता का नाम सुरादित्य और पितामह का नाम आचार्य सुहदेव था। इनके गुरु का नाम श्रीधीर देव था, जो स्वयं अन्तर्वेद के रहने वाले सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके द्वारा रसायन शास्त्र सम्बन्धि ग्रन्थ का नाम 'रससार' है। रस सार का सम्पादन या दवजीत्रिविक्रम जी द्वारा सन् १९१२ई० में बंबई से सम्पादित किया है। इस गन्थ में

२६ पटल है- (१) रसपूजास्वरूपस्तुत्यधिकार (२) द्रव्यसंग्रहाधिकार, (३) अनुक्रमणिकाधिकार, (४) अष्टचत्वारिंशत् संस्कार, (५) रसशोधनसंस्काराविकार, (६) रसलोहशुद्धिसत्त्वपातनाधिकार, (७) सत्त्वस्थिरीकरणाधिकार, (८) द्रुतिपात-नानागणनिरूपण, (९) क्षारद्वावबीडपाक दिव्यौषधाधिकार, (१०) रत्नलक्षणद्रावणभेदनमेलापकाधिकार, (११) बीजपाकाधिकार, (१२) महारस-जारणादिविधि, (१३) वेदनादिक्रम, (१४) द्वन्द्वमारपिष्टिस्तम्भननिगडबन्धन-संकलिकायोगद्रुतिकर्मादिनिरूपण, (१५) रसोपरसलोहकर्माधिकार, (१६) रत्नप्रयोगाधिकार, (१७) अनेककल्कभेदाधिकार, (१८) मणिमूषाकर्मदलाविकार, (१९) गुटिकाकयन, (२०) गुटिकासाधनोपाय, (२१) क्रौञ्चयोगपक्ष कर्म-दिव्यौषध्यधिकार, (२२) यंत्रमूषाधिकार, (२३) महारससेवनाधिकार, (२४) रसायनकयन, (२५) धातुमारण प्रयोगाधिकार, (२६) महारससेवाधिकार। इस ग्रन्थ में पारद के अठारह संस्कार और रसशास्त्र के प्रसिद्ध विषयों का विवेचन किया है।

यशोधर - आचार्य यशोधर सौराष्ट्र जूनागढ़ के गौड़ ब्राह्मण जाति के थे। इनका जन्म समय १३वीं शती माना जाता है। इनके पिता का नाम पद्मनाभ था। रसायनशास्त्र से सम्बन्धित इनका ग्रन्थ 'रसप्रकाशसुधाकर' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका सम्पादन यादवजी त्रिविक्रमजी ने सन्१९६७ई. में किया है। इस ग्रन्थ के अन्त में गन्थ कर्त्ता ने तीन श्लोक में आत्मपरिचय दिया है। 'रसप्रकाशसुधाकर' में तेरह अध्याय है – (१) अष्टादशरससंकार, (२) रसबन्धविधान (३) रसभस्मविधि (४) धातुशोधन-मारण (५) महारसनिरूपण (६) उपरसनिरूपण (७) नवरत्ननिरूपण (८) शतरसनिरूपण (९) दिव्यौषध्यादिनिरूपण (१०) यत्रांदिनिरूपण (११) धातुकौतुक (१२) वाजीकरणनिरूपण (१३) शुकस्तम्भयोग। गन्थकार ने पारेके १८ संस्कार बताये है। इस ग्रन्थ में पारद के अतरिक्त रसो परस, यन्त्र, मूषा, लोह, रत्न आदि का विशद विवेचन किया गया है इसके अतरिक्त इस गन्थ के आठवें अध्याय में १०३ रसौषधियों के निर्माण का वर्णन भी मिलता है। रसायन शास्त्र में इस ग्रन्थ को उपयोगी ग्रन्थ माना जाता है।

वाग्भट्ट – आचार्य वाग्भट्ट रसशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य हैं, इनका समय १३वीं या १४वीं शताब्दी इनके पिता का नाम सिंह गुप्त हैं। आचार्य वाग्भट्ट की प्रसिद्ध रचना '**रसरत्नसमुच्च्य**' हैं। इस ग्रन्थ का समय तेरहवीं शताब्दी से पन्द्रवीं शताब्दी माना जाता हैं। इस ग्रन्थ मंगलाचरण में वह जगत के प्रधान भिषक स्वरूप पादप की स्तुति का प्रतीक है। आचार्य वाग्भट्ट शिव-पार्वती के उपासक थे। उन्होने शिव को पारे का प्रतीत एवं गन्धक को पार्वती प्रतीक माना हैं। यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभाजित है – पूर्वखण्ड एवं उत्तरखण्ड । सम्पूर्ण ग्रन्थ में तीस अध्याय है जिसमें पूर्वखण्ड में ११ एवं उत्तर खण्ड में १९ अध्याय है। रसायन शास्त्र की दृष्टि से पूर्व खण्ड में विशेष भूमिका है तथा उत्तर खण्ड चिकित्सा विज्ञान के दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में धातुओं और मिश्र धातुओं का भी विवरण प्राप्त होता है। आचार्य ने इस ग्रन्थ में सोने के पांच प्रकार बताये है – प्राकृतिक, सहज, वह्निसंभूत, खनिसम्म्भव और रसेन्द्रवेधसंजात। एवं चादी तीन प्रकार की – सहज, खनिसंज्ञात और कृत्रिम भेद बतलाये है। ताँबा नेपालक और म्लेच्छ भेद से दो प्रकार का बतलाया है। ताँबे के पात्र को नीबू के रस से रगड़ कर गन्धक और पारे से लिप्त करे और तीन बार गर्म करने पर यह मर जाता है। लोहे के भी तीन भेद – मुण्ड, तीक्ष्ण, और कान्त होते हैं। इसमें मुण्ड के तीन, तीक्ष्ण के छः और कान्त के पाँच प्रकार होते हैं। लोहे को शीशा और सुहागे के साथ गलाने पर शुद्धिकरण होता है। इस

ग्रन्थ में धातुओं के वर्णन के साथ-साथ २७ व्यक्तियों को रससिद्धि प्रदायक बतया है – 'सप्तविंशतिसंख्याका रससिद्धिप्रदायकाः'।

सोमदेव – आचार्य सोमदेव द्वारा रचित **'रसेन्द्रचूड़ामणि'** 12 वीं शताब्दी में लिखा गया गन्थ है, रसायन शास्त्र का महत्व पूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में रसोपरस, साधारण रस, रत्नोपरत्न धातुओं आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ को आचार्य यादव जी के द्वार सन् 1925 ई० में मूल रुप में प्रकाशित किया गया था।

गोपालकृष्णभट्ट –इनका जन्म १४वीं शती माना जाता है। इनके द्वारा 'रसेन्द्रसारसंग्रह' नामक ग्रन्थ का लेखन किया गया है। इस ग्रन्थ में पांच अध्याय है। इस ग्रंथ में पारद (पारा), सुवर्ण (सोना), रजत (चांदी), ताम्र (तांबा), लौह (लोहा) तथा अन्य धातुओं और खनिजों के संस्कार, शुद्धि, भस्मीकरण एवं उनकी औषधीय उपयोगिताका विस्तृत विवरण मिलता है। इसमें वर्णित धातु-परिष्करण एवं भस्मीकरण प्रक्रियाएँ आधुनिक रसायन शास्त्र की धातु विज्ञान और भौतिक रसायन से मेल खाती हैं। विशेष रूप सेपारद संस्कारकी विधियाँ, जिनमें पारे को ठोस, स्थिर और चिकित्सकीय रूप से उपयोगी बनाया जाता है, आधुनिक अमलगम तकनीक से जुड़ी हुई हैं। इसके अतिरिक्त, ग्रंथ में विभिन्नखनिज यौगिकों के अपचयन, ऑक्सीकरण, आसवन एवं विलयन जैसी प्रक्रियाओं का वर्णन है, जो आधुनिक रसायन शास्त्र के सिद्धांतों से जुड़े हुए हैं। इसमें कज्जलीकरण, आसवन और मर्दन जैसे रासायनिक प्रक्रियाओं का उल्लेख मिलता है, जो औषधीय यौगिकों के शुद्धिकरण एवं प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार, "रसेन्द्रसारसंग्रह"केवल एक आयुर्वेदिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह रसायन शास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों को भी दर्शाता है। यह ग्रंथ धातु, खनिज और जड़ी-बूटियों के साथ उनके रासायनिक अभिक्रियाओं की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है, जो प्राचीन भारतीय रसायन शास्त्र की उन्नत स्थिति को दर्शाता है। रसायनशास्त्र में उपर्युक्त आचार्यों एवं ग्रन्थ परम्परा के अतरिक्त भी प्राणनाथ की रस प्रदीप, सुर्वणतन्त्र, धातुरत्नमाला आदि अनेक आचार्यों एवं ग्रन्थों का योगदान रहा है।

1.8 सारांश

भारत की प्राचीन वैज्ञानिक परंपरा विभिन्न विषयों में विकसित हुई, जिसमें चिकित्सा, गणित, खगोलविज्ञान, कृषि और रसायनशास्त्र जैसे क्षेत्र शामिल हैं। विभिन्न आचार्यों ने अपने गहन अध्ययन और प्रयोगों के माध्यम से इन विषयों को समृद्ध किया। आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में चरक, सुश्रुत और वाग्भट आदि अनेक आचार्यों का योगदान उल्लेखनीय है। चरक संहिता में आंतरिक चिकित्सा का विस्तार से वर्णन है, जबकि सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सा के सिद्धांत दिए गए हैं। वाग्भट के अष्टांगहृदयम् में संपूर्ण आयुर्वेदिक ज्ञान का सार प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार गणित के क्षेत्र में आर्यभट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य आदि आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आर्यभटीयम् में अंकगणित, ज्यामिति और त्रिकोणमिति का वर्णन है। ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुटसिद्धांत में शून्य और ऋणात्मक संख्याओं की अवधारणा दी। भास्कराचार्य ने लीलावती और बीजगणित ग्रंथों में गणितीय सिद्धांतों को विस्तार से समझाया। खगोलविज्ञान में आर्यभट, वराहमिहिर और भास्कराचार्य ने ग्रहों की गति, सूर्य और चंद्रमा के स्थान निर्धारण पर शोध किया। पंचसिद्धांतिका में वराहमिहिर ने विभिन्न खगोलीय गणनाओं का वर्णन किया, जबकि सिद्धांत शिरोमणि में

भास्कराचार्य ने खगोल विज्ञान के गूढ़ सिद्धांत प्रस्तुत किए। कृषिविज्ञान के क्षेत्र में पराशर, सुरपाल और वराहमिहिर के ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं। कृषि पाराशर में विभिन्न फसलों और कृषि पद्धतियों की चर्चा की गई है। वृक्षायुर्वेद में पेड़ों की देखभाल और उनके रोगों का उपचार बताया गया है। रसायन, शास्त्र में नागार्जुन, रस रत्नाकर और रसार्णव प्रमुख ग्रंथों में शामिल हैं। नागार्जुन को रसशास्त्र का जनक माना जाता है, जिन्होंने धातु विज्ञान और औषधीय रसायन पर कार्य किया। रसतंत्र और रसार्णव ग्रंथों में धातु शोध और रसायन विज्ञान से संबंधित प्रक्रियाओं का विस्तृत विवरण मिलता है। भारतीय वैज्ञानिक परंपरा ने आधुनिक विज्ञान की नींव रखी और ये ग्रंथ आज भी अनुसंधान और अध्ययन के लिए प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं।

बोधप्रश्न-

1. 'रसेन्द्रसार संग्रह' ग्रन्थ के किसके द्वारा लिखा गया है।
   (क) सोमदेव (ख) गोपाल कृष्ण भट्ट (ग) वाग्भट्ट (घ) यशोधर
2. आयुर्वेद आचार्य धन्वन्तरि को किसका अवतार माना जारा है।
   (क) विष्णु (ख) शिव (ग) ब्रह्मा (घ) इन्द्र
3. ज्योतिष शास्त्र के प्रकांड विद्वान वहरामिर का जन्म कब माना जाता है।
   (क) 506 ई. (ख) 502 ई. (ग) 504 ई. (घ) 505 ई.
4. नृसिंह दैवज्ञ के पुत्र थे।
   (क) सोमदेव (ख) नारायण पंडित (ग) माधव (घ) परमेश्व
5. 'रसरत्नाकर' ग्रन्थ के किसके द्वारा लिखा गया है।
   (क) नागार्जुन (ख) नित्यानन्द (ग) यशोधर (घ) वाग्भट्ट
6. भारतीय खगोलशास्त्रीय महाराज सवाई जय सिंह का जन्म समय है।
   (क) 1688 ई. (ख) 1687 ई. (ग) 1689 ई. (घ) 1685 ई.
7. 'लीलावती' ग्रन्थ के किसके द्वारा लिखा गया है।
   (क) कमलाकर (ख) लगधाचार्य (ग) भास्कराचार्य (घ) रघुनाथ
8. श्रीधराचार्यके पिता का क्या नाम था ।
   (क) नागनाथ (ख) गोपालाचार्य (ग) केशव (घ) बलदेव
9. 'आर्यभटीयम्' ग्रन्थ के किसके द्वारा लिखा गया है।
   (क) आर्यभट्ट (ख) सोमभट्ट (ग) आर्यदेव (घ) कृष्ण भट्ट
10. भिक्षु गोविन्दद्वारा रचित ग्रन्थ है।
    (क) रसेन्द्र चुडामणि (ख) रससार (ग) रस हृदयतन्त्र (घ) रसरत्नसमुच्य

1.9 बोधप्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 1 (ख), 2 (क), 3 (ग), 4 (ख), 5 (क), 6 (क), 7 (ग), 8 (घ), 9 (क), 10 (ग)

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राचीन भारत में रसायन का विकास, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, पुस्तकायन प्रकाशन नई दिल्ली।

2. आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, विद्याधर शुक्ल एवं रविदत्त त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली
3. आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, प्रियव्रत शर्मा, चौखम्बा ओरियंटालिया, वाराणसी
4. आयुर्वेद का बृहद् इतिहास, अत्रिदेव विद्यालंकार, उत्तरप्रदेश हिंन्दी संस्थान, लखनऊ
5. वेदों में विज्ञान, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (भदोही)
6. प्राचीन भारतीय गणित, डॉ. बलदेव उपाध्याय,
7. ऋषि पाराशर, प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
8. भारत में विज्ञान की उज्जवल परम्परा, सुरेश सोनी, अर्चना प्रकाशन भोपाल
9. भारतीय ज्योतिष, नेमीचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी

1.11 उपयोगी पुस्तकें

1. वेदों में विज्ञान, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (भदोही)
2. आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, विद्याधर शुक्ल एवं रविदत्त त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली
3. भारत में विज्ञान की उज्जवल परम्परा, सुरेश सोनी, अर्चना प्रकाशन भोपाल
4. भारतीय ज्योतिष, नेमीचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आयुर्विज्ञान की आचार्य परम्परा पर प्रकाश डालिए।
2. रसायन विज्ञान के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय दीजिए।
3. गणित विज्ञान के किन्हीं पांच आचार्यों का ग्रन्थ परिचय दीजिए।
4. कृषि विज्ञान के ग्रन्थों का विवेचन कीजिए।
5. खगोल विज्ञान की प्रमुख ग्रन्थों पर प्रकाश डालिए।

इकाई-2 वेदों में भौतिक एवं रसायन विज्ञान के तत्व

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 वेदों में भौतिक विज्ञान के तत्व
2.3.1 ऊर्जा (Energy)
2.3.1.1 ऊर्जा की सर्वव्यापकता
2.3.1.2 ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होने वाले यन्त्र
2.3.1.3 ऊर्जा के अविनाशीता का सिद्धांत (Law of conservation of energy)
2.3.1.4 ऊर्जा का रूपांतरण (Transformation of energy)
2.3.1.5 ऊर्जा (अग्नि) में सम्प्रेषण शक्ति (Transformation of energy)
2.3.1.6 ऊर्जा (अग्नि) में विद्युत-तरंगे (Electric waves in energy)
2.3.1.7 विद्युत में श्रवण-शक्ति (Power of hearing in electricity)
2.3.2 सूर्य (Sun) एवं सौर ऊर्जा (Solar energy)
2.3.2.1 सूर्य: ब्रह्माण्ड की आत्मा (Sun: Soul of universe)
2.3.2.2 सूर्य में हाइड्रोजन (hydrogen) और हीलियम (helium) गैस
2.3.2.3 सूर्य की सात रंग की किरणें
2.3.2.4 विद्युत-चुम्बकीय तरंगें (Electromagnetic waves)
2.3.2.5 इन्द्रधनुष का बनना (formation of rainbow)
2.3.2.6 सूर्य, चन्द्र का परिवेष (घेरा) बनना
2.4 वेदों में रसायन विज्ञान के तत्व
2.4.1 धातु एवं आभूषणों का वर्णन
2.4.1.1 जस्ता से सोना बनाने की विधि
2.4.1.2 तांबे से कॉपर सल्फेट बनाने की विधि
2.4.1.3 धातुओं का भस्म का वर्णन
2.4.2 वेदों में जल की उत्पत्ति का वर्णन
2.4.2.1 जल का सूत्र
2.4.2.2 मित्र-वरुण वृष्टिकर्ता
2.4.2.3 जल का महत्त्व एवं प्रमुख गुण
2.4.2.4. जल के सामान्य गुण
2.4.2.5 जल में सभी देव (तत्व)
2.4.3 रसायन शास्त्र की प्रमुख शाखाएँ
2.5 सारांश
2.6 परिभाषित शब्दावली
2.7 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.8 सन्दर्भ ग्रंथों की सूची

2.1 प्रस्तावना

जैसा की आप जानते है कि वेद विश्व साहित्य में अतिप्राचीन ज्ञान के स्रोत है। वेदों में दर्शन, आचारशास्त्र, संगीत, आयुर्वेद, धर्म, ज्योतिष आदि विषयों का सम्पूर्ण वर्णन मिलता है।साथ ही वेदों में विज्ञान के अपूर्व भण्डार मिलते है।वेदों में भौतिकी (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), वनस्पति विज्ञान (Botany), जन्तु विज्ञान (Zoology), गणित (Mathematics), शिल्प-विज्ञान (Technology), कृषि-विज्ञान (Agricultural Sciences), भूगर्भ-विज्ञान (Geology), वृष्टि-विज्ञान (Meteorology), पर्यावरण (Ecology) आदि का उल्लेख मिलता है। अतः वेद और विज्ञान एक दूसरे के पूरक है।यदि हम बात करे वेदों में वर्णित भौतिक विज्ञान (भौतिकी) एवं रसायन शास्त्र के तत्वों की तो वर्णन प्रचुर मात्र में देखने को मिलता है। ऋग्वेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद में वर्णन मिलता है कि विश्व के प्रथम वैज्ञानिक अथर्व ऋषि है।अथर्व ऋषि ने बताया है कि सभी प्रकार की ऊर्जा का स्रोत अग्नि ही है। अथर्व ऋषि के अनुसार अग्नि को तीन विभिन्न विधियों द्वारा उत्पन्नकिया जा सकता है। ये विधियाँ हैं – घर्षण द्वारा अग्नि की उत्पत्ति, जलीय विद्युत की उत्पत्ति एवं भूगर्भीय अग्नि।

ऊर्जा के विभिन्न प्रकार, जिनका भौतिक एवं रसायन विज्ञान में वर्णन मिलता है जैसे यांत्रिक ऊर्जा, सौर ऊर्जा, नाभिकीय ऊर्जा, रासायनिक ऊर्जा आदि का वर्णन भी वेदों में मिलता है जिनका ज्ञान ऋषियों को पहले से ही था।इन ऊर्जाओं का वर्णन मुख्यतः ऋग्वेद में मिलता है। साथ ही ऋग्वेद और यजुर्वेद के मंत्रों में उल्लेख मिलता है कि सौर ऊर्जा का आविष्कार इन्द्र, वसु और गन्धर्व ने मिलकर, सूर्य से ऊर्जा का दोहन करके किया अर्थात् सौर ऊर्जा का वर्णन वेदों में किया गया है। वेदों में धातुओं के आभूषण एवं भस्म बनाने के साथ-साथ जल की उत्पत्ति और गुणों का वर्णन मिलता है।वेद मंत्रों में विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक अभिक्रियाओं का भी वर्णन मिलता है।

इस इकाई में भौतिक एवं रसायन विज्ञान के अति महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में जानेंगे जिनका वर्णन वेदों की ऋचाओं एवं मंत्रों में मिलता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप—

- भौतिक विज्ञान से सम्बंधित तत्वों को जान सकेंगे।
- विभिन्न अग्नि ऊर्जा के बारे में जान सकेंगे।
- वेदों में वर्णित सौर ऊर्जा के बारे में जान सकेंगे।
- रसायन विज्ञान से सम्बंधित तत्वों को जान सकेंगे।
- रसायन विज्ञान की शाखाओं के बारे में जान सकेंगे।

2.3. वेदों में भौतिक विज्ञान के तत्व

2.3.1. ऊर्जा (Energy)

भौतिकी यानि भौतिक विज्ञान में ऊर्जा (Energy) का सर्वाधिक वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार की हो सकती है, उदाहरण के लिए यांत्रिक ऊर्जा (mechanical energy), सौर ऊर्जा

(solar energy), नाभिकीय ऊर्जा (nuclear energy), रासायनिक ऊर्जा (chemical energy) आदि। आधुनिक समय में सौर ऊर्जा और नाभिकीय ऊर्जा के उत्पादन पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है। अतः ऊर्जा उत्पन्न करने वाले विभिन्न यंत्रों (instruments) आवश्यकता पर भी जोर दिया जा रहा है। साथ ही आधुनिक भौतिकी में निम्न विषयों पर विचार किया जाता है – ऊर्जा (energy), गति (motion), बल (force), सामर्थ्य (power), प्रकाश (light), ध्वनि (sound), ताप (heat), अर्द्धचालक संयंत्र (semiconductor devices), विद्युत (electricity), चुम्बकत्व (magnetism) आदि।

चारों वेदों में ऊर्जा का स्वामी (प्रतिनिधि) अग्नि को माना गया है. सभी वेदों में अग्निविज्ञान या अग्निविद्या से सम्बंधित सैकड़ों मन्त्र मिलते है. वेदों में ऊर्जा के लिए अग्नितत्व का ही प्रयोग हुआ है.

2.3.1.1 ऊर्जा की सर्वव्यापकता

चारों वेदों के अनुसार, ऊर्जा एक सर्वव्यापी भौतिक राशि है। ऊर्जा द्युलोक, अंतरिक्ष और पृथ्वी के प्रत्येक तत्व (कण) विद्यमान है।ऊर्जा के कारण ही किसी वस्तु की स्थिति में परिवर्तन, वस्तु में परिवर्तन और वस्तु में गति होती है। अग्नि जो ऊर्जा का स्रोत है, विश्व को चेतना देती है। वही सृष्टि की गति का केंद्र भी है। द्यावापृथिवी में व्याप्त है। अथर्ववेद के अनुसार, ऊर्जा द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथ्वी, वायु, विद्युत आदि सभी में विद्यमान है। इसका अर्थ यह होता है कि ब्राह्मांड का कोई भी ऐसा स्थान या कण नहीं है, जंहा ऊर्जा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से न हो। इसलिए जंहा भी दो वस्तुओं में घर्षण (friction) होता है, वहां विद्युत (electricity) अवश्य उत्पन्न होती है।

दिवं पृथिवीमनु अन्तरिक्षं ये दिद्युतं अनुसंचरन्ति।
ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्येभ्यो अग्निभ्य।। (अथर्वेद 3.21.8)

2.3.1.2 ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होने वाले यन्त्र

भौतिक विज्ञान में ऊर्जा उत्पन्न करने के तरीकों का बहुत महत्त्व है।तैत्तिरीय संहिता में ऊर्जा उत्पन्न करने वाले कुछ विशेष यंत्रों का वर्णन मिलता है। जिनका संक्षिप्त वर्णन नीचे किया गया है:

(अ) वात-यंत्र: यह यंत्र वायु यानि हवा को उत्पन्न करने और वायु के दबाव को मापने के लिए प्रयोग किया जाता था। आधुनिक समय में भी कई प्रकार के वात-यंत्र या वात-दिग्दर्शक का प्रयोग किया जाता है।

(ब) दिशा-यंत्र: इस यंत्र की सहायता से दिशाओं का बोध होता था. इसलिए इसे दिशा-बोधक यन्त्र भी कहा जाता था। आज के मॉडर्न युग में उपयोग होने वाले दिशा सूचक यंत्र, जिसे कम्पास (compass) के नाम से जानते है, का प्रयोग नेविगेशन (navigation) और भौगोलिक अभिविन्यास (geographical orientation) के लिए किया जाता है।

(स) ऋतु-यंत्र: इस यंत्र की सहायता से गर्मी-सर्दी आदि का पता लगाया जाता था। इसलिए ये ऋतु यंत्र-कहलाते थे। आधुनिक समय में मौसम की जानकारी प्राप्त करने हेतु सॅटॅलाइट युक्त सिस्टम का उपयोग किया जाता है।

(द) तेजस्-यंत्र: इस यंत्र से तेज यानि प्रकाश आदि की उत्पत्ति में प्रयुक्त किया जाता था।आधुनिक समय विभिन्न तरीकों से प्रकाश (light) की उत्पत्ति किया जा रहा हैं, जिनका जिक्र यहाँ पर नहीं किया जा रहा हैं।

वातानां यंत्राय, ऋतूनां यंत्राय, दिशां यंत्राय, तेजसे यंत्राय। (तैत्तिरीय संहिता 1.6.2)

तैत्तिरीय संहिता में वाग्यंत्र का भी उल्लेख मिलता है। यह यंत्र ध्वनि-तरंगों (sound waves) को नापने का यंत्र हुआ करता था।

वाचो यंत्रम् अशीय। (तैत्तिरीय संहिता 1.6.1.2)

ऋग्वेद में मंत्र शब्द का प्रयोग नियंत्रण शक्ति के लिए भी किया गया है। ऋग्वेद के अनुसार, सूर्य अपने यंत्रों यानि आकर्षण शक्ति से पृथ्वी को रोके हुए है। जो आधुनिक विज्ञान में गुरुत्वाकर्षण की घटना के रूप में जाना जाता है।

सविता यन्त्रैः पृथिवीम्अरमणात्त्।। (ऋग्वेद 10.149.1)

2.3.1.3.ऊर्जा के अविनाशीता का सिद्धांत (Law of conservation of energy)

यजुर्ववेद में कहा गया है कि अग्नि (ऊर्जा) अक्षय है। साथ ही यह नश्वर जगत में अमर (indestructible) है। इसका मतलब यह है कि ऊर्जा को नष्ट नहीं कियाजा सकता है।

मर्तेषु – अग्निरमृतो नि धायि। (यजुर्ववेद 12.24)

आधुनिक विज्ञान के अनुसार, "Energy can neither be created nor destroyed. It can be only transformed from one form to another form" अर्थात् "ऊर्जा को न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है। इसका केवल एक अवस्था से दूसरे अवस्था में रूपांतरित किया जा सकता है"।

2.3.1.4.ऊर्जा का रूपांतरण (Transformation of energy)

वेदों के अनेक मंत्रों में कहा गया है कि अग्नि यानि ऊर्जा एक ही है, सिर्फ इसका रूपांतरण होता है।अत एव ऊर्जा के कई नाम हो जाते है। ऊर्जा या अग्नि में सभी कार्यों को करने की क्षमता होती है। इसलिए इसे "विश्वकर्मा" कहा जाता है। ऊर्जा महाशक्तिशाली होती है। यह विभिन्न रूपों को धारण कर सकती है। इसलिए इसे "पुरुरूप"भी कहा गया है।ऊर्जा सभी रूपों (शब्द, रूप, प्रकाश, गति आदि) को धारण करती है। अत एव इसे "विश्वरूप" कहा गया है। ऊर्जा समूह के रूप में चलती है। इसलिए, इसे संहत् (समूह, पुंजीभूत) कहा गया है।

यो देवानां नामधा एक एव।(ऋग्वेद 10.82.3)

अग्ने ... त्मना शतिनं पुरुरूपम्। (ऋग्वेद 2.2.9)

स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपाः।(ऋग्वेद 3.1.7)

ऊर्जा की संख्या सहत्रो और हजारों अश्वशक्ति (Horse-power) के रूप में होती है। अतः इसे शतिन् (100 अश्वशक्ति) एवं सहत्रिन् (1000 अश्वशक्ति) आदि कहा जाता है। अग्नि को ऊर्जा का स्वामी (ऊर्जापति) और शक्ति का पुत्र (सहसः सूनुः) आदि नामों से संबोधित किया जाता है।

शतिनं पुरुरूपम्। (ऋग्वेद 2.2.9)

अग्ने बृहतो दाः सहत्रिणः।(ऋग्वेद 2.2.7)

सूनो सहस ऊर्जापते। (ऋग्वेद 8.19.7)

2.3.1.5.ऊर्जा (अग्नि)में सम्प्रेषण शक्ति (Transformation of energy)

यजुर्ववेद के दो मंत्रों में वर्णन मिलता है कि अग्नि (ऊर्जा) विश्व का अमर दूत है। यह इधर का सन्देश उधर और उधर का सन्देश इधर लाता है अर्थात् यह संदेशों का आदान-प्रदान करने का काम करता है। अग्नि में विद्यमान इस सम्प्रेषण शक्ति के लिए "दुद्रवत्" शब्द का प्रयोग किया गया है। दुद्रवत शब्द का अर्थ होता है –दौड़कर जाता है। ऊर्जा के इसी सम्प्रेषण शक्ति के आधार पर रेडियो और टेलीविज़न की संरचना हुई है।

विश्वस्य दूतममृतम्।

स दुद्रवत् स्वाहुतः।। (यजुर्ववेद 15.33.34)

2.3.1.6.ऊर्जा (अग्नि) में विद्युत-तरंगे (Electric waves in energy)

ऋग्वेद में ऊर्जा (अग्नि) को अत्यधिक तीव्र गति से चलने वाला अमर दूत की संज्ञा दी गयी है। आगे कहा गया है कि ऊर्जा की तरंगें, समुंद्र की तरंगों की तुलना में अत्यंत तीव्र गति से जाती है।

जीरं दूतम् अमर्तयम्।(ऋग्वेद 1.44.11)

सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयः, अग्नेभ्राजन्तेअर्चयः।(ऋग्वेद 1.44.12)

2.3.1.7.विद्युत में श्रवण-शक्ति (Power of hearing in electricity)

ऋग्वेद में "श्रुत्कर्ण" शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है इस शब्द से यह संकेत दिया गया है कि विद्युत के द्वारा ध्वनि तरंगों का संप्रेषण किया जा सकता है। जिससे दूरस्थ व्यक्ति आपस में बातचीत कर सकते है। इसी आधार पर टेलीफ़ोन की प्रक्रिया काम करती है।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः। (ऋग्वेद 1.44.13)

इस मंत्र वह्नि शब्द ऊर्जा में वहन करने की (धारण करने की) क्षमता या ले जाने की शक्ति का द्योतक है। शतपथ ब्राह्मण में इस मंत्र की व्याख्या में कहा गया है कि इस विद्युत-तरंग के द्वारा ही दूर देशांतर में संवाद सुना जा सकता है। इसी आधार पर रेडियो (radio) और वायरलेस (wireless)आदि की संरचना हुई है।

धूमो वा अग्नेः श्रवो वयः, स हि एनम्

अमुष्मिन् लोके श्रावयति। (शतपथ ब्राह्मण 7.3.1.29)

2.3.2. सूर्य (Sun) एवं सौर ऊर्जा (Solar energy)

वेदों में सूर्य (Sun) एवं सौर ऊर्जा (Solar energy) के बारे में विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। इसमें अनेक सूर्य, सूर्य का महत्त्व, सूर्य की शक्तियों का आधार, सौर ऊर्जा, सूर्य और चराचर का सम्बंध आदि का उल्लेख मिलता है।यहाँ पर कुछ अति महत्त्वपूर्ण तथ्यों के बारे में उल्लेख किया जा रहा है।

2.3.2.1. सूर्य: ब्रह्माण्ड की आत्मा (Sun: Soul of universe)

सूर्य, सौरमंडल के सभी ग्रहों एवं उपग्रहों आदि का स्वामी है।सूर्य ही सम्पूर्ण सौरमंडल को ऊर्जा प्रदान करता है। यही अपने गुरुत्वाकर्षण शक्ति से पृथ्वी सहित सभी ग्रहों को संतुलित किया हुआ है।सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में, सूर्य की ऊर्जा से सभी चराचर में गति, प्रगति, विकास व विलास है। सूर्य

से ही पूरे ब्रह्माण्ड को संजीवनी शक्ति प्राप्त होती है। इसलिए सूर्य को ब्रह्माण्ड की आत्मा की संज्ञा दी गयी है।जिसका वर्णन ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद मिलता है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

(ऋग्वेद1.115.1, यजुर्वेद 7.42, अथर्ववेद 13.2.35)

ऋग्वेद के एक मन्त्र में 'नानासूर्याः' और 'सप्त आदित्याः' का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर नानासूर्याः शब्द अनेक सूर्य के लिए किया गया गया है अर्थात् ब्रह्माण्ड में कई सूर्य विद्यमान है। सप्त आदित्याः अर्थात् सात सूर्य का अभिप्राय सात सौरमंडल से ज्ञात पड़ता है।

सप्त दिशो नानासूर्याः. देवा आदित्या ये सप्त।। (ऋग्वेद 9.114.3)

तैत्तिरीय आरण्यक अनुसार, इन सभी सात सूर्यों के नाम इस प्रकार है- आरोग, भ्राज, पटर, पतंग, स्वर्णर, ज्योतिषीमान् एवं विभास।

कश्यप ... यस्मिन् आर्पिताः सप्त साकम्। (तैत्तिरीय आरण्यक 13.3.10)

2.3.2.2. सूर्य में हाइड्रोजन (hydrogen) और हीलियम (helium) गैस

अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि सूर्य में ऊर्जा का मूल स्त्रोत सोम अर्थात् हाइड्रोजन है। सोम से ही सूर्य को शक्ति मिलती है।

सोमेन – आदित्या बलिनः। (अथर्ववेद 14.1.2)

यजुर्वेद के अनुसार, सूर्य में दो तत्व मिलते है, जिन तत्वों का वर्णन निम्नलिखित मन्त्र में इस प्रकार मिलता है:

अपां रसम् उद्वयसम्, सूर्ये सन्तं समाहितम्।

अपां रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाभ्युत्तमम्।।(यजुर्वेद 9.3)

(अ) 'अपां रसम्' अर्थात् जल का सारभाग, जो ऊर्जा के रूप में है। यहाँ पर'उद्वयस्' शब्द गैसरूप या ऊर्जारूप का बोधक है। जल का यह सार भाग हाइड्रोजन है। इसके लिए 'अपां रसम्' शब्द का प्रयोग हुआ है।

(ब) 'अपां रसस्य यो रसः' अर्थात् जल के सारभाग का सारभाग। जल का सारभाग हाइड्रोजन है तो उसका सारभाग हीलियम। यहाँ पर हीलियम के लिए 'अपां रसस्य यो रसः' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस में 'सूर्ये सन्तं समाहितम्' के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि हाइड्रोजन और हीलियम दोनों सूर्य में विद्यमान है।

आधुनिक भौतिक विज्ञान के अनुसार, द्रव्यमान के आधार पर सूर्य में लगभग 70% हाइड्रोजन, 28% हीलियम और 2% अन्य गैसें/द्रव्य विद्यमान है। सूर्य के सतह का तापमान 5500 डिग्री सेल्सियस एवं आतंरिक कोर का तापमान लगभग 1 करोड़ 50 लाख डिग्री सेल्सियस है। इस आतंरिक ताप के कारण ही हाइड्रोजन हीलियम में परिवर्तित हो जाता है, इसे थर्मो नुक्लियर अभिक्रिया (thermonuclear reaction) कहते है। इसी अभिक्रिया फलस्वरूप सूर्य से निरंतर विशाल ऊर्जा का उत्सर्जन होता रहता है। सूर्य को अपनी इस ऊर्जा के लिए प्रति सेकंड 50 लाख टन द्रव्यमान की आवश्यकता होती है।

सूर्य से प्राप्त इस ऊर्जा को सौर ऊर्जा कहते है। वेदों में सौर ऊर्जा के सम्बंध में पर्याप्त वर्णन मिलता है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में उल्लेख मिलता है कि सूर्य से ऊर्जा का दोहन त्रित ने किया। यहाँ

त्रित शब्द तीन देवताओं इन्द्र, गन्धर्व और वसु के लिए किया गया है। इन्द्र ने सर्वप्रथम इस सौर ऊर्जा का ज्ञान प्राप्त किया, गन्धर्वों ने इसका परीक्षण किया और वसुओं ने इसको मूर्तरूप दिया। वसुओं की गिनती उन विद्वानों में की जाती है जो भौतिक विज्ञान के विशेषज्ञ है।एक ने सौर ऊर्जा का ज्ञान प्राप्त किया, दूसरे ने इसका परीक्षण द्वारा सत्यता प्रमाणित की और तीसरे ने इसको मूर्तरूप देकर इसका प्रयोग किया। इस प्रकार सौर ऊर्जा के सफल अविष्कार का श्रेय त्रित अर्थात्इन्द्र, गन्धर्व और वसु को दिया जाता है।

त्रित एनम् आयुनक्, इंद्र एणम् प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनाम् अगृह्णात्, सूरदश्वं वसवो निरतष्ट।।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि सात प्रकार की किरणों से सात प्रकार की (सप्तपदी) ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। इस ऊर्जा से अन्न (इष्) और शक्ति (ऊर्ज्) दोनों प्राप्त हो सकती है। इस मन्त्र से पूर्णतः स्पष्ट है कि सौर ऊर्जा का उपयोग कृषि-कार्यों और उद्योग-कार्यों के लिए किया जा सकता है। यदि कृषि सम्बन्धित समस्त कार्य सौर ऊर्जा से किया जाने लगे तो देश की बहुत बड़ी समस्या हल हो जाएगी। साथ ही उद्योगों को सौर ऊर्जा से संचालित होने लगे तो यह एक अद्भुत क्रांति होगी। आधुनिक समय में सोलर सेल के आविष्कार से इस क्षेत्र में काफी मदद मिली है।

अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः।
सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः।। **(ऋग्वेद 8.72.16)**

2.3.2.3. सूर्य की सात रंग की किरणें

ऋग्वेद और अथर्ववेद में सूर्य की सात रंग की किरणों का वर्णन सप्तरश्मि, सप्ताश्व, सप्तसप्ति आदि शब्दों से किया गया है। इन सात रंग की किरणों का वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है। प्रत्येक किरण का अलग-अलग प्रभाव है।इनसे ही संसार के सभी पदार्थों को रंग-रूप प्राप्त होता है अर्थात् इन किरणों की वजह से ही सभी पदार्थों के रंग-रूप को पहचान मिलती है। ये ही नाना प्रकार से विभिन्न रोगों को दूर करती है एवं इसी के प्रभाव से ही कृषि की उपज घटती या बढती है।

इन सात किरणों को हिंदी में बैगनी, आसमानी, नीली, हरी, पीली, नारंगी एवं लाल नामों से जाना जाता है। वही अंग्रेजी में violet (वायलेट), indigo (इंडिगो), blue (ब्लू), green (ग्रीन), yellow (येलो), orange (ऑरेंज) एवं red (रेड) से जाना जाता है।इनकी तरंगदैर्ध्य (wavelength) और आवृत्ति (frequency) भी अलग-अलग होती है। जिसके फलस्वरूप इनकी ऊर्जा भी अलग-अलग होती है।इन किरणों के नाम याद रखने का सूत्र इस प्रकार है- V I B G Y O R, बै नी आ ह पी ना ला।इनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया गया हैः-

अंग्रेजी		**हिंदी**		**प्रभाव**
नाम	**संकेत**	**नाम**	**संकेत**	
Violet	V	बैगनी	बै	शीतल, लाल कणों का वर्धक, क्षय रोगनाशक

Indigo	I	नीली	नी	शीतल, पित्तज रोगों का नाशक, पौष्टिक
Blue	B	आसमानी	आ	शीतल, पित्तज रोगों का नाशक, ज्वरनाशक
Green	G	हरी	ह	समशीतोष्ण, वातज रोगों का नाशक, रक्तशोधक
Yellow	Y	पीली	पी	उष्ण, कफज रोगों का नाशक, हृदय एवं उदररोग नाशक
Orange	O	नारंगी	ना	उष्ण, कफज रोगों का नाशक, मानसिक शक्तिवर्धक
Red	R	लाल	ला	अति उष्ण, कफज रोगों का नाशक, उत्तेजक, केवल मालिश हेतु

इन सभी रंगों में तीन रंग अर्थात् लाल, पीला और नीला ही मूल रंग है। शेष रंग अर्थात् बैगनी, आसमानी, हरा और नारंगी मिश्रित रंग है। लाल और नीला से बैगनी, नीला और सफेद से आसमानी, नीला और पीला से हरा, लाल और पीला से नारंगी। सूर्य की सात रंग की किरणों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है – 1. लाल, पीला, नारंगी; 2. हरा; 3. नीला, आसमानी और बैगनी।

2.3.2.4. विद्युत-चुम्बकीय तरंगें (Electromagnetic waves)

मैक्सवेल ने प्रकाश तरंगों को ही विद्युत-चुम्बकीय तरंगें माना है।ये तरंगें बिना किसी माध्यम के कहीं भी विचरण कर सकती हैं। प्रकाश तरंगें एक ही है, लेकिन इनकी तरंगदैर्ध्य (wavelength) और आवृत्ति (frequency) के अलग-अलग होने से इनमें अंतर आ जाता है।

जब विद्युत-चुम्बकीय तरंगों को इनकी आवृत्ति के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है तो उसे विद्युत-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम (electromagnetic spectrum) कहते है। इनका क्रम इस प्रकार है:-

(1) कॉस्मिक किरणें (Cosmic rays)– ये ब्रह्मांडीय अतिसूक्ष्म किरणें है. इनकी आवृत्ति, अन्य सभी प्रकार की किरणों से सर्वाधिक होती है। जबकि तरंगदैर्ध्य सबसे कम होती है।इन किरणों की विभेदन क्षमता एवं ऊर्जा सबसे अधिक होती है।

(2) गामा किरणें (Gamma rays)–ये किरणें एक प्रकार की विद्युत चुम्बकीय विकिरण हैं, जो परमाणु-नाभिक के रेडियो सक्रिय क्षय से उत्पन्न होता हैं। इन किरणों की खोज रेडियम से निकलने वाली विकिरण का अध्ययन के दौरान हुई थी।इन किरणों की विभेदन क्षमता एवं ऊर्जा कॉस्मिक किरणों से कम एवं अन्य किरणों से अधिक होती है।

(3) एक्स किरणें (X-rays)–इन किरणों की भेदन क्षमता इतनी अधिक होती है कि ये धातुओं को भी पार कर जाती है। इन किरणों का उपयोग मुख्यतः चिकित्सा के क्षेत्र में इमेजिंग के लिए किया जाता है।

(4) पराबैगनी (Ultraviolet rays)– ये अदृश्य किरणें है।इन किरणों को नग्न आँखों से देखा नहीं जा सकता है। पराबैगनी किरणें मानव स्वास्थ्य के हानिकारक होती हैं।

(5) दृश्य किरणें (Visible light/rays)– इन किरणों को नग्न आँखों से देखा जा सकता है।इन्ही किरणों की सहायता से ही हम किसी वस्तु को देखने में सक्षम हो पाते है। इनमें बैगनी रंग से लेकर लाल रंग की किरणें आती है। सूर्य की प्रकाश किरणें, दृश्य किरणें है।

(6) अवरक्त किरणें (Infra-red rays)– ये अदृश्य किरणें है। इन किरणों को नग्न आँखों से दिखाई नहीं देती है। इन किरणों की आवृति एवं ऊर्जा दृश्य किरणों की तुलना में कम होती है।

(7) सूक्ष्म तरंगे (Micro waves)–ये अदृश्य किरणें है। इन किरणों को नग्न आँखों से देखा नहीं जा सकता है। इन किरणों का उपयोग रडार, संचार, खाद्य प्रसंस्करण, चिकित्सा इमेजिंग, रसायन विज्ञान, कार्बनिक संश्लेषण आदि में किया जाता है।

(8) रेडियो तरंगे (Radio waves)– ये भी अदृश्य किरणें है। इन किरणों को भी नग्न आँखों से देखा नहीं जा सकता। इन तरंगों की आवृत्ति सबसे कम एवं तरंगदैर्ध्य सबसे अधिक होती है। साथ ही इन किरणों की ऊर्जा अन्य किरणों की तुलना में न्यूनतम होती है।

कॉस्मिककिरणोंसेरेडियोतरंगोंकीतरफ जाने पर, आवृत्ति घटती है और तरंगदैर्ध्य बढ़ता है। कॉस्मिक किरणों के बारे में अभी तक पूरी जानकारी नहीं है। अतएव इनका विश्लेष्ण भी पूरा नहीं हो सका है।

2.3.2.5. इन्द्रधनुष का बनना(formation of rainbow)

आचार्य वरामिहिर ने बृहत्संहिता में इन्द्रधनुष के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन किया है और कि किस प्रकार सूर्य की सात रंग की किरणें इन्द्रधनुष बनाती हैं। आचार्य वरामिहिर के अनुसार, सूर्य की विविध रंगों वाली किरणें जब मेघयुक्त आकाश में वायु से टकराकर छिटकती हैं, तब धनुष का रूप धारण करती है। इसे ही इन्द्रधनुष कहते है।

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताःकराः साभ्रे।
वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनु।। (बृहत्संहिता 35.1)

2.3.2.6. सूर्य, चन्द्र का परिवेष (घेरा) बनना

सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर मंडलाकार जो घेरा बनता है, उसे परिवेष कहते है. इसके बनने की प्रक्रिया बृहत्संहिता में आचार्य वरामिहिर द्वारा बताई गयी है। वरामिहिर के अनुसार, जब सूर्य और चन्द्रमा की किरणें हलके मेघयुक्त आकाश में वायु के प्रवेश के कारण छिटककर मंडलाकार (गोल घेरे के रूप में) और नाना वर्ण (रंगबिरंगी) दिखाई पड़ती है, तो इसी को परिवेष कहते है।

2.4. वेदों में रसायन विज्ञान के तत्व

वेदों में रसायन विज्ञान को "रसायन शास्त्र" कहा जाता था। साथ ही तरल पदार्थों (chemical) के विज्ञान को रसतंत्र, रस-विद्या और रसक्रिया कहा जाता था।वेदों में रासायनिक कार्यों एवं रासायनिक प्रयोगशालाओं का भी वर्णन मिलता है। जिन्हें क्रमशः रसक्रिया-शाला एवं रसक्रिया-नगरम कहा जाता था।'रसायन' शब्द दो शब्दों अर्थात् रस और अयन से मिलकर बना है।'रस' का अर्थ होता है तरल पदार्थ एवं 'अयन का अर्थ होता है मार्ग। इस प्रकार रसायन का अर्थ

होता है 'रस का मार्ग'। इसका एक अन्य अर्थ भी है कि जिससे रस की उत्कृष्टता प्राप्त होती है उसे रसायन कहते है।

2.4.1. धातु एवं आभूषणों का वर्णन

वेदों में कई जगहों पर धातुओं और धातुओं से बनी आभूषणों का वर्णन निम्न प्रकार मिलता है:

(अ) ऋग्वेदमें सोना (Au), तांबा, चांदी (Ag) और कांस्य जैसी धातुओं का उल्लेख है। सोने की बाली और आभूषणों का उल्लेख इस प्रकार है: **हिरण्यकर्णम मणिग्रीवं**

(ब) शुक्लयजुर्वेद में टिन(Sn) और सीसा (Pb) के बारे में वर्णन इस प्रकार से किया गया है:
हिरण्य च मेयश्चमे सीसम चमे श्रपुस्चमे स्थामन् चमे लोहम चमे

रसायन विदयों का यह मानना है कि ऊपर वर्णित सभी धातु (metals) केवल विशेष रासायनिक प्रक्रियाओं के संयोजन से ही प्राप्त किया जा सकता है।इन सभी धातुओं की अपनी अलग-अलग भौतिक (physical) एवं रासायनिक (chemical) विशेषताएं होती हैं। जिन्हें अयस्कों से पृथक करने के लिए विशेष प्रकार की निष्कर्षण प्रक्रियाओं की जरुरत पड़ती है। प्राचीन वैदिक रसायन शास्त्र के ग्रंथों में मानव शरीर में होने वाली विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं (chemical reactions) का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में हमें कपास की रंगाई चमड़े को पकाने (उपयोग योग्य बनाने) और इन प्रक्रियाओं में उपयोग होने वाले रसायनों का वर्णन मिलता है।

वैदिक रसायन शास्त्र के विद्वान आचार्य गोविन्द है जिन्होंने अति प्राचीन रस-तंत्र ग्रन्थ "रसार्णव" की रचना की। इस ग्रन्थ में दो पात्रों भौरव और देवी के बीच होने वाले संवाद के रूप में वर्णित किया गया है। आचार्य गोविन्द ने धातुओं को नष्ट करने का भी वर्णन किया गया है। आगे धातुओं को उपयोग में लाने योग्य बनाने के लिए उसके गुणों (qualities) को नष्ट करने की विधि का उल्लेख किया गया है। जिनका वर्णन प्राचीन वैदिक ग्रंथों में भी मिलता है। रासायनिक प्रयोगशालाओं में सभी धातुओं को नष्ट करने के लिए सल्फर (S) का उपयोग किया जाता था।

2.4.1.1. जस्ता से सोना बनाने की विधि

जस्ता का सोने (gold) में परिवर्तन का वर्णन मिलता है, जिसके लिए एक भाग जस्ते को तीन भाग तांबे के साथ मिलकर गर्म किया जाता है। जिसके फलस्वरूप पूरा पदार्थ पीतल (सुनहरे रंग का मिश्रण) में परिवर्तित हो जाता है।आचार्य गोविन्द ने धातुओं में जंग और क्षरण से लड़ने की क्षमता के क्रम का भी उल्लेख किया है। जिनके अनुसार क्षरण से अप्रभावित रहने वाली धातुओं का क्रम है: सोना, चाँदी, तांबा, पीतल, सीसा और लोहा।

सुवर्ण रजतं तम्रं तीक्ष्णवंगम् भुजंगमः।
लोहकं पद्धिधम् तच्च यथापूर्वं तदक्षयम्।। (रसार्णव 7.89.90)

2.4.1.2. तांबे से कॉपर सल्फेट बनाने की विधि

तांबे से कॉपर सल्फेट बनाने की विधि का उल्लेख रसार्णव में मिलता है। जैसा की आप जानते है कि जब तांबे को सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ मिलाया जाता है, तो हमे कॉपर सल्फेट की प्राप्ति होती है।

ताम्रदः जलैरयोगे जयते तुत्यकम् शुभम्।

2.4.1.3. धातुओं का भस्म का वर्णन

जब किसी धातु के हानिकारक गुणों को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा हटा दिया जाता है और धातु को राख में बदल दिया जाता है तो उसे भस्म कहते है। लौह (लौह-भस्म), चाँदी (रजत-भस्म), सोना (सुवर्ण-भस्म), तांबा (ताम्र-भस्म), सीसा (सीस-भस्म) और टिन (वंग-भस्म) की राख का उपयोग औषधीय कार्यों के लिए किया जाता था और आधुनिक समय में भी किया जा रहा है।

2.4.2. वेदों में जल की उत्पत्ति का वर्णन

आधुनिक समय में जल संकट एक बहुत बड़ी समस्या बनता जा रहा है। ऐसे में इसकी उत्पत्ति एवं रखरखाव का महत्त्व भी बढ़ चुका है। अब आगे देखते है कि वेदों में जल के विषय में क्या कहा गया है? अथर्ववेद में जल के संघटन (composition) का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के अनुसार जल दो तत्वों से बना है। ये तत्व हैं अग्नि (oxygen) एवं सोम (hydrogen)।

अग्नीषोमौ विभ्रति-आप इत् ताः (अथर्ववेद 3.13.5)

वेदों में ऑक्सीजन के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है उदाहरण के लिए अग्नि, मित्र, मातरिश्वा और वैश्वानर अग्नि आदि। इसी प्रकार हाइड्रोजन के लिए सोम, जल, सलिल, आपः, वरुण आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। अथर्ववेद का कथन है कि जल (water) में मातरिश्वा वायु (oxygen) विद्यमान है।

अप्सु-आसीन्-मातरिश्वा प्रविष्टः (अथर्ववेद 10.8.40)

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि जल (water) में वैश्वानर अग्नि (oxygen) विद्यमान है।

वैश्वानरो यासु-अग्निः प्रविष्टः, ता आपः (ऋग्वेद 7.49.4)

2.4.2.1. जल का सूत्र

ऋग्वेद के एक मन्त्र में जल के सूत्र का वर्णन मिलता है. इस मंत्र में कहा गया है कि मित्र और वरुण के संयोग से जल प्राप्त होता है।

मित्रं हुवे पूत्दक्षम् वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता।। (ऋग्वेद 1.2.7)

अर्थात् जल की प्राप्ति हेतु, मैं प्रवित्र ऊर्जा को धारण करने वाले मित्र (oxygen) एवं सभी दोषों का नाश करने वाले वरुण (hydrogen) को ग्रहण करता हूँ। इस मन्त्र में मित्र शब्द ऑक्सीजन के लिए और वरुण शब्द हाइड्रोजन के लिए प्रयुक्त किया गया है। किन्तु इन दोनों की अनुपातिक मात्रा का स्पष्ट वर्णन नहीं है।आधुनिक विज्ञान के अनुसार जल का सूत्र होता है- H_2O। इसके अनुसार हाइड्रोजन गैस (H_2) के दो अणु (molecule) और ऑक्सीजन गैस (O_2) के एक अणु को किसी पात्र में रखकर उसमें विद्युत-तरंगें प्रवाहित करने के फलस्वरूप जल के दो अणु की प्राप्ति होती है।

$$2H_2 + O_2 \rightarrow 2H_2O$$

ऋग्वेद में हाइड्रोजन गैस और ऑक्सीजन गैस के अनुपातिक मात्रा का स्पष्ट किया गया है।ऋग्वेद के अनुसार (ऋग्वेद 7.33.10 से 7.33.13), एक कुम्भ में मित्र और वरुण के रेत वीर्य (कण) को एक साथ उचित मात्रा में डाला गया, जिसके परिणाम स्वरूप वसिष्ट और अगस्त्य ऋषि का जन्म हुआ। इस कार्य हेतु विद्युत प्रवाहित किया गया। वसिष्ट और अगस्त्य उर्वशी (विद्युत) के मानस पुत्र है, अर्थात् ये दोनों उर्वशी के मन से उत्पन्न हुए है।

(अ) विद्युतोज्योतिःपरिसंजिहानम् मित्रावरुणा यद्पश्यन्ताम् तवा।
तत्तेजन्मउतैकंवसिष्ट, अगस्त्यो।। (ऋग्वेद 7.33.10)
(ब) उतासिमैत्रावरुणो वसिष्ठ, उर्वश्यां मनसोअधि जातः। (ऋग्वेद 7.33.11)
(स) अप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः।
द्रप्सं स्कत्रं .. पुष्करे त्वाददंत।। (ऋग्वेद 7.33.12)
(द) कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानं।
ततो जातमाहुर्वसिष्ठम्।। (ऋग्वेद 7.33.13)

इस मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि मित्र और वरुण के संयोग से वसिष्ट यानि जल की उत्पत्ति हुई। साथ ही यह स्पष्ट कहा गया है कि जब तक विद्युत प्रवाह द्वारा उसमें चंचलता उत्पन्न नहीं की जाती है, तब तक जल नहीं बनेगा।इन मंत्रों में पुष्कर एवं कुम्भ शब्द परखनली (testtube) की ओर संकेत करते है।उर्वशी जिसका शाब्दिक अर्थ होता है- विशाल क्षेत्र में व्याप्त अर्थात् विद्युत (electricity)।आगे इन मंत्रों में वसिष्ट और अगस्त्य नाम जल के लिए प्रयुक्त हुआ है।

2.4.2.2. मित्र-वरुण वृष्टिकर्ता

अंतरिक्ष में जल की उत्पत्ति का उपरोक्त क्रम चलता रहता है, इसी से वृष्टि होती है। यजुर्वेद में समुद्र आदि के जल का भाप में परिवर्तित होकर वायु के द्वारा आकाश में जाने का वर्णन किया गया है। वहाँ मित्र (oxygen) एवं वरुण (hydrogen) विद्युत के संपर्क में आने से बादल में परिवर्तित होकर वृष्टि करते है। यदि मित्र एवं वरुण संपर्क में न आए तो न तो बादल बनेगा और नहीं वृष्टि होगी। यजुर्वेद में बादलों को जल का सूक्ष्म (भस्म) रूप कहा गया है।

(अ) मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। (यजुर्वेद 2.16)
(ब) मारुतं पृषतीर्गच्छ, वशा पृश्निर्भुत्वा दिवं गच्छ,
ततो नो वृष्टिमावह। (यजुर्वेद 2.16)
(स) अभ्रं वा अपां भस्म। (यजुर्वेद 13.53)

2.4.2.3. जल का महत्त्व एवं प्रमुख गुण

अथर्ववेद (3.7.5) के अनुसार, जल से सभी प्रकार के रोगों का इलाज किया जा सकता है। यह आनुवंशिक रोगों को भी नष्ट करता है।ऋग्वेद (1.23.23) के अनुसार, जल में सोम आदि रसों को मिलाकर सेवन करने से मनुष्य दीर्घायु को प्राप्त करता है।

अथर्ववेद (6.24.1) में जल के अनेक गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि हिमालय से निकालने वाली नदियों का जल विशेष लाभकारी होता है, इसका उपयोग हृदय संबंधित रोगों में करना चाहिए। बहता हुआ जल, रुके हुए जल की अपेक्षा शुद्ध एवं गुणकारी होता है। जल बलवर्धक होता है जो शरीर को सुन्दरता प्रदान करता है। यह मनुष्य को शक्ति और गति प्रदान करता है। मनुष्य को पौष्टिकता और कर्मठता के लिए शुद्ध जल का सेवन करना चाहिए (अथर्ववेद 1.5.1 एवं 6.23.3)। जल मानवमात्र को जीवन प्रदान करता है। यही जीवन का आधार भी है। जल के बिना मानव का जीवित रहना संभव नहीं है (अथर्ववेद 1.5.4)।

अत्यंत गहराई से निकाला हुआ जल अति उत्तम होता है। चिकित्सा के लिए यह सर्वोत्तम होता है (अथर्ववेद 19.2.3)। जल में संजीवनी शक्ति होती है। इसके सही प्रकार से उपयोग करने से

मनुष्य सौ वर्ष की आयु पाप्त कर सकता है (अथर्ववेद 19.69.1)। जल में अग्नि और सोम दोनों तत्व है, इसलिए जल का प्रभाव तीव्र होता है। आग्नेय तत्व के द्वारा यह प्राण शक्ति देता है और सोमीय तत्व के द्वारा तेजस्विता देता है (अथर्ववेद 3.13.5)।

2.4.2.4. जल के सामान्य गुण

जल पदार्थों को गीला करता है और दोषों को निकलता है (अथर्ववेद 7.89.3)।स्थान एवं आश्रय के भेद होने पर जल के गुणों में भी भेद हो जाता है। वर्षा का जल सर्वोत्तम होता है (अथर्ववेद 7.89.1)। बहता हुआ जल निर्दोष और गुणकारी होता है (अथर्ववेद 6.23.1)। अतः रुका हुआ व दूषित जल अग्राह्य है.

अथर्ववेद में शरीरविज्ञान की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि शरीर में आठ प्रकार का जल होता है अर्थात् शरीर की सात धातुएं एवं गर्भ अर्थात् रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, वीर्य एवं गर्भ ये सभी जल के विभिन्न रूप है (अथर्ववेद 11.8.29 से 11.8.32)।

2.4.2.5. जल में सभी देव (तत्व)

ऋग्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि जल में सभी देवों (तत्वों) का निवास है। अतः जल देवालय है। जल के आधार पर ही सम्पूर्ण रसायन विज्ञान आधारित है। जल में देवों को सदा तैयार कहा गया है, इसका अभिप्राय यह है कि जल में जो जब चाहे, जहाँ चाहे परीक्षण कर सकता है।

(अ) यद् देवा अदः सलिले, सुसंरब्धा अतिष्ठत। (ऋग्वेद 10.72.6)

(ब) प्रविष्टा देवाः सलिलानि-आसन्। (अथर्ववेद 10.8.40)

इससे यह भी ज्ञात होता है कि जल की प्रत्येक कणिका (molecule) में छेद (पोल) है। अतः जल में शक्कर या नमक की कणिकाएं प्रवेश (घुलना) करती है।यदि जल ठोस होता तो उसमें चीनी या नमक प्रवेश नहीं हो पाताअर्थात् चीनी एवं नमक का जल में घुलना नहीं हो पाता।

'प्रविष्टा देवाः सलिलानि-आसन्' से यह सिद्ध होता है कि जल में देवताओं के प्रवेश के लिए स्थान है। इससे पता चलता है कि जल अखंड, अविभाज्य या अविभक्त नहीं है। इसी प्रकार सोना (gold) भी अखंड या अविभाज्य नहीं है। सोने को तपाने पर इसके रेणुओं/अणुओं (molecule) कम्पन करने लगते है। जल और स्वर्ण आदि के अन्दर खाली स्थान है, अतः इनको कम्पन करने के लिए स्थान मिल जाता है। परमाणु (atom) के भीतर भी खाली स्थान होता है। इसीलिए इलेक्ट्रान परमाणु में गतिशील रहते है।ऋग्वेद में अणुओं के इस प्रकार के कम्पन को अणुओं नृत्य करना कहा गया है। इस प्रकार आप देख सकते है कि प्रत्येक इलेक्ट्रान नृत्य कर रहा है। जल व स्वर्ण आदि को उच्च ताप पर तपाने पर यह नृत्य देखने को मिलता है।

अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत. (ऋग्वेद 10.72.6)

लार्ड केल्विन द्वारा किए गए अध्धयन से यह पता चलता है कि जल की एक बूंद में जल के लगभग 10^{24}(अर्थात् 1 के बाद 24 शून्य) अणु पाए जाते है। इनमें से प्रत्येक कण या रेणु या अणु लगातार नृत्य (कम्पन) कर रहा होता है। इसी प्रकार प्रसिद्ध वैज्ञानिक मैक्सवेल, क्लौसिअस एवं स्टोनी आदि ने एक घन मिलीमीटर ($1\ mm^3$) गैस (अत्यंत अल्प मात्रा) में पाए जाने वाले अणुओं की गणना की तो ज्ञात हुआ कि इनकी संख्या 4×10^{16}(अर्थात् 4 के बाद 16 शून्य) है।इस प्रकार

ज्ञात होता है कि चाहे जल हो या गैस, इसके छोटे से कण में भी असंख्य अणु या रेणु (molecules) होते है।

2.4.3. रसायन शास्त्र की प्रमुख शाखाएँ

यदि रसायन विज्ञान की प्रमुख शाखाओं की बात की जाय तो आधुनिक विज्ञान के अनुसार रसायन विज्ञान की तीन प्रमुख शाखाएँ मानी जाती है। ये शाखाएँ इस प्रकार है:-

(अ) अकार्बनिकरसायन (Inorganic Chemistry)

(ब) कार्बनिक रसायन (Organic Chemistry)

(स) भौतिक रसायन (Physical Chemistry)

परन्तु वेदों में रसायन विज्ञान का ऐसा किसी प्रकार के विभाजन या शाखाओं का वर्णन नहीं मिलता है। तथापि उपरोक्त शाखाओं में आने वाली विषयों पर कुछ संक्षिप्त विवरण अवश्य प्राप्त होता है।

2.5 सारांश

वेद विश्व साहित्य में अतिप्राचीन ज्ञान के स्रोतों में से एक है। वेदों में दर्शनशास्त्र, आचारशास्त्र, संगीत, आयुर्वेद, धर्म, ज्योतिष आदि विषयों के वर्णन के साथ-साथ विज्ञान के अपूर्व भण्डार भी देखने को मिलते है।वेदों में भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, वनस्पति विज्ञान, जन्तु विज्ञान, गणित, शिल्प-विज्ञान, कृषि-विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, वृष्टि-विज्ञान, पर्यावरण आदि का वर्णन मिलता है। वैदिक विज्ञान के अनुसार, अथर्व ऋषि को प्रथम वैज्ञानिक की मान्यता दी गयी है जिन्होंने घर्षण विधि द्वारा अग्नि की उत्पत्ति की थी। इस अग्नि का उपयोग प्रायः यज्ञ, हवन आदि कार्यों हेतु किया जाता था।अथर्व ऋषि ने ही जलीय विद्युत एवं भूगर्भीय अग्नि का अविष्कार किया था।भौतिक विज्ञान में वर्णित ऊर्जा (अग्नि) एवं ऊर्जा के विभिन्न गुणों का उल्लेख प्राचीन वेद ग्रंथों में मिलता है। तैत्तिरीय संहिता में ऊर्जा उत्पन्न करने के वाले संयंत्रों जैसे वात-यंत्र, दिशा-यंत्र, ऋतु-यंत्र एवं तेजस-यंत्र का वर्णन मिलता है।ध्वनि तरंगों के मापन हेतु वाग्य-यंत्र का प्रयोग किया जाता था।वेदों में सूर्य एवं सौर ऊर्जा (ऊर्जा का आधुनिक स्रोत) का विस्तृत उल्लेख देखने को मिलता है। वेदों में कपड़ों की रंगाई से लेकर धातुओं के आभूषण एवं भस्म बनाने की विधियों का वर्णन मिलता है। साथ ही वेदों में जल की उत्पत्ति, जल का सूत्र और गुणों का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। वेद मंत्रों एवं ऋचाओं में अनेक प्रकार की भौतिक एवं रासायनिक अभिक्रियाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

2.6 परिभाषित शब्दावली

वृष्टि – वर्षा, मौसम

भूगर्भीय – भूमि के अन्दर की

दोहन – उपभोग करना

द्युलोक – स्वर्ग लोक

द्यावापृथिवी – स्वर्ग और पृथ्वी

वात – हवा या वायु

तेज – प्रकाश

न्यूनतम – सबसे कम
पुरुरूप – अनेक रूप धारण करने वाला
चराचर – जड़ और चेतन
नाना – अनेक, कई
आदित्य – सूर्य
न्यूनतम – सबसे कम
कुम्भ – घड़ा
उर्वशी – विशाल क्षेत्र में व्याप्त, विद्युत
वृष्टिकर्ता–वर्षा करने वाला
वृष्टि – वर्षा
अग्राह्य – ग्रहण न करने योग्य
तपाना – उच्च ताप पर गर्म करना

2.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. वेदों के अनुसार, ऊर्जा का स्वामी किसे माना गया है?
2. अथर्व ऋषि के अनुसार, अग्नि को किन-किन विधियों द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है?
3. वेदों में किसे विश्व का प्रथम वैज्ञानिक कहा गया है?
4. तैत्तिरीय संहिता में ऊर्जा उत्पन्न करने हेतु किन संयंत्रों का वर्णन मिलता है?
5. ध्वनि के मापन के लिए किस यंत्र का प्रयोग किया जाता था?
6. ऊर्जा के अविनाशीता के सिद्धांत का वर्णन किस वेद में मिलता है?
7. ऊर्जा के अविनाशीता का सिद्धांत क्या है?
8. रेडियो और टेलीविज़न की संरचना ऊर्जा के किस गुण के आधार पर हुई है?
9. टेलीफ़ोन की संरचना ऊर्जा के किस गुण के आधार पर हुई है?
10. वेदों में सूर्य को ब्रह्माण्ड की आत्मा क्यों कहा गया है?
11. वेदों में सोम शब्द किसके लिए प्रयुक्त किया गया है?
12. सूर्य के प्रकाश में किस-किस रंग की किरणें पायी जाती हैं?
13. इन्द्रधनुष में कितने रंग पाए जाते है?
14. सूर्य को ब्रह्माण्ड की आत्मा क्यों कहा जाता है?
15. रसार्णव की रचना किसने की थी?
16. वैदिक काल में धातु के भस्मों का प्रयोग किस कार्य हेतु किया जाता था?
17. जस्ते से सोना कैसे प्राप्त होता है?
18. तांबे से कॉपर सल्फेट कैसे बनता है?
19. जल का सूत्र क्या होता है?
20. जल की उत्पत्ति किन दो तत्वों के मिलाने से होती होती है?
21. जल की उत्पत्ति का रासायनिक अभिक्रिया क्या है?
22. जल के महत्त्वपूर्ण गुणों का वर्णन करें।

23. 'प्रविष्टा देवाः सलिलानि-आसन्' से क्या तात्पर्य है?
24. जल के एक बूंद में जल के लगभग कितने अणु विद्यमान हो सकते है?
25. रसायन विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ कौन-कौन हैं?

2.8 सन्दर्भ ग्रंथों की सूची

1. वेदों में विज्ञान, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर (भदोही), 2000.
2. वेद में भौतिक विज्ञान, ऋचा योगमयी, अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, गाज़ियाबाद, 2018.
3. परिचय वैदिक भौतिकी, विशाल आर्य, वेद विज्ञान मंदिर, भागल भीम, राजस्थान, 2021.
4. वैदिक भौतिकी, वेब पेज पुराण-वेदस (www.puranvedas.com).
5. वैदिक रसायन शास्त्र, वेब पेज पुराण-वेदस (www.puranvedas.com).
6. वेदों में वैज्ञानिक तत्व, डॉ० स्वामी परमार्थदेव, शोधसंहिता 10(2), 237-249 (2023).

इकाई–3 वैदिक वनस्पति एवं पर्यावरण विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 वेदों में पर्यावरण चेतना
3.3.1 पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषा
3.3.2 वेदों में पारिस्थितिकी तन्त्र
3.3.3 वेदों में पारिस्थितिकी सन्तुलन
3.3.4 अथर्ववेद में पर्यावरण प्रदूषण
3.3.4.1 प्रदूषण
3.3.4.1.1 भौतिक प्रदूषण के प्रकार
(i) वायु प्रदूषण
(ii) जल प्रदूषण
(iii) भूमि प्रदूषण
3.4 वेदों में अन्य प्रकार के प्रदूषण
3.5 वेदों में पर्यावरण संरक्षण
3.5.1 वेदों में पर्यावरण संरक्षण के उपाय
3.6 सारांश
3.7 परिभाषित शब्दावली
3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.9 सन्दर्भ (References) ग्रन्थों की सूची

3.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हैं वेद ज्ञान के अनन्त सार्वभौमिक एवं सार्वग्राही स्रोत हैं। वेद मानव जीवन के सभी पहलुओं से सम्बध रखता है। मानव चिंतन की सम्पूर्णता वेद में निहित है। बिल डूरेंट ने अपने चिंतन में भारत के सन्दर्भ में यह विचार व्यक्त किया था कि–''भारत हमें परिपक्व मस्तिष्क की सहनशीलता, सौम्यता और आत्मा की अग्रहणशीलता, सुबुद्ध आत्मा की शांति और सभी जीवधारियों के बीच एकता और प्रेम की दृष्टि प्रदान करेगा।''[1] वेदों में विश्व की जटिल एवं गम्भीर समस्याओं का समाधान निहित है। अतः आज विश्व में वैदिक ज्ञान को जानने की जिज्ञासा निरन्तर बढ़ रही है। ''वैदिक ज्ञान चेतना के सभी रूपों एवं स्तरों को प्रकाशित करने वाला है।''[2]

पर्यावरण सम्बन्धी आधारभूत अवधारणाओं को सर्वप्रथम वेदों में देखा जा सकता है। वेदों में पर्यावरण चेतना एवं चिंतन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में सर्वत्र देखा जा सकता है।

उन्नीसवीं शती में शुरू हुई औद्योगिक क्रांति के दुष्प्रभाव को आज इक्कीसवीं सदी में पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के रूप में सर्वत्र महसूस किया जा रहा है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौतिक और जैविक आदि सभी स्तरों पर मानव के लिए पर्यावरण समस्या आज गम्भीर रूप धारण कर चुकी है। जैवमण्डल के विघटन की समस्या आज सामने खड़ी है। सभी इस चुनौती से निपटने के लिए गम्भीर चिन्तन–मनन कर रहे हैं। परन्तु पर्यावरण सम्बंधी समस्याओं के हल के उपाय अभी मूर्त रूप नहीं ले पाये हैं।

प्राकृतिक संसाधनों के असीमित दोहन ने अनेकों रूपों में पर्यावरण प्रदूषण तथा जैविक विविधता ह्रास इत्यादि से सम्बन्धी समस्याओं को जन्म दिया है। वर्तमान में पर्यावरणीय समस्याएँ समस्त विश्व की गम्भीर चिन्ता का केन्द्र बिन्दु है। विकसित एवं विकासशील देश पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक योजनायें बना रहे हैं और धन भी व्यय कर रहे हैं। विभिन्न देश पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु स्वतंत्र मंत्रालय स्थापित कर रहे हैं। भारत में भी पृथ्वी मंत्रालय की स्थापना की गई है। नये–नये अनुसंधान किये जा रहे हैं, परन्तु आधुनिक विज्ञान पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान नहीं ढूँढ पा रहा है। वस्तुतः आर्थिक विकास के साथ पर्यावरणीय समस्याएँ नित्य गम्भीर रूप धारण करती जा रही हैं। 1972 ई० में नार्वे की राजधानी स्टाकहोम में **'मानव पर्यावरण'** सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें सर्वप्रथम पर्यावरण प्रदूषण एवं विघटन की ओर वैश्विक स्तर पर ध्यान आकर्षित किया गया। परन्तु हमारे ऋषियों को हजारों वर्ष पूर्व इस गम्भीर संकट का आभास हो गया था और उन्होंने पर्यावरण सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु उपाय संसार के सम्मुख प्रस्तुत किये।

नैसर्गिक संसाधनों के असीमित दोहन के परिणामस्वरूप वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियाधर्मी प्रदूषण, हरित ग्रह प्रभाव, जैव विविधता ह्रास आदि अनेकों रूपों में पर्यावरण पर प्रभाव नकारात्मक रूपों में देखा जा सकता है।

पर्यावरण संबंधी चिन्तन की प्राचीनतम परम्परा का प्रथम साक्षात्कार वेदों में होता है। चारों वेदों पर्यावरण सम्बन्धी चिन्तन उपलब्ध होता है, किन्तु अथर्ववेद में यह व्यापक रूप में प्रतिपादित किया गया है। अथर्ववेद में रोग दूर करने वाली औषधियों, मृत्यु को दूर करने वाले साधनों तथा ब्रह्म (ज्ञान) के सन्दर्भ में विशद् विवेचन हुआ है। शांति स्थापित करना अथर्ववेद का साध्य रहा है, परन्तु पर्यावरण प्रतिरक्षण जैसी अद्यतन समस्याओं के सन्दर्भ में अथर्ववेद का अनुशीन अब तक नहीं हुआ है। अथर्ववेद में पर्यावरण चेतना सर्वत्र परिलक्षित है परन्तु पर्यावरण शब्द उपलब्ध नहीं है। किन्तु इसका संकेत 'वृतावृता' (12.1.52), छन्दांसि (10.2.17) पर्यभवत् (10.2.18) आदि शब्दों के सन्दर्भ में उपलब्ध होता है।

वेदों में पर्यावरण के आरम्भिक स्वरूप सृष्टि उत्पत्ति से लेकर प्रदूषण निवारण तक की चेतना व्याप्त है। वैदिक आर्य सदैव पर्यावरण संरक्षण के प्रति सचेत रहे हैं। पर्यावरण के विकास में ही उन्होंने अपना विकास एवं उसके हित में ही अपना हित समझा।

3.2 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन से पर्यावरण विज्ञान से सम्बन्धित तत्वों को जान सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से पारिस्थितिकी से सम्बन्धित विभिन्न घटकों को जान सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से जन्तुओं एवं पादपों के आपसी सम्बन्धों को जान सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों को जान सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से पर्यावरण एवम् जैव विविधता के संरक्षण के महत्व को समझ सकेंगे।

3.3 वेदों में पर्यावरण चेतना

पर्यावरण चेतना से तात्पर्य है कि मनुष्य यह समझे एवं स्वीकार करे कि प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के साथ संगति रहने में सुख एवं समृद्धि है एवं प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के साथ विसंगति में वेदना एवं विभीषिका अन्तर्निहित है। पर्यावरण चेतना का रचानात्मक स्वपरूप यह है कि मनुष्य पारिस्थिति संतुलन को सुरक्षित रखे। वैदिक संदर्भ में पर्यावरण चेतना का अभिप्राय यह है कि पर्यावरणीय घटकों – संघटकों के महत्व को समझना तथा उसके अनुकूल आचरण करना, उसका समुचित उपयोग करना तथा उसका संवर्धन व संरक्षण करने का प्रयत्न करना।

3.3.1 पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषा

पर्यावरण का अर्थः– पर्यावरण पद परि तथा आवरण दो शब्दों से मिलकर बना है। 'परि' का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है आच्छादन (ढकना)

करना। इस प्रकार पर्यावरण एक आवरण है जो जीव–जगत् को चारों ओर से आवृत्त किये रहता है। **'परितः आवृणोति जीव जगदिति पर्यवरणम्'।** मानव के जीवन निर्वाह के लिए भौतिक संसाधनों के अतिरिक्त सांस्कृतिक परिवेश की आवश्यकता है। इस दृष्टि से पर्यावरण के दो भेद हैं– भौतिक तथा सांस्कृतिक

भौतिक पर्यावरण मूलतः प्रकृति निर्मित होता है जबकि सांस्कृतिक पर्यावरण मानव निर्मित।

परिभाषा :– **एनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेनिका** के अनुसार–पर्यावरण उन सभी वाह्य प्रभावों का समूह है जो जीवों को भौतिक एवं जैविक शक्ति से प्रभावित करते रहते हैं तथा प्रत्येक जीव को आवृत्त किये रहते हैं।

पार्क सी०सी० के अनुसार–पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है जो निश्चित समय में निश्चित स्थान पर आवृत्त करती है।[3]

पर्यावरण से हमारा तात्पर्य है किसी भी प्राणी या मानव या समाज के चारों ओर विद्यमान समस्त परिवेश। जलमण्डल, स्थलमण्डल तथा वायुमण्डल तीनों सम्मिलित रूप से समग्र पर्यावरण की संरचना करते हैं। वे सभी पदार्थ पर्यावरण के अंग हैं जो किसी न किसी रूप में पृथिवी की जैविक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

अथर्ववेद के मंत्रों से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि वे वर्तमान पर्यावरण विषयक अवधारणाओं से परिचित थे। एक मंत्र में प्रश्न उठाया गया है कि भूमि को किसने आच्छादित किया है ? किसने द्युलोक को घेरा है? किसने महिमा से पहाड़ों को ढका है? पुरुष किससे कर्मों को करता है?[4] इस प्रश्नांश के समाधान में कहा गया है कि जल, वायु और औषधियों ने इन भुवन को आच्छादित कर रखा है।[5]

अथर्ववेद के एक मंत्र[6] की व्याख्या करते हुए श्रीपाद सातवलेकर[7] ने माना कि यह जगत् पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्र और महत्तत्व इन सातों के द्वारा चलाया जाता है तथा एक ही महत्त्व इन सातों में परिणत होकर इस जगत को चलाता है।

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के अनुसार जगत् के मूल में जो सात पदार्थ– पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्र और अहंकार है– ये ही संपूर्ण जगत में दिखाई देने वाले विविध रूप धारण करते हैं।

अथर्ववेद में हमें प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रति भी चेतना दृष्टिगत होती है। श्रेष्ठ सांस्कृतिक जीवन मूल्य प्राकृतिक पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। मानव जीवन में जो कुछ भयानक, क्रूर और पापमय है वही पारिस्थितिकी असंतुलन व प्रदूषण के लिए उत्तरदायी है। अतः जीवन में शान्ति व शिवत्व की कामना की गई है।8

3.3.2 वेदों में पारिस्थितिकी तन्त्र

प्रकृति के दो प्रमुख घटक जीवन (Organism) और पर्यावरण (Environment) परस्पर संबंधित एवं परस्पर अभिक्रियाशील है। जीवों तथा उनके पर्यावरण के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं।

प्रकृति के पारिस्थितिकी तन्त्र के अन्तर्गत पर्यावरण के समस्त घटक परस्पर सम्बद्ध हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार परमात्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अतग्नि, अग्नि से जल व जल से पृथिवी एवं पृथिवि से औषधियाँ प्रकट हुई। औषधियों से अन्न व अन्न से रेतस् प्रादुर्भूत हुआ और रेतस् से पुरुष।[7]

वेदों में मानव का पारिस्थितिकी तंत्र में वही स्थान है जो किसी भी अन्य जन्तु या पौधे का अपने पारिस्थितिकी तंत्र में होता है। वैदिक जन विभिन्न जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति पर्यावरणीय तत्वों के प्रति कृतज्ञता का भाव रखकर करते थे। वे इस सत्य से परिचित थे कि सम्पूर्ण विश्व में ईश्वर व्याप्त है, अतः त्यागपूर्वक जगत् के पदार्थों का उपयोग करना चाहिए, लालच नहीं करना चाहिए।[8] जगत् के पदार्थों का त्यागपूर्वक भोग करने के उद्देश्य से वे देवताओं के लिए हव्य विशेष का समर्पण करते थे। हव्य विश्व के समर्पण द्वारा प्राकृतिक पदार्थों के संदोहन से क्षरित गुणवत्ता की क्षतिपूर्ति करते थे।

वेदों के अनुसार सृष्टि में रचित समस्त पदार्थों एवं प्राणियों पर निर्भर है। यथा– औषधि व वनस्पतियों वायु शोधन के साथ वृष्टि में भी सहायक होती है। जल तथा वनस्पति एक दूसरे के पूरक हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण औषधियों को **'वर्षवृद्ध'** कर रहा है।[9] यजुर्वेद में जल को औषधियों से बढ़ने वाला और औषधियों को जल से बढ़ने वाला कहा गया है।

3.3.3 वेदों में पारिस्थितिकी सन्तुलन

पारिस्थितिकी सन्तुलन को बनाये रखने के लिए ऋषि सावधान थे। उनका निर्देश था कि पृथ्वी के जिस भाग को खोदें वह शीर्घ ही भर जावे। पृथ्वी के नाजुक स्थानों में क्षति या चोट न पहुँचे। समस्त जीव–जन्तु पारिस्थितिकी संतुलन एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु आवश्यक होते हैं। अतः चलते–फिरते, बैठेहुए, खड़े हुए दाहिने या बायें पाँव से टहलते हुए भूमि में किसी को दुःख न देने की बात ही गयी है।[4]

पारिस्थितिकी संतुलन हेतु पर्वत, समुद्र, नदियों आदि सभी का नियमबद्ध होना आवश्यक है।[10] क्योंकि संपूर्ण जैवमण्डल के नियमित तथा सुव्यवस्थित रहने पर ही मस्त वर्षा करते हैं।[11] पारिस्थितिकी संतुलन के मूल में जीव–वनस्पतियों आदि के सह–अस्तित्व का भाव है। प्रकृति का संतुलन भी इसी पर आधारित है। शाश्वत नियम यह है कि स्थिर पर्वत कभी झुकते नहीं हैं, द्रोहरहित द्यावापृथिवी भी उसका उल्लंघन नहीं करती। अतः बुद्धिमानों से यह अपेक्षा है कि वे प्रकृतिगत प्रकृति के नियमों का पालन करें।

3.3.4 अथर्ववेद वेद में पर्यावरण प्रदूषण

पर्यावरण प्रवृत्ति का स्वयं का अनुशासन व संतुलन है। इस अनुशासन एवं संतुलन के भंग होने से प्रदूषण उत्पन्न होता है। प्रदूषण एक ऐसी अवांछित स्थिति है जिसमें भौतिक, रासायनिक व जैविक परिवर्तनों के द्वारा हवा, जल और धरातल अपनी नैसर्गिक गुणवत्ता खो देते हैं और जीवधारियों के लिए हानिकारक होने लगते हैं। इससे जीवन प्रक्रिया बाधित होती है।

पर्यावरण के मुख्य घटक पृथिवी, जल और वायु आदि के प्रदूषण से मानव जीवन एवं धरती का अस्तित्व आज संकट में है। आज से हजारों वर्ष पूर्व वैदिक समय में भी यह समस्या किसी न किसी रूप में रही है।

3.3.4.1 प्रदूषण

अथर्ववेदीय आर्य प्रदूषण की अवधारणा से परिचित थे। पर्यावरण में मानवकृत प्रदूषण की प्रक्रिया मानव सभ्यता के विकास के साथ ही प्रारंभ हो गयी थी। प्रदूषण शब्द अथर्ववेद में नहीं मिलता, किन्तु इसका संकेत 'दूषिः', 'दूष्यां', विषदूषणम', 'दूषणं' व 'दूषीका' इन शब्दों में मिलता है।

प्रदूषण के स्वरूप के आधार पर प्रदूषण को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(अ) भौतिक प्रदूषण तथा

(ब) सांस्कृतिक प्रदूषण

(अ) भौतिक प्रदूषण का तात्पर्य है कि पर्यावरण के भौतिक संघटकों की गुणवत्ता में ह्रास।

(ब) गीता[11] में वर्णित आसुरी सम्पदा–दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, पारुष्य अज्ञान–सांस्कृतिक पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले तत्व हैं। अथर्ववेद में वर्णित सप्त मर्यादाएँ व 8.4 सूक्त सांस्कृतिक पर्यावरण को प्रदूषित कर देने वाले तत्व हैं।

3.3.4.1.1 भौतिक प्रदूषण के प्रकार

भौतिक प्रदूषण के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रदूषण सम्मिलित हैं–

(i) वायु–प्रदूषण

(ii) जल–प्रदूषण

(iii) भूमि–प्रदूषण

(iv) ध्वनि प्रदूषण

(i) वायु प्रदूषण

वायुमण्डल पृथ्वी के चारों ओर व्याप्त हवा का आवरण है जिसमें गैस, ठोस, और तरल पदार्थों के कण असमान मालाओं में उपस्थित रहते हैं। वायु में उपस्थित संघट जब अपने निश्चित अनुपात में होते हैं तो ऐसी वायु को शुद्ध वायु कहा जाता है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त वायु के सामान्य संगठन में गुणात्मक या मात्रात्मक परिवर्तन वायु प्रदूषण कहलाता है।

अथर्ववेद में वायु प्रदूषण विद्यमान होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। रोमकारी जन्तुओं के वायु में सम्मिलित होने पर जङ्गिण मणि को शरीर पर धारण कर इनकी शक्ति को क्षीण किया जाता था। वायु में व्याप्त अज्ञात रोगों के कीटाणुओं एवं यक्ष्मा रोग के कीटाणुओं को हवन द्वारा दूर करने के उल्लेख अथर्ववेद में मिलते हैं।

आर्य प्रदूषित जलों के प्रति सचेत थे। वे प्रदूषित जलों का अतिसर्जन कर देते थे। एक स्थान पर ऋषि कहता है जो गंदा जल है, उसका अतिसर्जन

करता हूँ, मैं उसका स्पर्श नहीं करुँगा। जल में कल्याणकारी और अकल्याणकारी दोनों प्रकार की अग्नियाँ होती हैं। जलों में अनेक प्रकार के कीड़े होते हैं, उनका शरीर में प्रवेश करना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हो सकता है, अतः उनकी उत्पत्ति को ही नष्ट कर देने का वर्णन वेदों में मिलते हैं।

(iii) भूमि प्रदूषण

भूमि जैवमण्डल का वह भाग है जिस प मानव सभी औषधियाँ–वनस्पतियाँ, पशु–पक्षी और जीव–जन्तु निवास करते हैं तथा जो अनेक प्राकृतिक संसाधनों का भण्डार है। भूमि (मिट्टी) एक अति सीमित संसाधन है, जिसकी गुणवत्ता को यथावत बनाये रखना आवश्यक है।

प्राकृतिक कारणों से भूमि के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में ऐसा कोई भी अवांछित परिवर्तन जिसका दुष्प्रभाव मनुष्य तथा पेड़–पौधों पर पेड़–पौधों पर पेड़ अथवा जिससे भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता तथा उपयोगिता नष्ट हो भूमि प्रदूषण कहलाता है।

अथर्ववेद के समय भूमि प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गयी थी। इसके समाधान के लिए पृथिवी तत्त्व को पृथ्वी में मिलाने की बात कही गई है। ज्ञान के द्वारा पृथिवी पर व्याप्त प्रदूषण को दूर करने का प्रयास किया गया है।

पृथिवी त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा।
यद्यद द्युतं लिखितमर्पषेण तेन मा सुस्रोर्बह्मणापि तद् वपामि।।

(iv) ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्राकृतिक क्रियाओं से उत्पन्न होती है। साथ ही यह मानवीय अभिव्यक्ति का साधन है। 'चिल्लाना', 'शोर मचाना' तथा 'ऊँची ध्वनि' से बोलने का वर्णन अथर्ववेद में मिलता है। ये शब्द ध्वनि प्रदूषण के सन्दर्भ में प्रयुक्त किये गये हैं। ध्वनि प्रदूषण से मुक्त होने के लिए अथर्ववेद में कल्याणकारी व सुन्दर वाणी बोलने पर विशेष जोर दिया गया है। जितना आवश्यक हो उतना ही बोलना चाहिए, इसका वर्णन वेदों में है।

3.4 वेदों में अन्य प्रकार के प्रदूषण

खाद्य पदार्थों में प्रदूषण की समस्या का उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। कृषि से उत्पन्न खाने योग्य धान्य, पीने योग्य दूध, खाने योग्य और अयोग्य पदार्थों को प्रदूषण रहित करने का उल्लेख प्राप्त होता है। जहाँ–जहाँ मल लगा हो, उस स्थान को शुद्ध करने की प्रार्थना की गयी है।

अथर्ववेद में धावापृथिवी के सब गोचर पदार्थों में व सात समुद्र तक के क्षेत्र में प्रदूषण व्याप्त होने व उसे मंत्रों द्वारा दूर करने का उल्लेख मिलता है।

अथर्ववेद में सांस्कृतिक प्रदूषण के व्यापक उदाहरण मिलते हैं। मानव के दृष्ट मनोभावों, पाप प्रवृत्तियों, हिंसा आदि के व्यापक विवरण ऋग्वेद में मिलते है। 6.37 सूक्त में शाप देने से, दूसरे को कटुवचन कहने से होने वाली हानि का वर्णन मिलता है। दानभाव रहित घातक स्त्रियों के आपस में मारपीट का वर्णन मिलता है।

आसुरी भावनाएँ रखने वाले पर्यावरण को निम्नलिखित ढंग से नुकसान पहुँचाते हैं–

i. ऐसी भावनायें रखने वालों का कोई घर नहीं होता वे इधर–उधर भटकते रहते हैं।
ii. सदा भयभीत रहते हैं तथा दूसरों को डराते हैं।
iii. उनकी बुद्धि संयमशील होती है।
iv. मन सदा क्रोध से युक्त होता है।

अथर्ववेद के अनुसार मानव को प्रदूषण रहित होने के लिए तीन प्रकार की शुद्धि करनी चाहिए– संबंध शुद्धि, बहिःशुद्धि और अन्तः शुद्धि। स्तम्भ के बंधन से जैसे पशु मुक्त होता है उसी प्रकार मानव संबंध के लोभ से मुक्त हो यह संबंध शुद्धि है। जैसे शरीर पर लगे हुए मल से स्नान करने से शुद्धता होती है, उसी प्रकार बाह्य दोषों से शुद्धता करनी चाहिए। छननी से जिस प्रकार घी शुद्ध होता है उसी प्रकार मानव को अन्तःकरण के मल दूर करने चाहिए।

3.5 वेदों में पर्यावरण संरक्षण

जबसे सृष्टि की रचना हुई है मानव प्राकृतिक संसाधनों का निरंतर उपभोग करता आया है। प्राकृतिक संसाधनों का दक्षतम व हितकारी उपभोग तथा प्रकृति एवं मानव का आनुपातिक संतुलन ही पर्यावरण संरक्षण है।

पर्यावरण सभी के जीवन के आधार है। आकाश, अग्नि, वायु, जल व भूमि का आश्रय लेकर ही सभी प्राणी जीवित रहते हैं। अतः इन सबका संरक्षण आवश्यक है। पर्यावरण संरक्षण वर्तमान पीढ़ी का भविष्य की पीढ़ी के लिए त्याग है।

वेद पर्यावरण को सभी अशुद्धियों से मुक्त रखने का आदेश देता है और यह यज्ञ या अग्नि के माध्यम से किया जा सकता है। अथर्ववेदीय ज्ञानियों ने पर्यावरण की शुद्धता को मानव जीवन एवं विकास के लिए आवश्यक माना है तथा इसके लिए पर्यावरण के छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े घटकों के आपसी समन्वय पर बल दिया गया है। वेदों में कहा गया है कि उपलब्ध पर्यावरण से ही मानव सम्पुष्ट हुआ है।

3.5.1 वेदों में पर्यावरण संरक्षण के उपाय

वेदों ने मानव को पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रेरित किया और इसके लिए उपायों का वर्णन किया है। अथर्ववेदीय ज्ञानियों में जलों के श्रेष्ठ भाग को ही समुद्र की ओर जाने देने की चेतना विद्यमान थी। ज्ञानियों को पता था कि पर्यावरण में स्वच्छता और पवित्रता रखने पर ही मनुष्य रोगों और कष्टों से दूर रहता है। अन्तरिक्ष और द्यावापृथिवी इन तीनों का पर्यावरण संतुलित, स्वच्छ व प्रदूषण रहित होगा तभी मनुष्य भय रहित रहेगा। वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि अंतरिक्ष हमें निर्भय करे। दोनों द्यु और पृथ्वी हमें निर्भय करें। पीछे से आगे से अभय हो। ऊपर और नीचे से हमें अभय हो।

चरक संहिता में प्राणियों और औषधियों दोनों के लिए पर्यावरण की शुद्धता को आवश्यक माना गया है। प्रदूषण रहित वातावरण में पैदा की गई

औषधियाँ ही मानव शरीर को स्वस्थ तथा ओजपूर्ण बनाती हैं। अशुद्ध वातावरण में उत्पन्न औषधियाँ, वनस्पतियाँ, अन्न जल आदि अपने गुणों के विपरीत प्रभाव डालती हैं।

अथर्ववेदीय ज्ञानी शाक के पर्वों को बड़ी सावधानी से काटते थे ताकि औषधियाँ क्रोधरहित रहें। दूसरे शब्दों में ताकि वो भली प्रकार फलती–फूलती रहें। संक्रामक रोगों का उन्मूलन वैदिक ऋषि बड़ी सजगता से करते थे ताकि पर्यावरण प्रदूषण न हो। यक्ष्मा सर्वत्र फैलने वाला रोग है। अथर्ववेदीय ज्ञानी यक्ष्मा को समूल नष्ट करने का प्रयास करते थे ताकि इसका प्रसार अन्यत्र न हो सके।

अथर्ववेद काल में पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाले को मृत्युदण्ड दिया जाता था। सीसे की गोली पर्यावरण की रक्षा के लिए काम में ली जाती थी, इसीलिए उसे 'उपावति' व यातुचातनम् (डाकुओं को हटाने वाला) कहा गया है।

सृष्टि की रचना पंच महाभूतों– आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी से हुई है। मानव पर्यावरण में ये पाँचों तत्व विद्यमान हैं तथा ये परस्पर संबंधित हैं। एक तत्व के प्रदूषित होने पर दूसरा स्वतः प्रदूषित हो जाता है और अन्ततः समन्वित प्रदूषण उपस्थित हो जाता है जिसका प्रभाव प्राणि जगत् पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अथर्ववेदीय ज्ञानी पर्यावरण के प्रत्येक घटक को प्रदूषण रहित रखना चाहते थे। अथर्ववेद के शांति सूक्त के एक मन्त्र में इसी को इंगित करते हुए कहा गया है कि पृथ्वी के घटकों– द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष, आपः एवं औषधियों के प्रदूषण रहित होने की कामना की गई है। पर्यावरण को संरक्षित करने पर ही शांति हो सकती है। पर्यावरण के प्रति शांति की कामना उनके संरक्षण के भाव को व्यक्त करती है। अथर्ववेद के सूक्त 19.9.1 में सर्वत्र शांति (पृथिवी शान्तम्) की कामना की गई है।

ऋग्वेद में समस्त पर्यावरण की रक्षक एक महान मोटी परत का उल्लेख मिलता है जिसमें समस्त संसार को सुरक्षित कर रखा है। जिस प्रकार झिल्ली गर्भस्थ बालक की रक्षा करती है उसी प्रकार यह महान् परत संसार की रक्षा करती है। इसका रंग सुनहरा है। इन मंत्रों में वर्णित उल्बं वर्तमान में परिभाषित ओजोन परत की ओर संकेत करता है।

वैदिक ऋषि इस बात को जानते थे कि यदि मनुष्य पर्यावरण के घटकों को संरक्षित करेगा तो वह उसके लिए रक्षा कवच का काम करेंगे। अथर्ववेद में कहा गया है कि मानव सूर्य, द्यु, पृथिवी और ज्ञान की सहायता से प्रदूषण दूर कर पर्यावरण को संरक्षित कर सकता है।

वैदिक ज्ञान का यह संदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं मानव जाति के लिए विचारणीय है कि मानव अपने कार्य इस प्रकार सम्पादित करे एवं नीति इस प्रकार निर्धारित करे जिससे पर्यावरण के भूतकालिक, वर्तमानकालिक और भविष्यकालिक रूप कल्याणप्रद हों।

अथर्ववेद में भूमि को माता अंतरिक्ष को भ्राता व द्यौ को पिता माना है क्योंकि वे विपत्ति से हमें बचाते हैं। वहीं मानव को सावधान किया है कि वह ऐसा कोई कार्य न करे जिससे उसके इन बन्धुओं को हानि हो।

मानस प्रदूषण सारे विश्व में अशांति का मूल है। अतः वेदों में मन की शुद्धता व श्रेष्ठ संकल्प की प्रार्थना की गई है। मन का पाप प्रदूषण जनक होता है, अतः एक मंत्र में मन के पाप को दूर करने की प्रार्थना की गई है।

3.6 सारांश

वेद ज्ञान के अनन्त, सार्वभौमिक एवं सार्वग्राही स्रोत हैं। मानव चिन्तन की सम्पूर्णता वेद में निहित है। वेदों में विश्व की जटिल एवं गम्भीर समस्याओं का समाधान निहित है। पर्यावरण सम्बन्धी आधारभूत अवधारणाओं को सर्वप्रथम वेदों में देखा जा सकता है। वर्तमान में पर्यावरणीय समस्यायें समस्त विश्व की गम्भीर चिन्ता का विषय है। 1972 ई० में नार्वे की राजधानी स्टाकहोम में 'मानव पर्यावरण' सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें सर्वप्रथम पर्यावरण प्रदूष्ज्ञण एवं विघटन की ओर वैश्विक स्तर पर ध्यान आकर्षित किया गया। परन्तु हमारे ऋषियों को हजारों वर्ष पूर्व इस गंभीर संकट का आभास हो गया था और उन्होंने पर्यावरण सुरक्षा एवं संरक्षा हेतु उपाय संसार के सम्मुख प्रस्तुत किये।

चारों वेदों में पर्यावरण संबंधी चिन्तन किया गया है किन्तु अथर्ववेद में यह व्यापक रूप से उपलब्ध है। वैदिक संदर्भ में ..... पर्यावरण चेतना का अभिप्राय पर्यावरणीय घटकों के महत्व को समझना, उसके अनुकूल आचरण करना, समुचित उपयोग करना तथा उसका संवर्धन व संरक्षण करना है।

मानव के जीवन निर्वाह हेतु भौतिक तथा सांस्कृतिक परिवेश की आवश्यकता होती है। पर्यावरण उन सभी वाह्य प्रभावों का समूह है जो जीवों को भौतिक एवं जैविक शक्ति से प्रभावित करते रहते हैं तथा प्रत्येक जीव को आवृत्त किये रहते हैं। पारिस्थितिकी सन्तुलन को बनाये रखने के लिए ऋषि सावधान थे। पारिस्थितिकी संतुलन हेतु पर्वत, समुद्र, नदियों आदि सभी का नियमबद्ध होना आवश्यक है।

अथर्ववेदीय आर्य प्रदूषण की अवधारणा से परिचित थे। इसका संकेत अनेक शब्दों द्वारा मिलता है। भौतिक प्रदूषण के अन्तर्गत चार प्रदूषण सम्मिलित हैं– वायु–प्रदूषण, जल–प्रदूषण, भूमि–प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण। वेदों में इनके निवारक उपाय भी दिये गये हैं।

पर्यावरण सभी के जीवन का आधार है अतः इसका संरक्षण आवश्यक है। अथर्ववेदीय ज्ञानियों ने पर्यावरण की शुद्धता को मानव जीवन एवं विकास के लिए आवश्यक माना है। वेदों में मानव को पर्यावरण संरक्षण के लिए प्ररित किया और उसके लिए उपायों का वर्णन किया है। मानव प्रदूषण सारे विष्व में अषान्ति का मूल है। अतः वेदों में मन की षुद्धता व श्रेष्ठ संकल्प की प्रार्थना की गई है।

3.7 परिभाषित शब्दावली

सर्वत्र	–	हर जगह
विशद्	–	विस्तृत
अद्यतन	–	आज का
अनुशीलन	–	नियमित अध्ययन

नैसर्गिक	–	प्राकृतिक
आच्छादन	–	ढकना
पादपों	–	पौधों
द्युलोक	–	स्वर्ग
मरुत्	–	वायु
शाश्वत	–	स्थायी, अंतहीन
अतिसर्जन	–	अधिक दान, उदारता
अवांछित	–	जिसे न चाहा जाए या अप्रिय हो।
दुष्प्रभाव	–	बुरा असर
उद्भूत	–	उत्पन्न
प्रदूषण रहित	–	विष रहित
अन्तरिक्ष	–	आकाश
निर्भय	–	भय रहित
उपावति	–	रक्षक
अनन्त	–	जिसका अंत न हो
सार्वभौमिक	–	सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैला हुआ।

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. पर्यावरण सम्बन्धी आधारभूत अवधारणाओं को सर्वप्रथम कहाँ देखा जा सकता है ?
2. वेदों में पर्यावरण का संकेत किन शब्दों द्वारा उपलब्ध होता है ?
3. वैदिक संदर्भ में पर्यावरण चेतना का क्या अभिप्राय है ?
4. अथर्ववेद के अनुसार यह जगत कितने तत्वों द्वारा चलाया जाता है ?
5. श्री पाद दामोदर सातवलेकर के अनुसार जगत के मूल में कौन से सात पदार्थ हैं ?
6. वैदिक जन पर्यावरणीय तत्वों के प्रति कैसा भाव रखते थे ?
7. वैदिक ऋषियों के अनुसार पृथ्वी के किन स्थानों में चोट न पहुँचायें ?
8. पारिस्थितिकी सन्तुलन हेतु किसका नियमबद्ध होना आवश्यक ह ै?
9. अथर्ववेद में प्रदूषण का संकेत किन शब्दों द्वारा मिलता है ?
10. पर्यावरण से क्या तात्पर्य है ?
11. पर्यावरण प्रदूषण से क्या तात्पर्य है ?
12. भौतिक प्रदूषण कितने प्रकार का होता है ?
13. किस वेद में पर्यावरण सम्बन्धी चिन्तन व्यापक रूप से उपलब्ध है ?
14. पर्यावरण संरक्षण क्या है ?
15. मानव पर्यावरण सम्मेलन सर्वप्रथम कहाँ आयोजित हुआ ?
16. सृष्टि की रचना किन पंच महाभूतों से हुई है ?
17. ऋग्वेद में पर्यावरण की रक्षक एक सुनहरी मोटी परत का उल्लेख है। वर्तमान में इसे किस नाम से जानते हैं ?
18. सम्पूर्ण विश्व में अशान्ति का मूल क्या है ?

3.9 सन्दर्भ (References) ग्रन्थों की सूची

1. 'India will teach us the tolerance and gentleness of the mature mind, the quiet content of the unacquisitive soil, the calm of the understanding spirit, and a unifying, pacifying love for all living things' - Will Durant i-Our Oriental Heritage, p. 633
2. डॉ० मुरली मनोहर जोशी : विश्व संस्कृत सम्मेलन, 5–9 अप्रैल, 2001 के अवसर पर अध्यक्षीय भाषण, पृ०. 11
3. उ० पर्यावरणीय भूगोल, पृ०–19
4. अ०वे०, 10.2.18, 9.14(9)2, 12.1.38
5. वही, 18.1.17, 19.9.14
6. अ०सु०भा० नवम काण्ड, पृ० 76
7. सविन्द्र सिंह : पर्यावरण भूगोल : पारिस्थितिकी, पृ० 51
8. यजु०, 40.1, 1.2.1
9. वर्षवृद्धा वा औषधय : तै०ब्रा०, 3.2.2.5; 2.2.5.10
10. ऋ०, 8.7.5.54
11. वयंति मरुतो मिहम्–ऋ०, 8.7.4
12 भ०मी०, 3.40

खण्ड- दो (Section-B)
विज्ञान के विविध आयाम

इकाई–1 वैज्ञानिक भाषा के रूप में संस्कृत

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 वैज्ञानिक भाषा की विशेषताएँ और संस्कृत
1.4 संस्कृत: एक वैज्ञानिक भाषा
1.5 संस्कृत: एक वैश्विक भाषा
1.6 संस्कृत का संरचनात्मक शुद्धता और लचीलापन
1.7 संस्कृत और गणितीय तर्क प्रणाली
1.8 आयुर्वेद और चिकित्सा विज्ञान में संस्कृत का योगदान
1.9 खगोल विज्ञान और ज्योतिष में संस्कृत का उपयोग
1.10 संस्कृत ग्रंथों में निहित भौतिक और रसायन शास्त्र
1.11 वैज्ञानिक अनुसन्धान और संस्कृत
1.12 विश्व स्तर पर संस्कृत की वैज्ञानिक मान्यता
1.13 संस्कृत के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए नई संभावनाएँ
1.14 सारांश
1.15 बोधप्रश्न
1.16 संदर्भग्रन्थसूची
1.17 निबन्धात्मकप्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध भाषाओं में से एक है, जो न केवल साहित्य और धर्म के क्षेत्र में बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी अद्वितीय है। इसका वैज्ञानिक स्वरूप इसके व्याकरण, संरचना, और उपयोगिता में निहित है। पाणिनि का "अष्टाध्यायी" संस्कृत व्याकरण को परिभाषित करता है, जो अत्यंत सटीक, तार्किक और गणितीय प्रणाली है। इसकी संरचना इतनी परिष्कृत है कि यह आधुनिक कंप्यूटर भाषाओं के लिए आदर्श मानी जाती है। संस्कृत के शब्दों और वाक्यों में बहुस्तरीय अर्थ छिपे होते हैं, जो इसे अद्वितीय बनाते हैं। इसके अलावा, गणित और खगोलशास्त्र में भी संस्कृत का योगदान अद्वितीय है। आर्यभटीय और सूर्य सिद्धांत जैसे ग्रंथ खगोलशास्त्र और गणित के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुए हैं, जिनमें समय की गणना, ग्रहों की गति, और शून्य की अवधारणा का उल्लेख है। ये सिद्धांत प्राचीन भारत के साथ-साथ विश्वभर को प्रभावित करते हैं। आयुर्वेद के क्षेत्र में भी संस्कृत के ग्रंथ, जैसे चरक संहिता और सुश्रुत संहिता, मानव शरीर की संरचना, रोगों के निदान और उपचार की वैज्ञानिक विधियों का उल्लेख करते हैं। भाषा विज्ञान में संस्कृत की व्याकरणिक संरचना इसे कंप्यूटर प्रोग्रामिंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के लिए आदर्श बनाती है। पाणिनि के व्याकरणीय नियम "फॉर्मल लैंग्वेज" के सिद्धांतों पर आधारित हैं, जो आधुनिक तकनीकी क्षेत्रों में उपयोगी हो सकते हैं। संस्कृत का दर्शन भी तार्किक विचार और वैज्ञानिक पद्धति को बढ़ावा देता है, विशेष रूप से न्याय और वैशेषिक दर्शन ज्ञान की व्यवस्थित खोज और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल देते हैं। संक्षेप में, संस्कृत केवल एक भाषा नहीं, बल्कि एक ऐसा माध्यम है, जो व्याकरण, खगोलशास्त्र, गणित, आयुर्वेद, और दर्शन जैसे क्षेत्रों में नवाचार और अनुसंधान को प्रेरित करता है। यह भाषा अपने अद्वितीय वैज्ञानिक स्वरूप और योगदानों के कारण आज भी प्रासंगिक और प्रेरणादायक है।

1.2 उद्देश्य

- संस्कृत के व्याकरण और संरचना के अध्ययन से सटीकता, तार्किकताऔर व्यवस्थित विचार शैली को समझने और विकसित करने में मदद मिलता है।
- खगोल विज्ञान, आयुर्वेद, गणितीय तर्कशास्त्रऔर ज्योतिष के क्षेत्र में संस्कृत के योगदान को जानने और प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक उपलब्धियों को समझने का अवसर मिलता है।
- पाणिनीय व्याकरण को कंप्यूटर प्रोग्रामिंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) के क्षेत्र में उपयोगी मानने के कारण, आधुनिक विज्ञान और संस्कृत के बीच के संबंध को समझा जा सकता है।
- पाणिनीय व्याकरण की नियमबद्ध संरचना तार्किक सोच और विश्लेषणात्मक क्षमताओं को बढ़ाने में सहायक है।
- भाषा की वैज्ञानिक प्रकृति के कारण, संस्कृत का उपयोग प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP), अनुवाद, और डेटा प्रबंधन जैसे आधुनिक तकनीकी अनुप्रयोगों में समझने का अवसर मिलता है।

1.3 वैज्ञानिक भाषा की विशेषताएँ और संस्कृत

वैज्ञानिक भाषा का महत्व किसी भी ज्ञान-आधारित क्षेत्र में अत्यधिक होता है। यह भाषा विचारों, तथ्यों और सिद्धांतों को स्पष्ट, सटीक और व्यवस्थित ढंग से व्यक्त करने में सहायक होती है। वैज्ञानिक भाषा की सबसे प्रमुख विशेषता इसकी स्पष्टता है, जिससे जटिलतम जानकारी भी आसानी से समझ में आ सके। यह भाषा भ्रम और गलतफहमी से बचाने के लिए स्पष्ट और सटीक होती है। प्रत्येक शब्द और वाक्य का अपना विशिष्ट अर्थ होता है, जिससे सटीकता सुनिश्चित होती है। वैज्ञानिक भाषा में अनावश्यक शब्दों का उपयोग नहीं किया जाता, जिससे यह संक्षिप्त और प्रभावशाली होती है। इसके साथ ही, वैज्ञानिक भाषा तटस्थ दृष्टिकोण अपनाती है, जो किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह या भावनात्मक अभिव्यक्ति से मुक्त होती है। यह तथ्य, आंकड़ों और निष्कर्षों को तर्कसंगत रूप से प्रस्तुत करती है।

इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिक भाषा की व्यापकता इसे एक वैश्विक स्वरूप प्रदान करती है। यह भाषा इस प्रकार डिजाइन की जाती है कि इसे अलग-अलग पृष्ठभूमि और भाषाओं के लोग आसानी से समझ सकें। वैज्ञानिक तथ्यों और निष्कर्षों को दोहराने की संभावना भी वैज्ञानिक भाषा का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसे इस तरह से तैयार किया जाता है कि अन्य लोग या समूह इन निष्कर्षों को सत्यापित कर सकें।

1.4 संस्कृत: एक वैज्ञानिक भाषा

संस्कृत भाषा की वैज्ञानिक प्रकृति उसकी संरचना, व्याकरण और अभिव्यक्ति की क्षमता में निहित है। यह भाषा न केवल एक संवाद का माध्यम है, बल्कि एक सुव्यवस्थित विचार प्रणाली है। महर्षि पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें 4000 से अधिक सूत्रों के माध्यम से भाषा को पूरी तरह से नियमबद्ध किया गया है। इन सूत्रों की विशेषता यह है कि वे भाषा के सभी पहलुओं को व्यवस्थित और तार्किक रूप से परिभाषित करते हैं। संस्कृत में धातुओं का वर्गीकरण भाषा को लचीला और विस्तृत बनाता है। धातु (क्रिया के मूल रूप) से शब्दों का निर्माण करना, भाषा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अधिक सक्षम बनाता है। यह प्रणाली शब्दों के गठन और उनके उपयोग को सरल, स्पष्ट और सटीक बनाती है।

संस्कृत की व्याकरणिक संरचना इसे स्पष्टता और सटीकता का आदर्श बनाती है। प्रत्येक शब्द के लिंग, वचन और कारक के अनुसार होने वाले परिवर्तन भाषा को अर्थपूर्ण बनाते हैं। यह संरचना न केवल व्याकरणिक त्रुटियों को रोकती है, बल्कि जटिल विषयों को समझाने में भी सहायक होती है। संस्कृत के ग्रंथों में वैज्ञानिक तथ्यों और सिद्धांतों को इस तरह से प्रस्तुत किया गया है कि वे पुन: दोहराने योग्य और सत्यापन योग्य बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त ने खगोलशास्त्र और गणित के क्षेत्र में जो सिद्धांत प्रस्तुत किए, वे आज भी प्रासंगिक और दोहराने योग्य हैं। यह पुनरावृत्ति की क्षमता वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मजबूत करती है। संस्कृत का यह गुण इसे एक अनूठी वैज्ञानिक भाषा बनाता है।इसके अलावा, संस्कृत विज्ञान और दर्शन का एक आदर्श समन्वय प्रस्तुत करती है। यह न केवल भौतिक विज्ञान, बल्कि तात्त्विक और दार्शनिक चिंतन को भी एक साथ जोड़ने की क्षमता रखती है। न्याय और वैशेषिक दर्शन जैसे तंत्र तर्क, कारण और वैज्ञानिक

पद्धति को बढ़ावा देते हैं, जो आधुनिक विज्ञान के मूल सिद्धांतों से मेल खाते हैं। संस्कृत भाषा केवल एक साधन नहीं, बल्कि विज्ञान, तर्क और दार्शनिक गहराई का प्रतीक है।

संस्कृत भाषा का वैज्ञानिक अनुप्रयोग प्राचीन काल से ही ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। गणित और खगोलशास्त्र के क्षेत्र में आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त जैसे महान वैज्ञानिकों ने संस्कृत में अपने जटिल सिद्धांत प्रस्तुत किए। दशमलव प्रणाली और शून्य की अवधारणा जैसे आविष्कार, जो आधुनिक गणित और विज्ञान के मूलभूत आधार हैं, संस्कृत ग्रंथों में विस्तार से वर्णित हैं। चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे महान ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं, जिनमें रोगों के निदान, उपचारऔर शल्य चिकित्सा के तरीके अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किए गए हैं।

संस्कृत की संरचना इसे कंप्यूटर विज्ञान और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के लिए भी उपयुक्त बनाती है। पाणिनि के व्याकरण के नियम इतने सुव्यवस्थित और तार्किक हैं कि उनका उपयोग प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) और कंप्यूटर भाषाओं के विकास में किया जा सकता है। इसके अलावा, आयुर्वेद, वास्तुशास्त्र और पर्यावरण विज्ञान जैसे शास्त्रीय विज्ञान के क्षेत्रों में संस्कृत में उपलब्ध ज्ञान आज भी प्रासंगिक है। यह प्राचीन भाषा न केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है, बल्कि आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ भी एक अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करती है। संस्कृत का यह अनुप्रयोग इसे केवल एक भाषा से ऊपर उठाकर ज्ञान और विज्ञान का अनमोल स्रोत बनाता है।

1.5 संस्कृत: एक वैश्विक भाषा

संस्कृत भाषा को "वैश्विक भाषा" के रूप में मान्यता प्राप्त है क्योंकि यह वैचारिक स्पष्टता, सटीकता और वैज्ञानिकता का प्रतीक है। इसकी संरचना और व्याकरणिक नियम इतने सुव्यवस्थित और तार्किक हैं कि यह सार्वभौमिक भाषा के रूप में कार्य कर सकती है। संस्कृत के शब्दकोश और व्याकरण तर्कसंगतता के आधार पर बनाए गए हैं, जिससे यह अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक वैज्ञानिक और व्यावहारिक बनती है। इसकी संरचना ऐसी है कि इसे आसानी से दूसरी भाषाओं में अनुवाद किया जा सकता है।

संस्कृत से अन्य भाषाओं में अनुवाद अपेक्षाकृत सरल होता है क्योंकि इसकी व्याकरणिक संरचना बेहद स्पष्ट और अनुशासनपूर्ण है। इसके शब्दों और वाक्यों का निर्माण नियमबद्ध तरीके से किया गया है, जो इसे किसी भी विषय के जटिल विचारों को व्यक्त करने में सक्षम बनाता है।

आधुनिक समय में संस्कृत की उपयोगिता नए शोध और नवाचारों में देखी जा सकती है। पर्यावरण संतुलन, आयुर्वेदिक उपचार, और योग जैसे विषयों में संस्कृत का ज्ञान आज भी प्रासंगिक है और इसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पुनः खोजा जा रहा है। संस्कृत न केवल प्राचीन ज्ञान को संरक्षित करती है, बल्कि इसे आधुनिक संदर्भों में उपयोगी बनाती है। इसकी विशेषताएँ इसे एक वैश्विक भाषा और ज्ञान का असीमित स्रोत बनाती हैं।

1.6 संस्कृत का संरचनात्मक शुद्धता और लचीलापन

संस्कृत भाषा अपनी संरचनात्मक शुद्धता, लचीलापन और अभिव्यक्ति की विशिष्ट क्षमता के लिए जानी जाती है। यह न केवल व्याकरण और भाषाई विज्ञान के दृष्टिकोण से अनुशासनात्मक

है, बल्कि इसका उपयोग प्राचीन भारतीय शास्त्रों, विज्ञान, दर्शन और साहित्य के विकास में भी अद्वितीय रहा है। संस्कृत की संरचना पाणिनि के "अष्टाध्यायी" जैसे व्याकरण ग्रंथों पर आधारित है, जिसने इसे तार्किक और सुव्यवस्थित रूप दिया। इसके व्याकरणिक नियम, प्रत्ययों, समास, और धातुओं का विवरण शब्द निर्माण को सरल और सटीक बनाते हैं। संस्कृत में ध्वनि विज्ञान का महत्व भी अद्वितीय है, जहाँ प्रत्येक ध्वनि का उच्चारण स्थान और विधि स्पष्ट रूप से परिभाषित है। शब्दों के क्रम में बदलाव से अर्थ पर प्रभाव न पड़ने की इसकी क्षमता इसे व्याकरणीय रूप से स्थिर बनाती है।

संस्कृत का लचीलापन इसे विविध संदर्भों और आवश्यकताओं के अनुकूल बनाता है। यह भाषा विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के कई साधन प्रदान करती है। समास, तद्भव-तत्सम शब्दों और धातुओं से नए शब्द बनाने की प्रक्रिया इसे अभिव्यक्ति के लिए अत्यधिक उपयोगी बनाती है। संस्कृत साहित्य में काव्य और अलंकार शास्त्र की परंपरा इसकी कलात्मकता को दर्शाती है। कालिदास, भर्तृहरि और माघ जैसे कवियों ने संस्कृत के लचीलेपन का उत्कृष्ट उपयोग किया। इसके अतिरिक्त, विज्ञान और शास्त्रों में भी संस्कृत का व्यापक योगदान है। ज्योतिष, चिकित्सा, और तंत्रयुक्ति जैसे क्षेत्रों में इस भाषा का उपयोग वैज्ञानिक विधियों के प्रस्तुतीकरण और संरचना के लिए किया गया है।

आधुनिक युग में संस्कृत की प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। इसकी संरचना कम्प्यूटर विज्ञान और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) में अनुप्रयोग के लिए उपयुक्त है। पाणिनि के व्याकरणीय नियम और उच्चारण की सटीकता इसे प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) के लिए आदर्श बनाती है।पाणिनीय व्याकरण भारतीय भाषाशास्त्र की आधारशिला है और इसका महत्व प्राचीन भारतीय भाषाओं की संरचना और विश्लेषण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आधुनिक कम्प्यूटर विज्ञान और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास में भी उल्लेखनीय योगदान करता है। पाणिनि का "अष्टाध्यायी" संस्कृत भाषा के व्याकरण को व्यवस्थित और तार्किक रूप में प्रस्तुत करने वाला सबसे प्राचीन ग्रंथ है। इसकी प्रमुख विशेषता इसकी सूत्रबद्धता और संक्षिप्तता है, जिससे भाषा के जटिल नियमों को सरलता से समझा और लागू किया जा सकता है। इसमें धातुओं और प्रत्ययों का अनुक्रमण, व्याकरणीय स्थिरता, और तार्किक संरचना शामिल है, जो कम्प्यूटर एल्गोरिदम के लिए आदर्श मानी जाती है।

पाणिनीय व्याकरण के सिद्धांत कम्प्यूटर विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किए जा रहे हैं। विशेष रूप से प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) में यह व्याकरण वाक्य संरचना के विश्लेषण और निर्माण को सक्षम बनाता है। संस्कृत व्याकरण की संरचना मशीन अनुवाद के लिए भी एक आधार प्रदान करती है, क्योंकि इसकी जटिलता और स्पष्टता अनुवाद की सटीकता को बढ़ाने में सहायक होती है। संदर्भ और संदिग्धता को हल करने की पाणिनीय विधियाँ कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग और भाषा प्रसंस्करण में बहुत उपयोगी हैं।

इसके अनुप्रयोगों में प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण, मशीन लर्निंग, और डेटा संरचना प्रमुख हैं। पाणिनीय नियमों के आधार पर विकसित उपकरण, जैसे DESIKA, संस्कृत वाक्यों का विश्लेषण और प्रसंस्करण करने में सक्षम हैं। इसके अलावा, भाषा मॉडलिंग में धातुओं और प्रत्ययों की

संरचनात्मक समझ को एल्गोरिदम में शामिल किया जा सकता है। पाणिनीय व्याकरण का उपयोग डेटा के संगठन और खोज प्रक्रियाओं को कुशल बनाने के लिए भी किया जा रहा है।

पाणिनीय व्याकरण और कम्प्यूटर विज्ञान के समागम ने भाषा विज्ञान के नए आयाम खोले हैं। ज्ञान प्रतिनिधित्व (Knowledge Representation) और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) में इसका उपयोग डेटा मॉडलिंग और तार्किक संरचनाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए किया जा रहा है। बहुभाषी अनुवाद के क्षेत्र में, भारतीय भाषाओं के बीच मध्यवर्ती भाषा के रूप में संस्कृत का उपयोग अनुवाद को अधिक प्रभावी बनाता है।इसके अतिरिक्त, संस्कृत वैज्ञानिक अवधारणाओं और तकनीकी शब्दावली को स्पष्टता और सटीकता के साथ व्यक्त करने में मदद करती है। आधुनिक शोध यह भी दर्शाते हैं कि संस्कृत की संरचना अन्य भाषाओं के अध्ययन और विकास में सहायक हो सकती है।

हालाँकि, पाणिनीय व्याकरण के कम्प्यूटर अनुप्रयोगों में कुछ चुनौतियाँ भी हैं। संस्कृत के जटिल व्याकरण को कम्प्यूटर एल्गोरिदम में लागू करना कठिन है और इसके लिए उच्च क्षमता वाले कम्प्यूटर और उन्नत एल्गोरिदम की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, इसका व्यावसायिक उपयोग अभी सीमित है, जो इसे मुख्य रूप से शिक्षाविदों और शोधकर्ताओं तक सीमित करता है।

1.7 संस्कृत और गणितीय तर्क प्रणाली

संस्कृत भाषा और गणितीय तर्क प्रणाली का आपसी संबंध भारतीय ज्ञान परंपरा की एक विलक्षण विशेषता है। संस्कृत न केवल धार्मिक और साहित्यिक रचनाओं की भाषा है, बल्कि गणित, तर्कशास्त्र और वैज्ञानिक विधियों का आधार भी है। इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण पाणिनि का "अष्टाध्यायी" व्याकरण है, जो केवल भाषाई संरचना का नियमावली नहीं, बल्कि एक संगठित गणितीय और तार्किक प्रणाली भी है। पाणिनि के सूत्र संक्षिप्त होते हुए भी गहन और व्यापक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। "अनुबन्ध" और "धातु" जैसी प्रणालियाँ तार्किक संरचना और प्रतीकात्मकता का आदर्श उदाहरण हैं। उनकी व्याकरणिक प्रणाली में अनुवृत्ति और प्रतियोगिता जैसे उपकरण विश्लेषणात्मक सोच को बढ़ावा देते हैं, जो कम्प्यूटर एल्गोरिदम और गणितीय प्रक्रियाओं के लिए भी उपयोगी हैं।

संस्कृत में तंत्रयुक्ति एक और महत्वपूर्ण प्रणाली है, जो ग्रंथों की रचना और वैज्ञानिक संरचना के लिए उपयोग की जाती है। इसमें 22 प्रमुख तर्क उपकरण हैं, जैसे अधिकरण (विषय) और निदर्शन (उदाहरण), जो चिकित्सा, दर्शन और गणितीय ग्रंथों में व्यवस्थित प्रस्तुति और विश्लेषण के लिए उपयोगी होते हैं। इसी प्रकार, न्याय दर्शन ने तर्क और प्रमेयों की व्यवस्थित पद्धतियों को विकसित किया। गौतम द्वारा रचित "न्यायसूत्र" में प्रत्यक्ष, अनुमान, और शब्द जैसे प्रमाणों का वर्णन किया गया है, जो प्रमेयों के प्रमाणन और तर्क की शुद्धता की जांच के लिए उपयोगी है।

संस्कृत का गणितीय योगदान भी अद्वितीय है। आर्यभटीय और सूर्यसिद्धांत जैसे ग्रंथ खगोलशास्त्र और ज्यामिति में अग्रणी हैं। दशमलव प्रणाली और शून्य की अवधारणा, जो आधुनिक गणित की नींव हैं, संस्कृत ग्रंथों की देन हैं। संस्कृत में काव्य और सूत्रों के माध्यम से गणितीय सिद्धांतों को सरलता और स्पष्टता से प्रस्तुत किया गया, जो शिक्षण और अनुसंधान के लिए उपयोगी था।

संस्कृत का प्रभाव बहु-विषयक है, जो आयुर्वेद, खगोलशास्त्र, वास्तुकला और साहित्य जैसे क्षेत्रों में देखा जा सकता है। इन सभी विषयों में संरचना और तर्क का उपयोग समस्याओं को हल करने के लिए किया गया। संस्कृत की तंत्रयुक्ति और न्याय प्रणाली आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों में भी योगदान कर सकती हैं।

1.8 आयुर्वेद और चिकित्सा विज्ञान में संस्कृत का योगदान

भारतीय संस्कृति और ज्ञान के इतिहास में संस्कृत भाषा का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और अद्वितीय है। विशेष रूप से आयुर्वेद, जो भारत की पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली है, संस्कृत भाषा पर आधारित है। आयुर्वेद का अर्थ है "जीवन का ज्ञान" और यह चार वेदों, विशेष रूप से अथर्ववेद, से उत्पन्न हुआ है। आयुर्वेद में चिकित्सा और स्वास्थ्य से संबंधित विषयों का वर्णन संस्कृत में किया गया है। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग हृदयम् जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं, जिनमें शरीर रचना, रोग निदान, उपचार और औषधियों का विस्तृत विवरण मिलता है। संस्कृत भाषा की वैज्ञानिकता, व्याकरणिक शुद्धता और स्पष्टता ने आयुर्वेद को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। आयुर्वेद में शरीर को पंचमहाभूतों – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश – का संयोजन माना गया है। संस्कृत भाषा में इन तत्वों के संतुलन और असंतुलन को अत्यंत सटीक और वैज्ञानिक तरीके से व्यक्त किया गया है। त्रिदोष सिद्धांत, जिसमें वात, पित्त और कफ को आयुर्वेदिक चिकित्सा का आधार माना गया है, संस्कृत में गहराई से वर्णित है। रोगों को उनके कारण, लक्षण और उपचार के आधार पर वर्गीकृत किया गया है, जैसे ज्वर के विभिन्न प्रकार। औषधियों को भी उनकी प्रकृति, गुण और उपयोग के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। उदाहरण के लिए, अश्वगंधा, हरितकी और गुडुची जैसी औषधियों का वर्णन। रस, गुण, वीर्य और विपाक के माध्यम से औषधियों के प्रभाव को संस्कृत में अत्यंत बारीकी से समझाया गया है।

संस्कृत भाषा ने न केवल प्राचीन चिकित्सा प्रणाली बल्कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी योगदान दिया है। कई आधुनिक चिकित्सा शब्दावली संस्कृत से उत्पन्न हुए हैं। आयुर्वेदिक अंशों को आधुनिक चिकित्सा पाठ्यक्रमों में शामिल करने के लिए अनुवादित किया गया है। आज भी आयुर्वेदिक शोध के लिए संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन किया जाता है।आयुर्वेद अब वैश्विक स्तर पर स्वीकार किया जा चुका है, और संस्कृत भाषा के अनुवाद और व्याख्या ने इसे पश्चिमी चिकित्सा प्रणाली से जोड़ने में सहायता की है। भविष्य में, संस्कृत भाषा और आयुर्वेद के आपसी संबंध स्वास्थ्य विज्ञान के क्षेत्र में नए आयाम खोल सकते हैं। संस्कृत में निहित वैज्ञानिकता को प्रमाणित करते हुए इसे अंतरराष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान में और अधिक मान्यता दी जा सकती है। इस प्रकार, आयुर्वेद और संस्कृत का यह आपसी संबंध भारत की समृद्ध सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विरासत का प्रतीक है। यह न केवल प्राचीन ज्ञान को संरक्षित करता है बल्कि आधुनिक युग में चिकित्सा के क्षेत्र में नई संभावनाओं को जन्म देता है।

1.9 खगोल विज्ञान और ज्योतिष में संस्कृत का उपयोग

संस्कृत भाषा का योगदान भारतीय संस्कृति के हर पहलू में अद्वितीय रहा है। विज्ञान, कला, दर्शन और ज्योतिष जैसे विविध क्षेत्रों में इस भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। खगोल

विज्ञान और ज्योतिष, जो प्राचीन भारत के ज्ञान-विज्ञान के अत्यंत महत्वपूर्ण विषय हैं, में संस्कृत का व्यापक उपयोग हुआ है। खगोल विज्ञान, जिसे 'ज्योतिष' के अंतर्गत देखा जाता है, प्राचीन भारत में एक उन्नत विज्ञान था। 'सूर्य सिद्धांत,' 'आर्यभटीय,' और 'ब्रह्मस्फुट सिद्धांत' जैसे ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए, जो इस विज्ञान के गहन अध्ययन और समझ को दर्शाते हैं। आर्यभट ने अपनी रचना 'आर्यभटीय' में ग्रहों की गति, दिन-रात के कारण, और ग्रहण की भविष्यवाणी जैसे विषयों को संस्कृत श्लोकों में प्रस्तुत किया। इसी प्रकार 'सूर्य सिद्धांत' में ग्रहों की स्थिति, खगोलीय घटनाओं और समय की गणना का विस्तृत वर्णन संस्कृत भाषा में किया गया। इन ग्रंथों की भाषा न केवल वैज्ञानिक है, बल्कि सटीकता और संक्षिप्तता का उत्कृष्ट उदाहरण भी है। पंचांग, जो नक्षत्रों, ग्रहों और चंद्रमा की स्थिति के आधार पर समय का निर्धारण करता है, भी संस्कृत सूत्रों पर आधारित है।

ज्योतिष, जो व्यक्ति के जीवन और ब्रह्मांड के बीच संबंध को समझने का प्रयास करता है, में भी संस्कृत का योगदान असाधारण है। 'बृहत्संहिता,' 'जैमिनि सूत्र,' और 'पराशर होरा शास्त्र' जैसे ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए, जो ग्रहों, नक्षत्रों और ज्योतिषीय प्रभावों का विवरण प्रस्तुत करते हैं। संस्कृत में ग्रहों के नाम और उनके प्रभाव का वैज्ञानिक और ज्योतिषीय आधार पर वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए, मंगल को 'अंगारक,' शुक्र को 'शुक्राचार्य,' और चंद्रमा को 'सोम' कहा गया है। जन्म कुंडली बनाने और भविष्यवाणी करने के लिए संस्कृत के सूत्र और श्लोक उपयोग में लाए जाते हैं, जो इस ज्ञान को संरक्षित और प्रामाणिक बनाए रखते हैं। संस्कृत भाषा की वैज्ञानिक संरचना इसे जटिल खगोलीय और ज्योतिषीय गणनाओं के लिए उपयुक्त बनाती है। पाणिनि के व्याकरण ने संस्कृत को एक संरचित और वैज्ञानिक भाषा बनाया, जो जटिल विचारों को संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की क्षमता रखती है।

आधुनिक समय में भी संस्कृत का उपयोग खगोल विज्ञान और ज्योतिष में जारी है। डिजिटल युग में, इन प्राचीन ग्रंथों का डिजिटलीकरण और उनका गहन अध्ययन नए दृष्टिकोण प्रदान कर रहा है। कई ज्योतिषीय सॉफ्टवेयर संस्कृत ग्रंथों और सूत्रों पर आधारित हैं, जो पंचांग निर्माण और भविष्यवाणी में सहायक होते हैं। वैश्विक स्तर पर शोधकर्ता इन ग्रंथों में दिए गए सिद्धांतों का अध्ययन कर रहे हैं और उन्हें आधुनिक खगोल विज्ञान के साथ जोड़कर नई खोजें कर रहे हैं। संस्कृत ने खगोल विज्ञान और ज्योतिष के विकास में अपनी वैज्ञानिकता, सटीकता और संरचना के माध्यम से गहरी छाप छोड़ी है। यह भाषा न केवल प्राचीन भारतीय ज्ञान को संरक्षित करने का माध्यम बनी, बल्कि इसे अगली पीढ़ियों तक पहुंचाने में भी सहायक रही।

1.10 संस्कृत ग्रंथों में निहित भौतिक और रसायन शास्त्र

संस्कृत साहित्य में भौतिक और रसायन शास्त्र के विविध आयामों को गहनता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथ जैसे वेद, उपनिषद, और आयुर्वेद के शास्त्र न केवल उस समय के वैज्ञानिक ज्ञान का भंडार हैं, बल्कि आज भी वे आधुनिक विज्ञान को प्रेरणा देने वाले स्रोत बने हुए हैं। भौतिक विज्ञान की बात करें तो इसकी नींव पंचमहाभूतों – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश – पर आधारित है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति और प्रकृति के तत्वों का वर्णन आधुनिक परमाणु सिद्धांत की ओर इशारा करता है। कणाद मुनि द्वारा प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन में पदार्थ को परमाणुओं से निर्मित बताया गया, और द्रव्य, गुण, और कर्म के सिद्धांत भौतिकी

की आधारशिला बनाते हैं। रसायन शास्त्र का वर्णन संस्कृत ग्रंथों में "रसविद्या" के रूप में मिलता है, जो औषधि निर्माण से लेकर धातु शोधन और मिश्र धातु निर्माण तक विस्तृत है। रसरत्नसमुच्चय जैसे ग्रंथों में सोने, चाँदी, और अन्य धातुओं को शुद्ध करने की विधियाँ तथा उन्हें सजीव बनाने की प्रक्रियाएँ वर्णित हैं।

चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में औषधीय जड़ी-बूटियों, खनिजों, और उनके रासायनिक गुणों का विस्तृत विवरण दिया गया है। इन ग्रंथों में स्वास्थ्य और चिकित्सा के साथ-साथ रसायन विज्ञान की वैज्ञानिक पद्धतियों का पालन किया गया है। खगोलिकी और ब्रह्मांड विज्ञान में संस्कृत साहित्य ने अनमोल योगदान दिया है। सूर्य सिद्धांत, आर्यभटीय, और सिद्धांत शिरोमणि जैसे ग्रंथों में ग्रहों की गति, समय की गणना, पृथ्वी की गोलाई, और गुरुत्वाकर्षण जैसी अवधारणाओं का वर्णन है। भास्कराचार्य ने गुरुत्वाकर्षण और समय की माप पर जो विचार प्रस्तुत किए, वे आधुनिक विज्ञान से मेल खाते हैं।

प्रकाश और ऊर्जा का भी इन ग्रंथों में महत्वपूर्ण स्थान है। न्याय दर्शन में प्रकाश की गति और उसकी प्रकृति पर चर्चा की गई है, जो प्रकाशिकी के आधुनिक सिद्धांतों के अनुरूप है। इसी प्रकार, वैशेषिक दर्शन में ऊर्जा और ताप के संबंधों का विश्लेषण मिलता है। संस्कृत ग्रंथों में वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को तार्किक और संरचित रूप में प्रस्तुत करने के लिए तंत्रयुक्ति जैसी पद्धतियों का उपयोग किया गया। यह पद्धति आज के शोध कार्यों में भी उपयोगी हो सकती है।

आयुर्वेद में जैव-रसायन और पर्यावरण संतुलन पर गहराई से चर्चा की गई है। त्रिदोष सिद्धांत – वात, पित्त, और कफ – शरीर की जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है, जबकि उपनिषदों और अन्य ग्रंथों में पर्यावरण संतुलन और जैव विविधता के महत्व पर जोर दिया गया है। आधुनिक विज्ञान में संस्कृत ग्रंथों की अवधारणाएँ जैसे परमाणु सिद्धांत, धातु शोधन की विधियाँ, और ऊर्जा के सिद्धांत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

संस्कृत भाषा, जो प्राचीन काल से ज्ञान, विज्ञान और तर्कशास्त्र का केंद्र रही है, आज के युग में अंतरिक्ष विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी अपनी उपयुक्तता और महत्व स्थापित कर रही है। अंतरिक्ष विज्ञान के संदर्भ में, संस्कृत का उपयोग ग्रहों की गति, खगोलीय घटनाओं की गणना और डाटा संग्रह में किया जा सकता है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथ, जैसे आर्यभटीय और सूर्य सिद्धांत, ग्रहों की गति, समय गणना और ब्रह्मांडीय संरचनाओं को समझने में आधुनिक विज्ञान को सहायक हो सकते हैं। नासा और इसरो जैसे संगठन खगोलीय पिंडों के नामकरण और सूचना प्रबंधन में संस्कृत का उपयोग कर सकते हैं, क्योंकि इसके शब्द सटीक और वैज्ञानिक संरचना में होते हैं।सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, संस्कृत की शब्दावली और संरचना डेटा संरचना, नॉलेज ग्राफ निर्माण और कंप्यूटर कोडिंग को अधिक प्रभावी बना सकती है। संस्कृत के तकनीकी अनुप्रयोगों में कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे इसे सरल और आकर्षक रूप में सिखाने की आवश्यकता और संस्कृत आधारित सॉफ्टवेयर और उपकरणों का विकास।

1.11 वैज्ञानिक अनुसन्धान और संस्कृत

संस्कृत भाषा न केवल एक प्राचीन और सांस्कृतिक धरोहर है, बल्कि यह आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान और प्रौद्योगिकी के लिए भी अत्यधिक प्रासंगिक है। इसकी संरचना, व्याकरण,

शब्दावली और तर्कशास्त्रीय दृष्टिकोण इसे एक वैज्ञानिक भाषा का दर्जा प्रदान करते हैं। संस्कृत ग्रंथों में वर्णित "तन्त्रयुक्ति" जैसे सिद्धांत अनुसंधान और तर्कशास्त्र के लिए आज भी उपयोगी हैं। इन विधियों में आधार, नियम, और विरोधाभास जैसे तत्वों का उल्लेख किया गया है, जो किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आवश्यक होते हैं। चिकित्सा विज्ञान में, संस्कृत ने "चरक संहिता" और "सुश्रुत संहिता" जैसे आयुर्वेदिक ग्रंथों के माध्यम से योगदान दिया है। इन ग्रंथों में न केवल रोगों के उपचार का वर्णन है, बल्कि उनकी उत्पत्ति, निदान, और रोकथाम पर भी गहराई से चर्चा की गई है। आयुर्वेद की "त्रिदोष" प्रणाली (वात, पित्त, कफ) आज भी स्वास्थ्य विज्ञान और चिकित्सा अनुसंधान में प्रासंगिक है।

गणित और खगोल विज्ञान के क्षेत्र में संस्कृत भाषा का योगदान अद्वितीय है। "आर्यभटीय" और "लीलावती" जैसे ग्रंथ दशमलव प्रणाली, शून्य की अवधारणा, और त्रिकोणमिति के सिद्धांतों का उल्लेख करते हैं, जो आज के गणित और विज्ञान की नींव हैं। खगोल विज्ञान में भी आर्यभट्ट और भास्कराचार्य के कार्य आधुनिक अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए प्रेरणा हैं। संस्कृत की व्याकरणीय संरचना इसे कंप्यूटर विज्ञान और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) के लिए उपयुक्त बनाती है। पाणिनि का व्याकरण कम्प्यूटर एल्गोरिदम के रूप में देखा जा सकता है, और इसकी संज्ञा-क्रिया संरचना कोडिंग के लिए प्रभावी हो सकती है। संस्कृत ग्रंथों में संरचित ज्ञान, जैसे "तर्क संग्रह," सूचना प्रौद्योगिकी और डेटा प्रबंधन में सहायक हो सकते हैं।

संस्कृत ने दर्शन और विज्ञान के बीच सेतु का कार्य भी किया है। "न्याय सूत्र" और "वैशेषिक सूत्र" जैसे ग्रंथ तर्क और वैज्ञानिक विधि के अनुप्रयोग का उदाहरण हैं। ये ग्रंथ भौतिक और अभौतिक तत्वों के बीच संबंधों की व्याख्या करते हैं, जो अनुसंधान और ज्ञान संरचना में सहायक हो सकते हैं। पर्यावरण और कृषि विज्ञान में भी संस्कृत के ग्रंथ अत्यंत उपयोगी हैं। "कृषि पराशर" और ऋग्वेद में पर्यावरण संरक्षण, जल प्रबंधन, और स्थायी कृषि पद्धतियों की चर्चा है, जो आज के जलवायु संकट के समाधान में उपयोगी हो सकती है।

संस्कृत ग्रंथों का पुनरुत्थान और डिजिटल स्वरूप में उनका संरक्षण आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान को नई दिशा दे सकता है। वर्तमान में ISRO और C-DAC जैसे संस्थान संस्कृत के वैज्ञानिक पहलुओं पर अनुसंधान कर रहे हैं। यह स्पष्ट है कि संस्कृत भाषा में निहित ज्ञान और तर्कशास्त्र आधुनिक अनुसंधानों के लिए अमूल्य हैं। इसकी वैज्ञानिक और संरचनात्मक विशेषताओं का अध्ययन और संरक्षण न केवल इसे जीवंत बनाएगा, बल्कि यह भविष्य की प्रौद्योगिकी और विज्ञान में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा। इसलिए, संस्कृत का अध्ययन और अनुसंधान आवश्यक है, ताकि यह भाषा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मानवता के लिए नई संभावनाओं के द्वार खोल सके।

1.12 विश्व स्तर पर संस्कृत की वैज्ञानिक मान्यता

संस्कृत की वैज्ञानिकता को वैश्विक मान्यता प्राप्त हो रही है। विभिन्न अंतरराष्ट्रीय शोधकर्ताओं और संस्थानों ने इसे कंप्यूटर विज्ञान और अन्य तकनीकी क्षेत्रों में उपयोगी माना है। भविष्य में संस्कृत भाषा तकनीकी, दार्शनिक और वैज्ञानिक अनुसंधानों में और अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसकी वैज्ञानिक संरचना और गहन साहित्य इसे न केवल भारत में, बल्कि

वैश्विक स्तर पर भी प्रासंगिक बनाते हैं। इसके समर्थन में विभिन्न विद्वानों और नेताओं ने अपनी राय दी है।

- **फ्रेडरिक श्लेगेल (German Philosopher)**
  "संस्कृत भाषा अन्य भाषाओं की जननी है। यह विचारों की उत्कृष्टता और अभिव्यक्ति की सटीकता में अद्वितीय है।"
- **सर विलियम जोन्स (British Philologist)**
  "संस्कृत व्याकरण इतना सटीक और वैज्ञानिक है कि यह किसी भी आधुनिक भाषा के व्याकरण से अधिक उन्नत है।"
- **डॉ. अब्दुल कलाम (Former President of India)**
  "संस्कृत में कंप्यूटर प्रोग्रामिंग के लिए उच्चतम क्षमता है क्योंकि यह एक सटीक और तार्किक भाषा है।"
- **फोर्ब्स पत्रिका (1987)**
  "संस्कृत सबसे उपयुक्त भाषा है जो कंप्यूटर के लिए डिजाइन की गई है।"
- **जर्मन विद्वान फ्रेडरिक मैक्स मूलर**
  "यदि मुझे पृथ्वी पर सभी किताबों को रखने का विकल्प दिया जाए तो मैं वेदों को चुनूँगा, जो कि संस्कृत में हैं।"
- **NASA के वैज्ञानिक रॉबर्ट लैंगडन**
  "संस्कृत एल्गोरिदमिक संरचना के कारण कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग के लिए उपयोगी हो सकती है।

1.13 संस्कृत के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए नई संभावनाएँ

- पाणिनीय व्याकरण और नव्य न्याय का उपयोग प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) और मशीन ट्रांसलेशन (MT) के लिए किया जा सकता है।
- अभिधा, भावकतत्व और भोगीकृति जैसे साहित्यिक प्रक्रियाएँ मानव अनुभव के विस्तार में योगदान करती हैं।
- तंत्रयुक्ति का उपयोग वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रंथों की संरचना में एक प्रणाली के रूप में किया जा सकता है।
- पंचभौतिक शरीर और त्रिदोष सिद्धांत पर्यावरणीय संतुलन और स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा में संस्कृत ग्रंथों का उपयोग आधुनिक चिकित्सा के साथ जोड़ा जा सकता है।
- शब्दबोध सिद्धांत और पाणिनीय संरचनाओं का उपयोग ज्ञान प्रस्तुति और कृत्रिम बुद्धिमत्ता में किया जा सकता है।
- संस्कृत में तकनीकी साहित्य और आधुनिक विज्ञान के संयोजन पर शोध कार्यक्रमों की शुरुआत की जा सकती है, जिससे भविष्य में अनुसंधान के नए आयाम खुल सकते हैं।

- संस्कृत की वैज्ञानिकता इसे एक वैश्विक वैज्ञानिक भाषा के रूप में प्रस्तुत कर सकती है। यह विभिन्न सांस्कृतिक और भाषाई परंपराओं को जोड़ने में सहायक हो सकती है।
- संस्कृत के उच्चारण की वैज्ञानिकता और इसके मंत्रों की ध्वनि तरंगों पर प्रभाव का अध्ययन आज भी एक नया शोध क्षेत्र बन सकता है।
- यह भारतीय दार्शनिक और वैज्ञानिक परंपराओं को पुनर्जीवित करने में सहायक हो सकता है।

1.14 सारांश

संस्कृत और विज्ञान का संबंध प्राचीन भारतीय बौद्धिक परंपरा और सांस्कृतिक धरोहर में गहराई से निहित है। यह भाषा न केवल ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को समेटने का माध्यम रही है, बल्कि इसे व्यवस्थित और सुसंगठित रूप में प्रस्तुत करने का भी आधार प्रदान करती है। संस्कृत को एक सटीक और वैज्ञानिक भाषा माना गया है, और पाणिनि का व्याकरण इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। पाणिनि द्वारा प्रतिपादित व्याकरणीय नियम एक औपचारिक प्रणाली का आधार बनाते हैं, जो आज कंप्यूटर विज्ञान, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), और प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) के लिए प्रेरणा का स्रोत बन रहे हैं। संस्कृत की व्याकरणीय संरचना इसे आधुनिक तकनीकी अनुसंधानों में उपयोगी बनाती है।

भारतीय दार्शनिक परंपराओं, जैसे न्याय और वैशेषिक, ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। न्याय दर्शन तर्क और प्रमाण की प्रणाली पर आधारित है, जबकि वैशेषिक दर्शन पदार्थ, गुण, और उनके वर्गीकरण पर गहन चर्चा करता है। ये परंपराएँ प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक शोध, जैसे चिकित्सा, खगोलशास्त्र और गणित में परिलक्षित होती हैं। उदाहरण के लिए, चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे आयुर्वेदिक ग्रंथ मानव शरीर, रोगों, और उनके उपचार का वैज्ञानिक विवरण प्रदान करते हैं। खगोलशास्त्र और गणित के क्षेत्र में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, और भास्कराचार्य जैसे विद्वानों ने दशमलव प्रणाली, शून्य की अवधारणा, और त्रिकोणमिति के सिद्धांतों को संस्कृत में प्रस्तुत किया, जो आज भी प्रासंगिक हैं।

संस्कृत में "तंत्रयुक्ति" नामक वैज्ञानिक पद्धति का उल्लेख मिलता है, जिसका उपयोग प्राचीन ग्रंथों को व्यवस्थित और तार्किक रूप से प्रस्तुत करने के लिए किया गया। तंत्रयुक्ति के माध्यम से जटिल विचारों और तथ्यों को सरल और सटीक तरीके से अभिव्यक्त किया जाता है। यह विधि आज के शोध कार्य और शिक्षण में भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। संस्कृत साहित्य में पर्यावरण विज्ञान और पारिस्थितिकी के सिद्धांत भी विस्तृत हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद में पर्यावरण और जीवन के बीच के गहरे संबंधों का वर्णन है। यह समग्र दृष्टिकोण जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकटों के समाधान के लिए प्रेरणादायक है।

संस्कृत और विज्ञान का संबंध केवल प्राचीन काल तक सीमित नहीं है। आधुनिक संदर्भ में, संस्कृत के व्याकरणीय मॉडल का उपयोग कंप्यूटर विज्ञान और कृत्रिम बुद्धिमत्ता में किया जा रहा है। डिजिटल युग में संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद और डिजिटलीकरण इनकी वैश्विक पहुँच को बढ़ावा दे रहा है। संस्कृत की संरचना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उपयोग आधुनिक तकनीकी अनुसंधानों और शिक्षा में हो रहा है।

संक्षेप में, संस्कृत और विज्ञान का संबंध एक जीवंत और विकसित परंपरा है, जो न केवल प्राचीन भारत की वैज्ञानिक सोच और दृष्टिकोण को दर्शाती है, बल्कि यह वर्तमान और भविष्य के वैज्ञानिक प्रयासों का भी अभिन्न हिस्सा है। संस्कृत भाषा, तर्कशास्त्र और वैज्ञानिक विधियाँ हमारी सांस्कृतिक और बौद्धिक विरासत को सुदृढ़ करती हैं। यह भाषा केवल अतीत का प्रतीक नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की चुनौतियों का सामना करने में भी सहायक है। विज्ञान और संस्कृत का यह अद्वितीय संबंध आधुनिक विज्ञान, तकनीकी अनुसंधान और शिक्षा के क्षेत्र में नई संभावनाओं को जन्म देता है और मानवता को नवाचार के लिए प्रेरित करता है।

1.15 बोधप्रश्न

1. पाणिनि के "अष्टाध्यायी" में कितने सूत्र सम्मिलित हैं?
   (a) 2000
   (b) 3000
   (c) 4000
   (d) 5000
2. "आर्यभटीय" ग्रंथ में किस विषय पर चर्चा की गई है?
   (a) चिकित्सा
   (b) खगोलशास्त्र और गणित
   (c) वास्तुकला
   (d) दर्शन
3. खगोलशास्त्र के क्षेत्र में कौन-सा ग्रंथ महत्वपूर्ण है?
   (a) चरक संहिता
   (b) ऋग्वेद
   (c) सूर्य सिद्धांत
   (d) महाभारत
4. आयुर्वेद में त्रिदोष सिद्धांत में कौन-से तत्व सम्मिलित हैं?
   (a) पृथ्वी, जल, अग्नि
   (b) वात, पित्त, कफ
   (c) जल, अग्नि, वायु
   (d) पृथ्वी, वायु, आकाश
5. "चरक संहिता" में मुख्य रूप से किस विषय का वर्णन है?
   (a) खगोलशास्त्र
   (b) चिकित्सा
   (c) व्याकरण
   (d) दर्शन
6. संस्कृत व्याकरण का कौन-सा भाग कंप्यूटर एल्गोरिदम के लिए प्रेरणास्रोत है?
   (a) धातु पद्धति

(b) प्रत्यय नियम
(c) सूत्रबद्ध संरचना
(d) वाक्य रचना

7. न्याय दर्शन में किस सिद्धांत पर बल दिया गया है?
(a) तर्क और प्रमाण
(b) चिकित्सा
(c) खगोलशास्त्र
(d) दर्शन

8. "सूर्य सिद्धांत" में मुख्यतः क्या समझाया गया है?
(a) चिकित्सा के नियम
(b) ग्रहों की गति और समय की गणना
(c) व्याकरण के नियम
(d) साहित्यिक अलंकार

1.16 सन्दर्भ सूची

1. पोलक, एस. आई. (2010). "महाकाव्य और तर्क संस्कृत साहित्य इतिहास में: रॉबर्ट पी. गोल्डमैन के सम्मान में निबंध"।https://ci.nii.ac.jp/ncid/BB03073872
2. जयारामन। (2008). "तंत्रयुक्ति - प्राचीन भारत में एक वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रंथ निर्माण विधि"। संस्कृत आधुनिक संदर्भ में। संस्कृत अध्ययन विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय।https://indiachapter.in/index.php?/user/article/2/2/20
3. वॉलिस, बी. (2006). "हिडन डाइमेंशंस: भौतिकी और चेतना का एकीकरण"। कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस / न्यूयॉर्क।
4. चट्टोपाध्याय, डी. (1995). "भारत में भाषा, तर्क और विज्ञान: कुछ वैचारिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण"।http://ci.nii.ac.jp/ncid/BA3111208X
5. बेन्डर, ई., और पिंग्री, डी. (1981). "संस्कृत में विशुद्ध विज्ञानों का जनगणना। सीरीज ए, खंड 4। अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी की पत्रिका, 101(4), 508।https://doi.org/10.2307/601369
6. राजा रामन्ना। (1984). "संस्कृत और विज्ञान"। भारतीय विद्या भवन।
7. Singh, Umesh. (2012). संस्कृत भाषा में निबद्ध वैज्ञानिक ग्रन्थ. Nikaṣa. 1. 80-88.
8. youtube.com - संस्कृतकीवैज्ञानिकता - https://youtu.be/Pb1ugUyVnuQ?si=6295URQrf0mzn-5N

1.17 निबंधात्मकप्रश्न

लघु – उत्तर प्रश्न

1. पाणिनि के "अष्टाध्यायी" में वर्णित व्याकरण के प्रमुख वैज्ञानिक पहलुओं का वर्णन करें।

2. आर्यभट और ब्रह्मगुप्त के खगोलशास्त्र में योगदान को संक्षेप में लिखें।
3. आयुर्वेद में त्रिदोष सिद्धांत क्या है? इसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझाएँ।

दीर्घ उत्तर प्रश्न

1. संस्कृत को कंप्यूटर विज्ञान में उपयोगी मानने के कारण क्या हैं?
2. संस्कृत भाषा को वैज्ञानिक भाषा मानने के क्या कारण हैं? विस्तार से समझाएँ।
3. पाणिनीय व्याकरण और आधुनिक कंप्यूटर प्रोग्रामिंग के बीच समानताओं का मूल्यांकन करें।

इकाई-2 खगोल विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 खगोल शब्द का अर्थ एवं उसकी सार्थकता
2.4 खगोल विज्ञान के प्रतिपाद्य विषय
2.4.1 ग्रह व उनके उपग्रहों का सामान्य परिचय
2.4.2 क्षुद्र ग्रह तथा उल्का पिंड
2.4.3 प्रमुख तारे व तारा मंडल
2.4.4 आकाश गंगाएं
2.5 खगोल विज्ञान के प्रमुख ग्रन्थ एवं रचनाकार
2.5.1 प्राचीन खगोलीय ग्रन्थ एवं रचनाकार
2.5.2 आधुनिक खगोल विज्ञान के पाश्चात्य ग्रन्थ एवं रचनाकार
2.6 वेदों में खगोल विज्ञान : खगोल एवं ज्योतिष
2.7 खगोल विज्ञान की आधुनिक अवधारणा एवं उपादेयता
2.8 सारांश
2.9 बोध-प्रश्न
2.10 शब्दावली
2.11बोध प्रश्नों के उत्तर
2.12 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची
2.13 उपयोगी पुस्तकें
2.14 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

ईश्वर की विवेकशील शक्ति से संपन्न मनुष्य बौद्धिक क्षमता से युक्त होने के साथ-साथ जिज्ञासु प्रवृति का होने के कारणवहप्राचीन काल से ही प्रकृति की आश्चर्य जनक शक्तियों का कौतुहलवश अनुसन्धान कर्ता रहा है। प्रकृति अथवा ब्रह्माण्ड की उन्हीं शक्तियों में गुरुत्वाकर्षण शक्ति से संचालित सौरमंडलीय वातावरण है। सौरमंडल में व्याप्त सूर्य के अतिरिक्त बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि आदि ग्रह एवं उपग्रह, विविध तारामंडल, आकाश गंगाएं आदि सभी को खगोल की संज्ञा दी जाती है एवं उससे सम्बंधित क्रमबद्ध एवं सुसंगठित ज्ञानको अपने दीर्घचिंतन एवं अनुसन्धान प्रणाली के फलस्वरूप मनुष्य ने उसे (खगोल) उसका विज्ञान कहा है। इस प्रकार विभिन्न ग्रह-उपग्रह, तारामंडल, आकाश गंगाएं आदि से व्याप्त सौरमंडल से सम्बंधित विज्ञान को खगोल विज्ञान कहा जाता है। इस दृष्टी से इस इकाई के अंतर्गत हम खगोल विज्ञान का अर्थ एवं उसकी सार्थकता, खगोल विज्ञान के प्राचीन आचार्य, खगोल विज्ञान के प्रमुख ग्रन्थ, खगोल विज्ञान के प्रमुख सिद्धांत, खगोल विज्ञान एवं ज्योतिषशास्त्र, वेदों में खगोल विज्ञान, आर्ष काव्यों-रामायण एवं महाभारत में खगोल विज्ञान के संकेत, खगोल विज्ञान की आधुनिक अवधारणा एवं वर्तमान समय में खगोल विज्ञान की उपादेयता आदि विषयों का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई में आपखगोल विज्ञान का अर्थ के माध्यम से उसके आशय को समझेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में आपखगोल विज्ञान के विषय में समाज को अवगत कराने वाले विभिन्न ग्रंथों एवं उनके रचनाकारों के विषय में जानेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में आप खगोल विज्ञान के प्रतिपाद्य विषयों में- ग्रह व उनके उपग्रहों का सामान्य परिचय, क्षुद्र ग्रह तथा उल्का पिंड, प्रमुख तारे व तारा मंडल एवं विभिन्न आकाश गंगाएं, आदि विषय से परिचित होंगे
- आप वेदों में खगोल विज्ञान किस प्रकार अभिव्यंजित है साथ ही ज्योतिषशास्त्रसे किस प्रकार सम्बंधित है ? आदि संदर्भित तथ्यों से अवगत होंगे।
- आप वर्तमान समय में खगोलविज्ञान की उपादेयता के विषय में जानेंगे।

2.3 खगोल विज्ञान का अर्थ एवं उसकी सार्थकता

खगोल शब्द का अर्थ दो शब्दों के योग से बना है- ख+गोल। जिसमें ख का अर्थ है आकाश तथा गोल का अर्थ है मंडल। इस प्रकार खगोल का अर्थ आकाशमण्डल अर्थात आंतरिक्ष व ब्रह्माण्ड से है। आचार्य वामनशिवराम आप्टे "**ख**" का आकाश अर्थ में ग्रहण करते हैं। खगोलविज्ञान को शब्द आंग्ल भाषा में **"एस्ट्रोनॉमी"** कहा जाता है। यह शब्द ग्रीक भाषा के **स्ट्रोनोमस** शब्द से उद्भूत है, जो दो शब्दों के योग से बना है-**एस्ट्रोन**+**नोमोस**, जिसमें एस्ट्रोन का अर्थ है**तारा** तथा **नोमोस** का अर्थ हैनियम । इस प्रकार सौरमंडल में व्याप्त समस्त तारामंडल एवं उल्कापिंड आदि से सम्बंधित खगोल विज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान है जो ब्रह्माण्ड में होने वाली घटनाओं का अध्ययन करता है। ये घटनाएं विभिन्न ग्रहों, चन्द्रमा, तारे, नेबुला, आकाशगंगाएं,

उल्कापिंड, ग्रहक्षुद्र धूमकेतु आदि से सम्बंधित होती हैं । सामान्यतः दूसरे शब्दों में कहें तो खगोल विज्ञानपृथ्वी के बाह्य वायुमंडल अथवा अन्तरिक्ष में उद्भूत होने वाली हर वस्तु का अध्ययन करता है। खगोल विज्ञान ऐतिहासिक दृष्टी से प्राचीनविज्ञान माना जाता है। प्रारम्भिक सभ्यताओं ने रात्री के आकाश का व्यवस्थित अवलोकन किया, परिमाणतः स्रोत रूप में खगोलमिति, खगोलविज्ञान संबंधी कैलेण्डर आदि विविध विषयों का विकास हुआ, जिनके माध्यम से परवर्ति संस्कृति को शनैः शनैः यह अवगत हुआ कि खगोल का अर्थ अंतरिक्ष का वह विज्ञान है, जिसमें सभी ग्रहों, तारों, क्षुद्रग्रहों, उल्का पिण्डों आदि की गतियों का अध्ययन किया जाता है। इन सभ्यताओं में मिस्र, बेबीलोन, यूनानी, भारतीय, चीनी एवं लैटिन अमेरिका आदि प्रमुख थीं। खगोल विज्ञान सौरमंडल का वह विज्ञान है जिसका अध्ययन संस्कृत साहित्य की परंपरा में स्वतंत्र न होकर षड् वेदांगों में वेद रुपी पुरुष की चक्षु इंद्री से अभिधेयित **"ज्योतिष"** के रूप में हुआ है। इसमें सौरमंडल के मुख्य तारे सूर्य और गुरुत्वाकर्षण शक्ति से संचालित ग्रहों तथा उपग्रहों की परिक्रमण एवं परिभ्रमण गति के परिणाम स्वरुप समय की इकाइयों, ऋतुओं, अयन, नक्षत्र, तारामंडल, सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण आदिविभिन्न विषयों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार सौरमंडल में व्याप्त विभिन्न वस्तुओं की तथ्यागत एवं वैज्ञानिक व्याख्या करने वाला विज्ञान खगोल विज्ञान है एवं यही इसकी सार्थकता।

2.4 खगोल विज्ञान के प्रतिपाद्य विषय

2.4.1 ग्रह व उनके उपग्रहों का सामान्य परिचय-

सौरमंडल के विभिन्न ग्रहों में बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण, यम तथा साथ ही उनके उपग्रहों में चन्द्रमा आदि को सौर का मुख्य विषय माना गया है। इनका सूक्ष्म परिचय निम्नवत है-

बुध- उपग्रहविहीनयह सौरमंडल के आठ ग्रहों में सबसे छोटा एवं सूर्य का सबसे निकटतम ग्रह है।इसका परिक्रमण(सूर्य की परिक्रमा) काल लगभग 88 दिवस है, जो कि अन्य ग्रहों में सबसे तेज है। बुध के अक्ष का झुकाव सौरमंडल के अन्य किसी भी ग्रह से सबसे कम है,किन्तु कक्षीय विकेन्द्रता सर्वाधिक है। बुध ग्रह अपसौर पर उपसौर की तुलना में सूर्य से करीब 1.5 गुना ज्यादा है। बुध का वायुमंडल ऑक्सीजन, सोडियम, हाइड्रोजन, हीलियम एवं पोटैशियम से मिलकर बना है। इसकी भौतिक संरचना ठोस चट्टानी एवं विभिन्न गड्ढों से निर्मित है।

शुक्र- सूर्य कीपरिक्रमा करने वाला यह दूसरा ग्रह है, जो 224.7 दिनों में सूर्य का एक चक्कर पूर्ण करता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने शुक्र ग्रह का नामकरण प्रेम और सौंदर्य की देवी रोमनके नाम पर किया है। आकाश में चंद्रमा के बाद यह रात्रि में तीव्र चमकने वाला ग्रह है। चूँकि शुक्र एक अवर ग्रह है इसलिए पृथ्वी से देखने पर यह कभी सूर्य के समीप ही प्रतीत होता है। शुक्र सूर्योदय से पहले या सूर्यास्त के बाद केवल थोड़ी देर के लिए ही अपनी अधिकतम चमक पर पहुँचता है।यहीं कारण है जिसके लिए यह प्राचीन संस्कृतियों के द्वारा भोर का तारा या शाम का तारा के रूप में संदर्भित किया गया है।बुध ग्रह की भांति इस ग्रह का भी कोई उपग्रह नहीं है।

पृथ्वी-पृथ्वी सौरमंडल का एकमात्र जीवन यापन करने की सभी परिस्तिथियों से युक्त एक नीला ग्रह है। विद्वानों द्वारा इसकी उत्पत्ति 4.54 अरब वर्ष पूर्व मानी की गई है। पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर 365 दिनों में पूरा करती है।सूर्य कीपरिक्रमा करने वाला यह तीसरा ग्रह है। इसका 71% भाग जल

एवं 29% भाग विविध धरातलीय स्थलों से युक्त है। इसका परिक्रमण पथ अंडाकार सूर्य सेपरिक्रमा करते हुए यह कभी सूर्य के निकट तथा कभी सूर्य से दूर रहती है। इसी कारण पृथ्वी पर मौसम संबंधी विविध दशाएं उत्पन्न होती हैं। यह अपने अक्ष पर लम्बवत 23.5 डिग्री अवनत रूप में परिभ्रमण करती हुई 24 घण्टे में एक चक्कर पूरा करती है,जिस कारण दिन एवं रात का निर्धारण होता है। यह स्तिथि केवल भूमध्य रेखा उत्तर एवं दक्षिणी क्षेत्रों में होता है,किन्तु इसके ध्रुर्वीय कक्षों पर 6 माह दिन तथा 6 माह रात होती है। पृथ्वी गोलाकार है किन्तु घुमाव के कारण, पृथ्वी भौगोलिक अक्ष में चिपटा हुआ एवं भूमध्य रेखा के आसपास उभार लिया हुआ प्रतीत होता है। पृथ्वी का औसत व्यास 12,742 किलोमीटर (7, 918 मील) है। क्षोभमंडल, समतापमंडल, मध्यमंडल, तापमंडल एवं बहिर्मंडल से व्याप्त पृथ्वी विभिन्न वायु परतों से परिवृत्त है। पृथ्वी का एक मात्र उपग्रह **चन्द्रमा** है, जिसकी गुरुत्त्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी को प्रभावित करती है। चंद्रमा, पृथ्वी से करीब 3,84,403 किलोमीटर दूर है, यह दूरी पृथ्वी के व्यास से 30 गुना ज़्यादा है एवं गुरुत्वाकर्षण शक्ति, पृथ्वी की तुलना में छह गुना कम है। उदय नारायण सिंह द्वारा अनुवादित सूर्यसिद्धान्त के भूमिका में उल्लेख किया गया है कि चन्द्रमा 27 दिन 9 होरा 43 मिनट 11.5 सैकेंड में पूरी करता है एवं इसका रंग कृष्ण,लाल तथा श्वेत होता है। चंद्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण ही पृथ्वी पर समुद्री ज्वार एवं भाटा आते हैं। चंद्रमा, हिन्दू धर्म के नौ ग्रहों में से एक, वैदिक ज्योतिष में बहुत महत्वपूर्ण माना गया है।

मंगल-मंगल को लाल ग्रह कहा जाता है। मंगल ग्रह को सूर्य का प्रक्रिमा में 687 पृथ्वी दिन लगते हैं, अर्थात मंगल को सूर्य की एक परिक्रमा करने में पृथ्वी से लगभग दोगुने से भी कम समय लगता है। यह पृथ्वी की तुलना में कम इसका घनत्त्व, आयतन एवं द्रव्यमान कम है। मंगल ग्रह पर दिन और रात का चक्र एवं मौसम सम्बन्धी परिवर्तन पृथ्वी के सामान होते हैं। मंगल ग्रह के दो छोटे उपग्रह **फ़ोबोस**एवं **डीमोस** हैं। मंगल ग्रह की सतह का रंग लाल-नारंगी होता है। ग्रह पर ज्वालामुखी ओलंपस मॉन्स है, जो माउंट एवरेस्ट से ढाई गुना ज़्यादा ऊंचा है। मंगल ग्रह की सतह पर वैलेस मेरिनेरिस नाम की घाटी है, जो 2,500 मील लंबी और 4 मील गहरी है। मंगल ग्रह के विषय में खगोल वैज्ञानिकों के अनुसंधान में पाया कि मंगल ग्रह की जलवायु, धरातलीय उच्चावच आदि पृथ्वी के सामान ही है। अत एव उन्होंने मंगल ग्रह को पृथ्वी का पुत्र कहा है।

बृहस्पति-बृहस्पति सौरमंडल का सबसे बड़ा ग्रह है। ग्रहों के क्रम में इसका क्रम पांचवां है, यह सूर्य की एक परिक्रमा11.86 वर्ष में पूरा करता है। इस ग्रह का वायु मंडल विभिन्न गैसों से आवृत्त है, जिसमें हाईड्रोजन तथा हीलियम मुख्य हैं। गुरुत्त्विय एवं चुम्बकीय शक्ति से युक्त इसका द्रव्यमान सूर्य के १०००वें भाग के बराबर है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इस ग्रह का नामकरण देवताओं के गुरु बृहस्पति के नाम के आधार पर किया गया है। इस ग्रह के कुल **95 उपग्रह** हैं।

शनि-शनि ग्रह बृहस्पति के बाद सौरमंडल दूसरा सबसे बड़ा एवं ग्रहों के क्रम में का छटवां ग्रह है। शनि अपनी वलयाकार आकृति हेतु जाना जाता है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में शनि ग्रह को सूर्य का पुत्र एवं कर्म फलदाता के रूप में पूजा जाता है तथा पाश्चात्य खगोल वैज्ञानिकों द्वारा इसका नाम कृषि के रोमन देवता के नाम पर रखा गया है। शनि ग्रह के वायुमंडल का 94% हाइड्रोजन तथा 6% भाग

हीलियम आदि गैसों से निर्मित है। शनि ग्रह के **50 उपग्रह** हैं जो इसकी परिक्रमा करते हैं। शनि ग्रह को सूर्य की एक परिक्रमा करने में कुल 29.5 वर्ष का समय लगता है।

अरुण-अरुण ग्रह को यूरेनस के नाम से भी जाना जाता है। ग्रहों के क्रम में यह 7वाँ ग्रह एवं सौरमंडल का तीसरा सबसे बड़ा ग्रह है। अरुण ग्रह अपने अक्ष पर 98 डिग्री पर अवनत हैएवं इसे सूर्य की एक परिक्रमाकरने में 84 वर्ष लगते हैं। इसकी खोज विलियम हर्शेल ने 1781 ई.में की थी, एवं उनके मत में अरुण ग्रह को दूरबीन से देखा जा सकता है। अरुण ग्रह की भौतिक संरचना हिम एवं विभिन्न गैसों से निर्मित है। अरुण ग्रह सूर्य से बहुत दूर है। अरुण ग्रह पर सूरज पश्चिम दिशा में उगता है तथाइस पर 42 वर्ष का दिन एवं 42 वर्ष की रात होती है। अरुण ग्रह पर औसत तापमान -197 डिग्री सेल्सियसरहता है। इस ग्रह पर हाइड्रोजन, मीथेन, एवं हीलियम गैसें हैं जो 04 वलय रूप में इसे परिवृत्त करतें हैं। अरुण ग्रह के **27 उपग्रह** हैं।

वरुण-वरुण ग्रह सौरमंडल का आठवां ग्रह है। इस ग्रह को सूर्य की एक परिक्रमा करने में 164.79 वर्ष का समय लगता हैं, जो की अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक है। वरुण ग्रह की सूर्य से औसत दूरी 5.28 अरब किलोमीटर है। वरुण ग्रह पर एक दिन पृथ्वी के करीब 16 घंटे का होता है। वरुण ग्रह अपनी धुरी पर 28.3 डिग्री अवनत है। वरुण ग्रह के **13** प्राकृतिक**उपग्रह** हैं, जिसमें**ट्राइटन** सबसे बड़ा उपग्रह है। बृहस्पति, शनि एवं अरुण की भांति ही वरुण की भौतिक संरचना गैसीय आवरण से युक्त है, जिसमें अमोनिया तथा मीथेन मुख्यतः हैं। इस प्रकार बृहस्पति, शनि, अरुण की भांति ही वरुण को सौरमंडल का गैसीय दानव ग्रह कहा जाता है।

यम-यम ग्रह को प्लूटो भी कहा जाता हैं। वर्ष 2006 से पूर्व इसका क्रम सौरमंडल के 9वें ग्रह के रूप में माना जाता था। किन्तु अब इसे बौने ग्रहों की सूची में रखा गया है। प्लूटो, सौरमंडल का सबसे बड़ा बौना ग्रह है। प्लूटो का आकार पृथ्वी के चंद्रमा का एक-तिहाई है। इसे सूर्य की एक परिक्रमा करने में 247.7 वर्ष का समय लगता है। इसकी भौतिक संरचना नाइट्रोजन, मीथेन, और कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी गैसों से निर्मित है। प्लूटो के**05उपग्रह** हैं। प्लूटो को कभी सौरमंडल का सबसे बाहरी ग्रह माना जाता था, किन्तु 18 फ़रवरी 1930 को इसकी खोज के पश्चात इसे सौरमंडल के 9वें ग्रह के रूप में माना गया। वर्तमान खगोलीय अनुसन्धान के पश्चात इस ग्रह को सौरमंडल की कक्षा से बाहर माना गया है, अतःअब खगोल विज्ञान में सौरमंडल के 8 ही ग्रह अंगीकार किए गए हैं।

2.4.2 क्षुद्र ग्रह तथा उल्का पिंड-

कठोर चट्टान एवं धातु से बने सूक्ष्म पिंड जो ग्रहों के साथ-साथ सूर्य की परिक्रमा करते हैं, क्षुद्र ग्रह कहलाते हैं। सबसे छोटे क्षुद्र ग्रह 1 मीटर या 3 फीट माप के बराबर माने गए हैं। सौर माडल का सबसे बड़ा क्षुद्र ग्रह "सेरेस"है। यह मंगल और बृहस्पति के बीच क्षुद्रग्रह बेल्ट में स्थित है। सेरेस को बौने ग्रह का दर्जा भी दिया गया है। वस्तुतः क्षुद्र ग्रह सौरमंडल के सभी ग्रहों की कक्षाओं में पाए जाते हैं, किन्तु सर्वाधिक क्षुद्र ग्रह बृहस्पति तथा मंगल की कक्षा में हैं। सामान्यतः क्षुद्र ग्रह तीन प्रकार के होते हैं-कार्बनयुक्त,पथरीले तथा धातु युक्त। इन्हें आधुनिक खगोल वैज्ञानिकों द्वारा सी-टाइप, एस-टाइप एवं एम-टाइप की संज्ञा दी गई है। मई 2016 तक क्षुद्र ग्रहों की संख्या 614690 थी, किन्तु वर्तमान समय में वैज्ञानिकों के खगोल अनुसंधान के बाद इनकी संख्या इससे भी अधिक मानी गई है। 1 मीटर से बड़े क्षुद्र ग्रहों को उल्का पिंड की संज्ञा दी जाती है। इनकी

संरचना लौह, निकिल आदि मिश्र धातुओं से निर्मित होती है। इन्हें वैज्ञानिकों द्वारा तीन वर्गों में रखा गया-धात्विक, आश्मिक तथा धत्विकाश्मिक। आश्मिक उल्का पिंड के कौंड्राइट (धूल कणों तथा धातु से निर्मित) तथा अकौंड्राइट(कठोर चट्टानों के पृथक अंश)एवं धात्विक उल्का पिंड के क्रमश: अष्टानीक(धात्विक पदार्थ से युक्त अष्टाकृतिनुमा प्लेट) और षष्ठानीक(धात्विक पदार्थ से युक्त षष्ठाकृतिनुमा प्लेट) प्रकार के दो भेद होते हैं। तीव्र जलते हुए प्रकाश के सामन इन सभी उल्कापिंडों में आक्सीजन, आर्गनगैलीयम, एल्युमिनियम, कार्बन,कोबाल्ट आदि 52 प्रकार के रसायनों की मात्रा होती है।

2.4.3 प्रमुख तारे व तारा मंडल-

सौरमंडल का प्रमुख एवं विशालकाय तारा **सूर्य** है। सूर्य ब्रह्माण्ड के केंद्र में अवस्थित है तथा चुम्बकीय अथवा गुरुत्त्वीय शक्तिके कारण सभी ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। सूर्य हाइड्रोजन तथा हीलियमआदि गैसों का एक पिंड है। सूर्य के केंद्र में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया से उर्जा उत्पन्न होती है, जो प्रकाश रूप में समस्त ब्रह्माण्ड में प्रकीर्ण होता है। सूर्य पृथ्वी से 4 करोड़ 65 लाख मील दूर है, किन्तु इसके प्रकाश को पृथ्वी पर पहुँचने पर 8 मिनट 22 सेकेण्ड का समय लगता है। सूर्य का व्यास 13 लाख 90 हजार किलोमीटर है, यह व्यास पृथ्वी के 113 गुने अधिक है। सूर्य के अलावा, सौरमंडल के आस-पास कुछ अन्य **तारे** भी हैं, जिसमेंअल्फ़ा **सेंटौरी ए**एवं **बी**, **बर्नार्ड तारा**, **वुल्फ़ 359 (सीएन लेओव)**, **लालैंड 21185**, **प्रॉक्सिमा सेंटॉरी**। **तारामंडल** आकाश में दिखाई देने वाले तारों का समूह है, जिनका स्वयं का प्रकाश नहीं होता अपितु ये सूर्य के प्रकाश के कारण चमकते हैं। इन तारा मंडलों को प्राचीन काल से ही विभिन्न आकृतियों में जोड़कर नाम दिए गए हैं।तारामंडलों के नाम और आकृतियाँ विभिन्न संस्कृतियों की कल्पना और कहानियों से जुड़ी हुई हैं।उदाहरण के लिए, सप्तऋषि मंडल भारतीय संस्कृति में बहुत महत्वपूर्ण है।प्राचीन काल में नाविक तारामंडलों का उपयोग समुद्र में दिशा खोजने के लिए करते थे।आधुनिक समय में खगोलविद तारामंडलों का उपयोग आकाश में विभिन्न खगोलीय पिंडों की स्थिति निर्धारित करने के लिए करते हैं।तारामंडलों का उपयोग आकाश में दूरियों को मापने के लिए एक पैमाने के रूप में भी किया जाता है।

2.4.4 आकाश गंगाएं-

अंतरिक्ष में व्याप्त बृहद सौरमंडल से युक्त, जिसमें विभिन्न अंडाकार परिपथ तथा एक बड़ा गुरुत्त्वीय केंद्र है, उसे भारतीय खगोल विज्ञान में संस्कृत शब्द से सुशोभित **"आकाशगंगा"** तथा आधुनिक खगोल विज्ञान में **"गैलेक्सी"** नाम से अभिहित किया जाता है। आकाशगंगाओं के बीच का स्थान पतली गैस से भरा हुआ है। आकाशगंगाएं गुरुत्वाकर्षण के ज़रिए समूहों, क्लस्टरों, और सुपरक्लस्टरों में व्यवस्थित होती हैं. खगोल वैज्ञानिकों के दीर्घ अनुसन्धान के परिणामतः ब्रह्मांड में आकाशगंगाओं की संख्या दो ट्रिलियन(एक हज़ार अरब या 10 खरब. इसे 1,000,000,000,000 या 10^{12} के रूप में लिखा जाता है।) तक है, उनका अनुमान है कि ब्रह्मांड में 200 बिलियन से 2 ट्रिलियन आकाशगंगाएं हैंएवं अधिकतर आकाशगंगाएं 10 अरब से 13.6 अरब साल पुरानी हैं। इस दृष्टी से वैज्ञानिकों ने आकाशगंगाओं को अंडाकार एवंसर्पिलाकार में बांटा गया है। हमारी

आकाशगंगा का नाम **मिल्कीवे** है। यह एक सर्पिल आकाशगंगा है। मिल्कीवे के अतिरिक्तहमारी आकाशगंगा के पास **एंड्रोमेडा** गैलेक्सी है।

2.5 खगोल विज्ञान के प्रमुख प्राचीन ग्रन्थ एवं रचनाकार

खगोल विज्ञान स्वयं में ही एक रहस्यात्मक विज्ञान है, इस विज्ञान से सम्बंधित विभिन्न तथ्यों व विषयों मेंद्रष्टाओं एवं वैज्ञानिकों ने विभिन्न अनुसन्धान किये हैं, परिणामस्वरूप उन्होंने नवीन ज्ञान को अपने ग्रंथों में उपनिबद्ध किया। इस दृष्टी से इस उपशीर्षक के अंतर्गत खगोल विज्ञान के प्रमुख परम्परागत ग्रंथों एवं आधुनिक खगोल विज्ञान को प्रतिपादित करने वाले ग्रंथों का अध्ययन निम्नवत है-

2.5.1 प्राचीन खगोलीय ग्रन्थ व रचनाकार-

खगोल विषय के आधार रूप विभिन्न ग्रंथों की रचनायें हुई हैं, किन्तु कतिपय ग्रंथोंमें-सूर्यसिद्धांत,आर्य भट्ट प्रणीत आर्यभट्टीयम्,वराहमिहिर कृत पंचसिद्धान्तिका, ब्रह्मगुप्त प्रणीत ब्रह्मस्फुटसिद्धांत, धीवृद्धितन्त्र, खण्डखाद्यकरण, सिद्धांतसिरोमणि,सिद्धांतसम्राटएवं ग्रहलाघव आदि ग्रंथों कोही खगोल विज्ञान की दृष्टी से महत्त्वपूर्ण बाताये गए हैं-

सूर्यसिद्धांत-आर्ष परंपरा में विरचित सूर्यसिद्धान्त खगोल विज्ञान का आदि ग्रन्थ माना जाता है। विद्वानों द्वारा इस ग्रन्थ प्रवर्तक भगवान सूर्य को माना गया है। 14 अधिकारोंमें(मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, छेद्यक, चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, ग्रहयुति, उदयास्त, चन्द्रश्रींगोनती, पात, भूगोल, ज्योतिष तथा उपनिषद संज्ञक)उपनिबद्ध इस ग्रन्थ की वर्तमान समय में दो टीकाएँ प्रसिद्ध हैं-प्रथम सुधाकर कृत "सुधावर्षिणी" एवं द्वितीय कपिलेश्वर कृत "श्रीतत्त्वामृत"। इस ग्रन्थ का आरम्भ भगवान सूर्य की स्तुति से होता है। तत्पश्चात सूक्ष्म काल एवं स्थूल्काल, ब्रह्मा की आयु, दिक्साधन, अयनांश तथा लम्बाक्ष आदि साधनों का वर्णन, वैज्ञानिक रीति से सूर्य एवं चन्द्रग्रहण वर्णन, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन,ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन, इसमें ब्रह्मांड की परिधि को व्योमकक्षा कहा गया है। तथा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र एवं ब्रह्माण्ड स्वरुप की व्याख्या की गई है। इस ग्रन्थ में ग्रहों के क्रम के विषय में कहते हैं कि गुरु, भौम, बुद्ध, शुक्र, सूर्य आदि ग्रह ब्रह्माण्डमें चंद्रमा की कक्षाएं हैं। **-मंदामरेज्यभूपुत्रः सूर्य शुक्रेंदुजेंदवः।**

आर्यभट्टीयम्-खगोल शास्त्रीय ग्रंथों मेंआर्यभट्टीयम् आद्यश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसके रचयिता आर्यभट्ट हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ "आर्यभटीय" के द्वितीय पाद (गणितपाद) के 9वें श्लोक मेंपृथ्वी, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल एवं बृहस्पति आदि धिष्ठित परब्रह्म को नमस्कार करते हुए कुसुमपुर(बिहार) के लोगों द्वारा इस ग्रन्थ को समादृत बताया है, इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह कुसुमपुर स्थान के निवासी थे-

ब्रह्मकुशशिबुधभृगरविकजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभट्टस्त्विह निगददि कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम्। ।

आर्या छंद में उपनिबद्ध यह ग्रन्थ अपनी काव्यात्मकता एवं गणितीय व्याख्या पद्धतियों के कारण प्रसिद्ध है, इसमें उल्लेखित गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद तथा गोलपाद क्रमशः चार पाद कहे गए हैं-

प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां पलं ब्रह्मा।

आर्यभट्टस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रिया। ।

उपर्युक्त चार पादों में **"गीतिकापाद"** मात्र 13 शोलोकों में उपनिबद्ध सबसे छोटा है। इस पाद के प्रतिपाद्य विषयों में संख्याओं की लेखन पद्धति का वैज्ञानिक रीति से वर्णन, ब्रह्मा के एक दिन का मान, मन्वंतर, अंश, कल्प, कला, राशि, पृथ्वी का व्यास एवं नवीन संख्या लेखन की विविध विधाओं का उल्लेख उपलब्ध होता है। **"गणितपाद"** 33 श्लोकों में उपनिबद्ध है, जिसमें वृत्त, वर्ग, आयत, त्रिभुज, शंकु, घनमूल, वर्गमूल आदि के क्षेत्रफल को जानने हेतु विभिन्न सूत्रों का एवं दो ग्रहों के मध्य युतिकाल के नियमों को जानने की विधा का प्रतिपादन किया गया है। काल की विविध विधाओं की व्याख्या होने के कारण **"कालक्रियापाद"**में- केंद्र, भगण, वर्ष, व्यतीतपात, योग,वर्षों तथा युगों में सम्बन्ध दर्शाया गया है, साथ ही चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से गणनारंभ का उल्लेख है। इसी प्रकार 50 श्लोकों में उपनिबद्ध अंतिम पाद गोलपाद में विषुवत रेखा कल्पित केंद्र, नक्षत्रचक्र, उत्तरिध्रुव की स्तिथि, क्रांतिवृत, भूमा(पृथ्वी की छाया), सम्पात बिंदु, लंका तथा उज्जैन का अंतर, मनुष्य पितर देव दैत्य के रात एवं दिन का परिमाण आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

पंचसिद्धान्तिका-ज्योतिष व खगोलविज्ञान के रूप में निर्मित यह एक संग्रहात्मक ग्रन्थ है। इसके रचयिता ज्योतिष शास्त्र के प्रकांड विद्वान वरहामिहिर हैं, इनका जन्म 505 ई. कम्पिल्ल नगर में हुआ था। अपने पिता से ज्योतिष की शिक्षा लेने के बाद यह उज्जैन में निवास करने लगे थे। इनके इस ग्रन्थ में उल्लेखित अधिकांश श्लोकों को आर्यभट्टिय, सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रंथों से उद्धृत किया गया है। प्राचीन खगोलविज्ञान संबंधी ग्रन्थ टीकाकारों का मानना है, कि इसमें खगोल के प्राचीन सिद्धांतों में-सूर्य, पौलिश, रोमक, पितामह, वसिष्ठ आदि सिद्धांतों के विभिन्न तथ्यों का मिश्रित रूप में वर्णन किया गया है, इसलिए लेखक ने इस ग्रन्थ का नामकरण पंचसिद्धान्तिका किया है। इस ग्रन्थ में ब्रह्मांडीय स्वरुप की व्याख्या, ग्रह, नक्षत्र तथा त्रिकोणमिति के सूत्र, पृथ्वी की गति, चन्द्रमा की कक्षाएं, ग्रहों के परिक्रमण पथ आदि विभिन्न विषयों का वर्णन किया गया है।

ब्रह्मस्फुटसिद्धांत- आचार्य ब्रह्मगुप्त प्रणीत ब्रह्मस्फुट सिद्धांत नामक ग्रन्थ खगोल व ज्योतिष विज्ञान का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ब्रह्मगुप्त का समय 528 ई.पू. का माना जाता है। इनके पिता का नाम जिष्णु था एवं इनका निवास स्थान राजस्थान के भीनमाल क्षेत्र माना जाता है। इनके मत में खगोल विज्ञान के प्राचीन सिद्धांतों सूर्यादि में वर्णित ग्रहों के स्वरुप, परिभ्रमण तथा परिक्रमण पथ, उनका व्यास आदि की दृष्टी से वास्तविक ग्रहों में पर्याप्त अंतर है। इसलिये उन्होंने दृक् प्रत्यय गृहस्तिथि सिद्धांत का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ में आचार्य ने शून्य को एक पृथक संख्या के रूप में अभिव्यंजित किया। साथ ही ऋणात्मक गणितीय अंकों का उल्लेख किया है। अरबीय विद्वान भारतीय खगोल व ज्योतिष के विषय में ब्रह्मस्फुटसिद्धांत नामक ग्रन्थ से परिचित हुए एवं उन्होंने इस ग्रन्थ का अरबी भाषा में अनुवाद किया, जिसमे पहले अरबी अनुवादक अल-फजिरी थे। इस ग्रन्थ पर आचार्य पृथूदकस्वामी की "तिलक" टीका अति प्रसिद्ध है।

धीवृद्धितन्त्र-आचार्य लल्ल द्वारा विरचित धीवृद्धितन्त्र खगोलशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। त्रिविक्रम भट्ट के आत्मज लल्ल खगोल विज्ञान के प्रख्यात विद्वान थे। इनके जन्म एवं समय के संबध में इन्होंने अपनी रचना में कोई संकेत नहीं दिए हैं, किन्तु विद्वानों द्वारा अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर

इनका समय 770 शक संवत माना गया है। इस ग्रन्थ में ग्रहों की त्रिविध स्तिथियों का विवेचन किया गया है-स्पष्ट, मध्यम एवं यथार्थ। प्रथम में करुणानुयायिनी वर्णन द्वितीय में आर्यभट्ट के सिद्धांत का अनुकरण तथा तृतीय में वेध का विवेचन किया गया है। साथ ही इसमेंसूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण, ग्रहोंकी उदय एवं अस्त की स्तिथि, ग्रहयुति महापातआदि विषयों का उल्लेख उपलब्ध होता है। आचार्य लल्ल ने ब्रह्मगुप्त की भांति आर्यभट्ट के सिद्धांतों की समालोचना नहीं की अपितु उनको संस्कृत कर एक बीजसंस्कार के रूप में प्रतिपादन किया । यथा-**शाके नाखाब्धि (420) रहिते शशिनोऽक्षदस्त्रै:(25)**

ततुन्गत: कृतशिवै:(114)तमस: षडङ्कै(93)।

शैलाब्धिभी:(47)सुरगुरोर्गुणिते सितोच्चात्,

शोध्यं त्रिपंचकू(153) हते ऽभ्रशराक्षी(250) भक्ते

खण्डखाद्यकरण-प्रसिद्ध खगोलशास्त्री ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रणीत खंडखाद्यकरणं एक करण ग्रन्थ है। ब्रह्मगुप्त द्वारा इसकी रचना ब्रह्मस्फुट सिद्धांत के बाद (६६५ ई में) हुई।पूर्वार्द्ध(पूर्वखण्डखाद्यक) एवं उत्तरार्द्ध(उत्तरखण्डखाद्यक) भाग में उपनिबद्ध इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय सूर्य सिद्धांत पर आधारित है-पूर्वखण्डखाद्यक में ९ अध्याय हैं एवं इसमें ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट्ट द्वारा दिये गये खगोलीय नियतांकों का उपयोग किया है। **उत्तरखण्डखाद्यक** ६ अध्यायों में उपनिबद्ध हैं। इसमें ग्रह गति, नक्षत्र, लग्न, राशि आदि सम्बन्धी विभिन्न उन्नत नियमों का प्रतिपादन किया है। इस दृष्टि से यह भाग ज्योतिष के क्षेत्र में भी अति महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ पर वरुण भट्टोत्पल एवं पृथुदक की प्रसिद्ध टीकाओं का प्रणयन हुआ है।

सिद्धांतसिरोमणि-आचार्य भास्कर द्वारा प्रणीत सिद्धांत शिरोमणि ज्योतिष व खगोलशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ज्योतिषशास्त्र की अद्भुत प्रतिभा के धनी भास्कराचार्य का जन्म शक् संवत 1036 (1114ई.) शांडिल्य गोत्र में हुआ। इनके पिता का नाम माहेश्वर था। खगोल विद्वानों द्वारा इसके रचनाकाल का समय शक संवत 1072 माना गया है। चार भागों में (बीजगणित, ग्रहगणित, गोलाध्याय, पाटीगणित) उपनिबद्ध यह ग्रन्थ ज्योतिष शास्त्र हेतु अत्यंत उपादेय माना गया है। पाटीगणितभाग पर 278 पद्यों में लीलावती नाम की स्वतंत्र रचना का प्रणयन हुआ है। गोलाध्याय नामक भाग में आचार्य द्वारा गणित को आधार मानकरगुरुत्त्वाकर्षण के विविध उदाहरणों का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ में आचार्य द्वारा धरती के गोल होने का प्रमाण दिया है, वे कहते हैं कि-

समो यत: स्यातपरिधेह शंतान्श पृथी च पृथ्वीनितरां तनीयान्।

नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना, समेव तस्य प्रतिमात्यत: सा। ।

इस ग्रन्थ में आचार्य भास्कर ने खगोलीय निरीक्षण हेतु-गोलयन्त्र, नाडीवलयंत्र, सूर्यघड़ी, शंकु, घटिका, चक्र, चाप, सूर्य फलकयंत्र। इन 12 प्रकार के यंत्रों का उल्लेख किया गया है। साथ ही अपने ग्रन्थ के पद्यभाग की सरल व्याख्या हेतु "वासनाभाष्य" नामक टीका लिखी।

सिद्धांतसम्राट- खगोल एवं ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थसिद्धांत सम्राट नामक ग्रन्थ की रचना श्री जगन्नाथ द्वारा की गई। श्री जगन्नाथ मत्स्य नरेश रजा जयसिंह के दरबारी कवि थेएवं राजा इन्हें ससम्मान सहित दक्षिण क्षेत्र से अपने राज्य में लाये थे। कतिपय विद्वानों का मानना है कियह ग्रन्थ अरबी ज्योतिष ग्रन्थ मिजास्ता नामक ग्रन्थ का हिंदी भाष्य है क्योंकी इसमें उल्लेखित खगोलीय

यंत्रादि संबंधी तथ्यों का वर्णन अरबी ग्रन्थ के अनुरूप ही किया गया है। कवि स्वयं कहते हैं-**अरबी भाषया ग्रन्थं मिजास्ता नामक स्तिथः। गणकानां सुबोधाय गिर्वाण्या प्रकटिकृत।।** इस ग्रन्थ में वेध शाला द्वारा सायन ग्रह, क्रन्तिसाधन, अक्षांश, देशांतर तथा कालवेद्य आदि विभिन्न विषयों का विवेचन किया गया है।

ग्रहलाघव- खगोल शास्त्रीय परंपरा में आचार्य दैवेज्ञ प्रणीत "गृह्लाघव" का अप्रतिम स्थान है। गणेशदैवैज्ञ के पिता का नाम केशव एवं माता का नाम लक्ष्मी था। विद्वानों द्वारा कौशिक गौत्र में उत्पन्न, इनका निवास स्थान नंदीग्राम माना जाता है। इनकी रचनाओं में गृह्लाघव, लघुतिथिचिंतामणि, बृहत्तिथिचिंतामणि, सिद्धांतसिरोमणि टीका आदि प्रमुख है। खगोलविज्ञान के क्षेत्र में इनका प्रमुख ग्रन्थ गृह्लाघव है। इस ग्रन्थ में गणीतिय समीकरणों द्वारा ग्रहों की तुल्यता, संयोग एवं वियोग राशि, नक्षत्र छाया, महापात इत्यादि का 15 अधिकारों में उपनिबद्ध कर विवेचन किया गया है।

3.5.2 आधुनिक खगोल विज्ञान के पाश्चात्य ग्रन्थ एवं उनके रचनाकार

खगोल विज्ञान के क्षेत्र में जिस प्रकार भारतीय आचार्यों ने अपना अभूत पूर्व योगदान दिया उसी प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इस क्षेत्र में अपनी नवीतम आश्चर्यजनक खोजों को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है साथ ही विभिन्न ग्रंथों की रचनाएं की। इन ग्रंथों मेंऑन द हेवन्स,सिडेरियस नुनसियस, मैकेनिज्म ऑफ द हेवेन्स, आउटलाइन्स ऑफ एस्ट्रोनॉमी, मंगल और उसकी नहरेंतथा द इंटरनल कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ द स्टार्सआदि प्रमुख हैं।

ऑन द हेवन्स- अरस्तु प्रणीत "ऑन द हेवन्स" आधुनिक खगोल विज्ञान का ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में पृथ्वी को ब्रह्माण्ड का केंद्र एवं उसे स्वर्ग से पृथक माना गया है। विद्वानों के अनुसार प्रसिद्ध समुद्र यात्री कोलंबस ने आंशिक रूप से इस ग्रन्थ का उपयोग अपनी यात्राओं के लिए प्रेरणा के रूप में किया था।

सिडेरियस नुनसियस-गैलीलियोद्वारा सन् 1609ई. में विरचित "साइडेरियस नुनसियस"नामक पुस्तक खगोल विज्ञान के क्षेत्र में में हुई नवीनतम खोजो के विषय में अवगत कराती है। इसमें उल्लेख उपलब्ध होता है कि उन्होंने अपनी दूरबीन के माध्यम से अन्तरिक्ष का अवलोकन किया साथ ही सूर्यकेन्द्रित ब्रह्माण्ड के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

द मैकेनिज्म ऑफ द हेवेन्स-मैरी सोमरविले द्वारा लिखित 1831ई.में प्रकाशित "द मैकेनिज्म ऑफ द हेवन्स खगोल विज्ञान पर सबसे प्रभावशाली पुस्तकों में से एक है। पाश्चात्य खगोलविदों ने खगोलीय गति को समझने में सोमरविले की पुस्तक को तेजी से अपनाया गया। सोमरविले ने अपने 91 वर्षों के कार्यकाल में पांच महत्वपूर्ण खगोल विज्ञान की पुस्तकें एवं विभिन्न शोधपत्र लिखे जो खगोल के क्षेत्र में परवर्ति वैज्ञानिकों के लिए बहुत उपयोगी थे।

आउटलाइन्स ऑफ एस्ट्रोनॉमी-1849 में जॉन हर्शेल द्वारा विरचित पुस्तक पुस्तक "आउटलाइन्स ऑफ एस्ट्रोनॉमी" को खगोल विद्वानों ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सार ग्रन्थ की संज्ञा दी है। हर्शेल ने इस पुस्तक में ग्यूसेप पियाज़ी, हेनरिक ओलबर, फ्रेडरिक बेसेल व अन्य खगोलशास्त्रियों के खगोल सम्बन्धी सिद्धांतों एवं उनके द्वारा प्रतिपादित शोध पत्रों का उल्लेख किया है। इस पुस्तक में

अन्तरिक्षभूगोल, समय, धूमकेतु, ग्रहों की हलचल, तारा मण्डल आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

मंगल और उसकी नहरें-मार्स एंड इट्स कैनल्स द्वारा 1906 में प्रकाशित पुस्तक के माध्यम से लोगों में मंगल ग्रह के विषय में जानने की जिज्ञासा को उत्पन्न किया। इस पुस्तक में मंगल ग्रह की जलवायु, वहाँ के जीवजन्तु, भूमण्डल आदि भौतिक संरचनाओं के विषय में आश्चर्य उल्लेख किया गया है।

द इंटरनल कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ द स्टार्स-सर आर्थर एस एडिंगटन द्वारा विरचित एवं 1926 में प्रकाशित "द इंटरनल कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ द स्टार्स" में सौरमंडल में व्याप्त तारों के अध्ययन पर प्रकाश डाला गया है। इसमें तारे कैसे चमकते हैं?, उन्हें उर्जा कैसे मिलती है?, क्या उनका कोई परिक्रमण पथ है?, सूर्य के अतिरिक्त क्या चन्द्रमा की उर्जा से प्रभावित होते हैं?, गुरुत्वाकर्षण शक्ति किस प्रकार कार्य करती है?, सभी ग्रह सूर्य का ही चक्कर क्यों लगाते हैं?, आकाश गंगा कितनी प्रकार की होती हैं?, उल्का पिण्ड में तीव्र उर्जा की उत्पत्ति का स्रोत क्या है?,उपग्रहों के परिक्रमण से ग्रहों पर पड़ने वाले प्रभाव आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

2.6 वेदों में खगोल विज्ञान : खगोल एवं ज्योतिष

वेद भारतीय ज्ञान परंपरा के अक्षय स्रोत है, जिसमें मनुष्य एवं उसके जीवन से जुड़े विभिन्न विषय सम्मिलित हैं। उन्हीं विषयों में मुख्य है, खगोल। जिसने प्राचीन समय से ही मनुष्य की कौतुहल शक्ति को अभिप्रेरित किया है। खगोल के सन्दर्भ में प्राचीन आचार्यों ने अपने दीर्घ चिंतन सेजिस परिभाषा को अभिव्यक्त किया है, उसमें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, मंगल आदि ग्रह तथा उपग्रह, विभिन्न तारे, गुरुत्त्वीय शक्ति व चुम्बकीय शक्ति, क्षुद्र ग्रह तथा उल्का पिण्ड आदि विषय वेदों से अनुकृत है। अर्थात् खगोल सम्बन्धी इन सभी विषयों का उल्लेख वेदों में विवेच्य हैं। वैदिक काल से ही खगोल विज्ञान का**ज्योतिष** के अंतर्गत अध्ययन किया जाता रहा है। ज्योतिष को षड् वेदांगों में वेद रुपी पुरुष का नेत्र कहा गया है। इस दृष्टी से खगोल विज्ञान भी वेद का नेत्र है। सम्पूर्ण सृष्टियों में होने वाले व्यवहार का निर्धारण काल से ही संभव है एवं काल का ज्ञान सौरमंडल में व्याप्त बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, आदि ग्रहों की गति से होता है। अत: प्राचीन काल से खगोल विज्ञान वेदांग का महत्त्वपूर्ण अंग है। प्राचीन समय में शुभ मुहूर्त में याज्ञिक अनुष्ठान करने के लिए ग्रहों तथा नक्षत्रों का अध्ययन करके सही समय ज्ञात करने की विधि से ज्योतिष की उत्पति हुई एवं इसके रचनाकार लगधाचार्य थे।डॉ0 उमाशंकर ऋषि के मत में इन्होंने अपने ग्रन्थ के तृतीय श्लोक में ज्योतिष की उपादेयता का उल्लेख किया है-

वेदा हि याग्यर्थमभिप्रवृत्ताः कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधान शास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।

अर्थात् वेदों की प्रवृत्ति यज्ञानुष्ठान के उद्देश्य से ही हुई, उनके विधान में काल के अधीन है एवं काल का विधान करने वाला विज्ञान (खगोल विज्ञान) ज्योतिषविज्ञान है। इस प्रकार यज्ञों के काल का निर्धारण ग्रहों एवं नक्षत्र आदि की गति पर निर्भर है। अतः सौरमंडल एवं नक्षत्रों के बारे में भविष्यवाणी करना ज्योतिष का मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं।ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रथों में नक्षत्र, चान्द्रमास, सौरमास, मल मास, ऋतु परिवर्तन, उत्तरायन, दक्षिणायन, आकाशचक्र, सूर्य की

महिमा, कल्प का माप आदि के संदर्भ में विभिन्न संकेत उपलब्ध होते हैं। इस हेतु प्राचीन द्रष्टा खगोल संबंधी विषयों का स्वयं प्रत्यक्ष अवलोकन करते थे। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त**(10.90.13)** में ब्रह्मांड जगत द्यु, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी रूप में वर्णित है-**नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्णो द्यौ समवर्तत पदभ्याम भूमिः।** प्राचीन खगोल व ज्योतिष विद्वानों द्वारा वर्णित एक कथानक के अनुसार ऋषि दीर्घतमस् **सूर्य** का अध्ययन करने में ही अंधे हुए थे। ऋग्वेद में सूर्य को ब्रहमांड में एक चक्र के केंद्र बिंदु के रूप में परिकल्पित किया गया है। उसे द्युलोक का स्वामी एवं पृथ्वी को अपनी आकर्षण शक्ति से बांधे रखने वाला कहा गया है। सूर्य ही सभी भुवनों का अधार है- **यत्रेमा विश्व भुवनानि तस्थुः।** एवं वह सभी ऋतुओं का हेतु है। ऋग्वेद के **1/35/2**मंत्र में उल्लेख है कि ईश्वर द्वारा प्रदत्त सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति सेपृथ्वी आदि लोकों को धारण करता है। ऋग्वेद में क्षुद्र ग्रहों तथा उल्का पिंडों का भी का उल्लेख उपलब्ध होता है। **शतपथ ब्राह्मण** में **पृथ्वी** को वृत्ताकार रूप में परिभाषित किया गया है। **चन्द्रमा** के गर्भ में घटने वाली विभिन्न घटनाओं एवं उनसे होने वाले परिणामों के विषय प्राचीन द्रष्टा गृहत्संवत द्वारा ऋग्वेद के द्वितीय मंडल में बताया गया है। ऋग्वेद के**10.90 सूक्त**, पुरुष सूक्त के 12वें मन्त्र में विराट पुरुष की मन तथा नेत्र नामक इन्द्रियों से क्रमशःचन्द्रमा एवं सूर्य की उत्पत्ति बताई गई है। इसी प्रकार यजुर्वेद के **18वें** अध्याय के**40**वें मंत्र में यह उल्लेख उपलब्ध होता है कि सूर्य किरणों के कारण ही चन्द्रमा प्रकाशमान है। **मैत्रयी उपनिषद** में सूर्य और सात ग्रहों का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में सूर्य को एक चक्र के मध्य में आधार रूप में बताया गया है एवं उसे जगत की आत्मा कहा गया है-**सूर्यः जगतस्तस्थुषश्च आत्मा।** साथ ही सूर्य को नवग्रहों में श्रेष्ठ मानकर उनका आह्वाहन किया गया है-**जपाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम्। तमोऽरिं सर्वपापघ्नं सूर्यमावायाम्यहम्।** । अथर्ववेद में **'शं नो दिविचरा ग्रहाः'**में सौरमंडलीय ग्रहों का वर्णन उपलब्ध होता है। शतपथ ब्राह्मण मेंआठ ग्रहों का उल्लेख उपलब्ध होता है-**'अष्टौ ग्रहाः'**। शतपथ ब्राह्मण में भी खगोल विषयक तथ्यों का वर्णनहै, जैसे- चन्द्रमा की कक्षाओं एवं उसके मास में घटने और बढ़ने से मनुष्य हेतु विभिन्न बलिक्रम बाताये गये हैं।

वेदों में खगोल विज्ञान ज्योतिष के रूप में परिभाषित है एवं प्राचीन काल से ही ज्योतिष और खगोल का घनिष्ठ संबंध रहा है। ज्योतिषीय खगोल के सम्बन्ध में-वेदों में **सूर्य** एवं **चन्द्रमा** का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है, किन्तु **राहु** एवं **केतु** को अदृश्य तथा शेष भौम आदि में 07 ही ग्रहों(सूर्य, बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि)को वास्तविक ग्रह बताया गया है(ऋग्वेद 1.105.10)। इसी क्रम में सूर्य के दो अयनों- उत्तरायण तथा दक्षिणायन,काल गणना के सन्दर्भ में- संवत्सर, वर्ष, सौरवर्ष, चंद्रमास आदि, नक्षत्रादि का वर्णन(वेदों में कई स्थलों पर तारों को ही नक्षत्र कहा गया है), विषुव(तैत्तरीय संहिता) आदि विषयों संबंध में विभिन्न प्रसंग वेदों बहुशःउपलब्ध होते हैं। खगोल एवं ज्योतिष दोनों में सूक्ष्म रूप में अध्ययन विषय की दृष्टी से विभेद एक दूसरे से सम्बन्ध रूप में भी दृष्टीगत होता है-ज्योतिष में सौरमंडल के विभिन्न ग्रहों-बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि,सूर्य, राहु, केतु। तथा उपग्रहों में–चन्द्रमा आदि के गतिशीलता से मानव के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्यन किया जाता है। आधुनिक खगोल विज्ञान में बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण,तारों में -सूर्य अन्य तारे । तथा उपग्रहों में–चन्द्रमा आदि का अध्ययन वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है। ज्योतिष में भविष्यवाणी करने हेतु आकाशीय पिंडों की स्थिति का प्रयोग

किया जाता है। जबकि खगोल विज्ञान में पृथ्वी के बाह्यमंडल के साथ-साथ सौर परिवार का अध्ययन किया जाता है। आधुनिक समय में ज्योतिष और खगोल विज्ञान हेतु 'एस्ट्रो' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका तात्पर्य है, विविध तारे या आकाशीय पिंड। भारत में वैदिक काल से ही नहीं अपितु मध्यकालीन यूरोप में खगोल विज्ञान एवं ज्योतिष का एक साथ अध्यन किया जाता था, किन्तु शनै: शनै: खगोल एवं ज्योतिष के क्षेत्र में हुए विभिन्न अनुसंधानों के परिणामस्वरूप यह विषय एक-दूसरे के पूरक अर्थ में पृथक-पृथक शाखाओं रूप में अभिव्यंजित हुए।

2.7 खगोल विज्ञान की आधुनिक अवधारणा एवं उपादेयता

खगोल एक बृहद विषय है, जिसमें हमारे प्राचीन द्रष्टाओं ने दीर्घकालीन अनुसन्धान किया है, एवं उनके द्वारा प्रदत्त खगोल के आश्चर्यात्मक निष्कर्षएवं परिणाम परवर्ती वैज्ञानिकों हेतु भी अनुकरणीय तथा पुनःपुनः खोजपूर्ण हैं। आधुनिक विज्ञान के युग में जहाँ मानव जीवनोपयोगी तथा उससे सम्बंधित आदि सभी विषय तकनीकी परम्परा से विकसित हो रहे हैं, वहीं मानव के कौतुहल व जिज्ञासा को बढाने वाली ब्रहमांड की शक्तियों का अध्ययन के पश्चात विद्वानों द्वारा विभिन्न अवधारणाएं प्रस्तुत की गई हैं, जो निम्नलिखित है-

खगोल विज्ञान मानव के विकास से प्राचीन- मानव का विकास उसकी दीर्घकालीन यात्रा का परिणाम है, प्राचीन समय में वह पृथ्वी पर रहते हुए वह पृथ्वी एवं पृथ्वी के बाह्य आकाश में घटने वाली घटनाओं को अनुभव कर्ता था, जिससे उसके अन्दर भय एवं कौतुहल उत्पन्न हुआ, किन्तु शनैः शनैः अपनी बौद्धिक क्षमता से वह खगोल की आश्चर्यजनक घटनाओं का निराकरण करने में प्रवृत्त रहने लगा। इस क्रम में उसका पृथ्वी के प्राकृतिक वातावरण को समझने से पूर्व सौरमंडल में व्याप्त सूर्य एवं ग्रहों की गति को समझना आवश्यक था। उसके द्वारा सृजित प्राचीन संस्कृतियों ने रात्रि में आकाश में व्याप्त तारों को जोड़ने वाली आकृतियों की कल्पनाएँ की, मानव के कृषि कर्म हेतु समय के निर्धारण में खगोल पर निर्भर रहा, लम्बी-लम्बी महासागरीय यात्राओं में नाविकों हेतु खगोल का ज्ञान आवश्यक था। इस प्रकार विभिन्न सभ्यताओं की कला एवं संस्कृति को प्रेरित कर विकसित करने में खगोल विज्ञान का योगदान है।

दैनिक जीवन में खगोलीय घटनाओं का अनुभव- खगोल की विभिन्न घटनाओं में यदि निदर्शन रूप में पृथ्वी के विषय में कथन करें तो, उसकी घूर्णन गति के परिणाम स्वरुप उसकी स्थिरता का उसी प्रकार अनुभव करते हैं जिस प्रकार नदी में गतिशील नाव में बैठकर नाव की स्थिरता का। खगोल की अन्य घटनाओं में पृथ्वी की गति से पृथ्वी पर मौसम सम्बन्धी घटनाओं, चन्द्रमा के परिक्रमण एवं उसके विभिन्न चरणों, बृहद दूरबीन से शनि ग्रह के छल्ले एवं उसके उपग्रह, बृहस्पति का वायुमंडल आदि का अवलोक कर सकते हैं।

रात का आकाश प्रकाशवानएवं गतिशील है- अन्तरिक्ष व आकाश का वास्तविक रंग कला होता है, किन्तु दिन में सूर्य के प्रकाश के विकिरण के कारण वह हमें नीला एवं प्रकाशमान प्रतीत होता है। रात्रि के समय सूर्य के प्रकाश से दीप्तमान तारों के माध्यम से आकाश दृष्टीगत होता है तथा आकाश की ओर उन्मुख होकर हम विभिन्न कल्पनाएँ करते हैं। जैसे-आकाश रात्रि में एक मार्गनिर्देशक है, खगोलीय उज्ज्वल पिण्ड रात्रि में भी सूर्य के क्षितिज से ऊपर नंगी आखों से दृष्टीगतहोते हैं, उल्का पिंड पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करते हुए दिखाई देते हैं, आदि।

खगोल विज्ञान सम्बन्धी उपर्युक्त अवधारणाओं के अतिरिक्त अन्य अवधारणाओं-**ब्रह्मांड विज्ञान-ब्रह्माण्ड को एक इकाई के रूप में अनुसन्धान करने का विज्ञान है, ब्रह्मांड में सैकड़ों अरब आकाश गंगाएं हैं, सौरमंडल में हमारा एक मात्र ग्रह पृथ्वी है एवं हमें इसका संरक्षण करना चाहिए।** आदि प्रमुख हैं।

खगोल विज्ञान की उपादेयता-प्राचीन समय में सौरमंडल के विभिन्न ग्रहों की गति, नक्षत्र आदि की स्थिति से यज्ञों का आयोजन एवं उसकी सिद्धि हेतु काल का निर्धारण किया जाता था। कृषि कार्य की उन्नति में लिए गए उत्कृष्ट निर्णयों का आधार ग्रहों की गति से ऋतुओं में होने वाले परिवर्तन थे। मनुष्य के जीवन से जुड़े विभिन्न कार्यों में यात्रा, उत्सव, संस्कारादि में नक्षत्र ग्रह गणना अति महत्त्वपूर्ण थी। खगोल के आधार पर ही दैनिक कलेंडर का निर्माण किया जाता था। अर्थात् किसी कार्य को किस प्रकार किया जाए, इस हेतु खगोल विज्ञान अपरिहार्य माना जाता था।

मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने हेतु विज्ञान ने जिस प्रकार की क्रांति की है वह मनुष्य के बौद्धिक शक्ति का परिणाम है। उसके दैनिक जीवन से जुड़ा ऐसा कोई भी विषय नहीं है, जो विज्ञान से प्रभावित न हो। उन्हीं विषयों में एक है खगोल, खगोल के क्षेत्र में भी नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधानों ने सौरमंडल के अध्ययन क्षेत्र को सूक्ष्म एवं सरल बना दिया है। कृत्रिम उपग्रहों के निर्माण एवं उन्हें सौरमंडल में भेजने की वैज्ञानिक तकनीक से खगोल में व्याप्त ग्रहों, उपग्रहों, आकाश गंगाओं से जुड़ी विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में मनुष्य पृथ्वी के किसी भी कोने में रहकर जानकारी ले सकता है। पृथ्वी के परिक्रमण से मौसम परिवर्तन, चन्द्रमा के पृथ्वी के परिक्रमण से पृथ्वी पर ज्वारीय शक्ति का उद्भव, सौर प्रकाश, आकाश में चमकते तारामंडल से मनुष्य में उत्पन्न कौतुहल एवं उसकी रात्रि में आकाश मार्ग की कल्पना, आकाशीय पिंडों का पूर्व में उदय तथा पश्चिम में अस्त होना, पृथ्वी की घूर्णन से दिन-रात, सूर्य ग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि सौरमंडलीय विषयों में घटित घटनाओं के संदर्भ में वैज्ञानिक तकनीकी प्रयोग से उनके विषय में समय से पूर्व जाना जा सकता है,जिससे उपयुक्त निर्णय लिए जा सके। इस दृष्टी सेखगोल विज्ञान की आवश्यकता बढ़ जाती है। आधुनिक समय में इस विषय का "खगोल भौंतिक विज्ञान" के रूप भी अध्ययन किया जाता है। खगोल विज्ञान से हमें ब्रह्मांड के रहस्यों का पता चलता है एवं इससे सम्बंधित कई तकनीकें विकसित होती हैं,खगोल विज्ञान से जुड़े शोध से निर्मित उपकरणों काप्रयोग चिकित्सा क्षेत्र में भी किया जाता है, खगोल विज्ञान से जुड़े शोधों से जुड़ी तकनीकें अन्य विषयों में भी विकसित होती हैं,उन तकनीकों का उपयोग-डेटा विज्ञान, एयरोस्पेस उद्योग, वित्त, तकनीकी लेखन और वैज्ञानिक अनुसंधान में किया जाता है।

2.8 सारांश

खगोल का क्षेत्र निश्चित रूप से समृद्ध एवं व्यापक है। मनुष्य के विकास से सम्बंधित ऐसा कोई भी विषय- वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक नहीं है, जिसकी चर्चा इसमें न हुई हो। अर्थात् मनुष्य जीवन से सम्बंधित सभी विषय खगोलीय घटनाओं से प्रभावित होते हैं। इस दृष्टी से इस इकाई के अंतर्गत हमने खगोल शब्द का अर्थ एवं उसकी सार्थकता को जाना। साथ ही खगोल विज्ञान के प्रतिपाद्य विषयों में विभिन्न ग्रहों-बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण तथा उपग्रहों में- चंद्रमाओं आदि, क्षुद्र ग्रहों एवं उल्का पिण्डों(धूमकेतु)का स्वरूप तथा प्रमुख

तारों में सूर्य एवं अन्य तारामंडलों से युक्त आकाशगंगा के विषय में जाना। इस इकाई में हमने सम्पूर्ण ज्ञान के स्रोत वेदों में खगोलीय विषयों का ऐतिहासिक अन्वेषणात्मक दृष्टी से अध्ययन किया एवं हम खगोल की प्राचीनतम उपयोगिता से अवगत हुए। तत्पश्चात हम ब्रह्मांड के स्वरूप को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत रखने वाले विविध ग्रंथों में-प्राचीन एवं पाश्चात्य खगोलीय ग्रन्थ एवं उनके रचनाकारों के विषय में जाना। साथ ही खगोल विषय की प्राचीन अवधारणाओं के विषय का अवलोकन किया एवं उसकी प्राचीन से लेकर वर्तमान उपादेयता के विविध तथ्यों से अवगत हुए।

2.9 बोध-प्रश्न

1.खगोल विज्ञान को आंग्ल भाषा में कहा जाता है-

क.एस्टोलाजी ख. कास्मोलाजी ग.एस्ट्रोनामी घ.एस्ट्रोफिजिक्स

2. निम्न में सौरमंडल के अध्ययन के विषय है-

क.ग्रह ख.उपग्रह ग.धूमकेतु घ. ये सभी

3.ब्रह्माण्ड के एक मात्र जीवनप्रदाता ग्रह पृथ्वी के कितने प्रतिशत भाग पर जल है-

क.78% ख.79% ग.71% घ.75%

4.शनि के कितने उपग्रह हैं-

क.50 ख.58 ग.52 घ.53

5. "ब्रह्मस्फुट सिद्धांत" के प्रणेता हैं-

क.भास्कराचार्य ख.गणेशदैवज्ञ ग.ब्रह्मगुप्त घ.आर्यभट्ट

6.नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्णो द्यौ समवर्तत पदभ्याम भूमिः। प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के किस सूक्त से सम्बंधित है-

क.अक्ष सूक्त ख.पुरुष सूक्त ग.हिरण्यगर्भ सूक्त घ. अग्निसूक्त

रिक्त स्थान-

1. हमारी आकाशगंगा का नाम..... है?
2. प्राचीन समय में खगोल का अध्ययन .....के अंतर्गत किया जाता था।
3. "आउटलाइन्स आफ एस्ट्रोनामी" नामक पुस्तक के लेखक .....हैं।
4. मंगल ग्रह के उपग्रह..... हैं।

सत्य/असत्य

1. शतपथ ब्राह्मण में पृथ्वी को वृत्ताकार रूप में परिभाषित किया गया है। ( )
2. मंगल ग्रह के तीन उपग्रह हैं। ( )
3. सूर्य का व्यास 13 लाख 90 हजार किलोमीटर है, यह व्यास पृथ्वी के 113 गुने अधिक है। ( )
4. षड् वेदांगों में वेद रुपी पुरुष की घ्राणेंद्री **"ज्योतिष"** को कहा गया है। ( )

2.10 शब्दावली

1.उपादेय - उपयोग में लाने योग्य।

2. घूर्णन - परिक्रमा

3. कालक्रियापाद - काल गणना

4.अवर ग्रह - कनिष्ठ या छोटा ग्रह।

5.उल्का पिण्ड - कठोर चट्टान से निर्मित प्रकाशवान पिण्ड।

6.एस्ट्रोन - तारे

7.नोमोस - नियम

8.कौंड्राइट -धूल कणों तथा धातु से निर्मितउल्का पिंड।

9. अकौंड्राइट - कठोर चट्टानों के पृथक अंश।

10.कौतुहल - जिज्ञासा(किसी वास्तु को जानने की इच्छा), उत्सुकता।

2.11 बोध-प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ग.एस्ट्रोनामी

2. घ. ये सभी

3.ग.71%

4.क.50

5.गब्रह्मगुप्त

6.ख. पुरुष सूक्त

रिक्त स्थान

1.मिल्किवे

2.ज्योतिष शास्त्र

3.जॉन हर्शेल

4.फोबोस एवं डीमोस

सत्य/असत्य

1.सत्य

2.असत्य

3.सत्य

4.असत्य

2.12 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1.आर्ष ग्रन्थं सूर्यसिद्धांतम्-सिंह उदयनारायण, स्वामी प्रकाशन मेरठ (उत्तर प्रदेश), वि. सं. 1960, पृ0 28 ।

2.आर्यभट्टियम्- परमेश्वर आचार्य, मथुरापुर शास्त्र प्रकाशन कार्यालय मुजफ्फरपुर (उत्तर प्रदेश), सन् 1906।

3.सिद्धांतशिरोमणि- द्विवेदी पण्डित गिरिजा प्रसाद, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ (उत्तर प्रदेश), सन् 1926।

4.खण्डखाद्यकरणम्- गुप्ता प्रभुचंद्रसेन, कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रकाशन 1941।

5.ब्रह्मस्फुटसिद्धांत-शर्मा पण्डित रामस्वरूप, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ ऐस्ट्रोनॉमिकल एंड संस्कृत रिसर्च करोलबाग न्यू दिल्ली- 2239।

6.ग्रह लाघव- शर्मा पण्डित रामस्वरूप, वैंक्टेश्वर प्रकाशन मुंबई, वि.सं. 1952 ।

2.13 उपयोगी पुस्तकें

1.वैदिक साहित्य एवं संकृति- द्विवेदी आचार्य कपिल देव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्र०सं0 2002

2.संस्कृत साहित्य का इतिहास- ऋषि डॉ0 उमाशंकर, पृ095, चौखम्भा भारती अकादमी,सन 2023 ।

3.सिडेरियस नुनसियस-गैलीलियो, https://en.wikipedia.org/wiki/Sidereus_Nuncius

4.आन द हेवेन्स-अरस्तु https://en.wikipedia.org/wiki/On_the_Heavens

5.द मैकेनिज्म ऑफ द हेवेन्स-मैरी सोमरविले, Anatiposi Verlag (16 अप्रैल 2023)

6.आउटलाइन्स ऑफ एस्ट्रोनॉमी-जॉन हर्शेल,Salzwasser-Verlag (25 जून 2022)

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.खगोल विज्ञान ब्रह्माण्ड का विज्ञान है, कैसे?स्पष्ट कीजिये।

2.पृथ्वी के आंतरिक एवं बाह्य स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।

3.खगोल ज्योतिष का अभिन्न अंग है। स्पष्ट कीजिये।

4.सौरमंडल के स्वरुप को अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिये।

5.खगोल विज्ञान के प्राचीन ग्रंथों का सूक्षम परिचय दीजिये।

6.खगोल विज्ञान की प्राचीन तथा आधुनिक अवधारणाओं को स्पष्ट कीजिये।

इकाई -3 वैदिक मनोविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 विषय-प्रवेश

- 3.3.1 मनोविज्ञान का सन्दर्भ
- 3.3.2 वैदिक ग्रन्थों में मनोविज्ञान की परिकल्पना
- 3.3.3 वैदिक मनोविज्ञान का स्वरूप
- 3.3.4 वैदिक मनोविज्ञान की विशेषताएँ

3.4 सारांश

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 अभ्यास-प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक सामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारतीय परंपरा में वेद को ईश्वरीय ज्ञान कहा गया है। वेद समस्त ज्ञान, विज्ञान, धर्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य आदि के स्रोत हैं। इस दृष्टि से उनमें आदिकाल से आधुनिककाल तक प्रचलित और विकसित सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के बीज उपलब्ध हैं; ऐसा सिद्ध होता है। मनुष्य के जीवन-संचालन में जिन शक्तियों का सर्वप्रमुख योगदान है, उनमें मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार; इन चार अंतःकरण अवयवों का स्थान अग्रगण्य है। इनमें से भी मन को मनुष्य के जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहा गया है। इस विषय में वैदिक साहित्य में असंख्य प्रमाण उपलब्ध हैं। इन आर्ष अथवा शब्द प्रमाणों की भारतीय परम्परा में बहुत मान्यता है।

मन के महत्त्व का सबसे बड़ा कारण मनुष्य के कार्य-व्यवहार में उसका योगदान है। इस विषय में वैदिक साहित्य में अनेक उद्धरणउपलब्ध हैं। मानव साहित्य में मन का सर्वप्रथम परिचय यजुर्वेद के माध्यम से प्राप्त होता है। यह विवरण इतना स्पष्ट और विस्तृत है कि परवर्ती वैदिक साहित्य में भी इसके प्रमाण उद्धृत किए जाते हैं। उदाहरण के लिए वेदों में जिस मन को मनुष्य के शरीर में उपलब्ध दैवी अवयव के रूप में परिचित कराया गया है उसे ब्राह्मण ग्रंथों में मनुष्य का नित्य सहचर कहा गया।

उपनिषदों में इसी मन को मनुष्य रूपी रथ की लगाम रूपमें सामान्यीकृत किया गया। वैदिक साहित्य पर आधारित सूत्र, स्मृति आदि में भी मन का उल्लेख प्राप्त होता है।

मनुष्य के जीवन में मन की केंद्रीय भूमिका को देखते हुए वेद से लेकर ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि में मन के विषय में विशद चर्चा उपलब्ध होना स्वाभाविक है। यह चर्चा न केवल वैदिक मनोविज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करती है, अपितु आधुनिक मनोविज्ञान का भी मार्गदर्शन करने में समर्थ है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से वैदिक साहित्य के अन्यान्य ग्रंथों में मनोविज्ञान की परिकल्पना, उसके स्वरूप और विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत विद्यार्थी-

- मन का स्वरूप स्पष्ट करेंगे।
- मनोविज्ञानको परिभाषित कर सकेंगे।
- वैदिक साहित्य से मनोविज्ञान संबंधी उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।
- वैदिक मनोविज्ञान के स्वरूप का वर्णन करेंगे।
- वैदिक मनोविज्ञान की विशेषताएँ स्पष्ट करेंगे।
- वैदिक मनोविज्ञान का व्यावहारिक विवेचन करेंगे।

3.3 विषय-प्रवेश

मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में मन की केंद्रीय भूमिका है। यजुर्वेद में इसकी विशेषताओं का इतनी स्पष्टता से वर्णन है कि इसके बिना मनुष्य के व्यक्तित्व की कल्पना भी असंभव प्रतीत होती है। आगे चलकर दर्शन ग्रंथों में मन को आत्मा का सर्वप्रथम सहयोगी कहा गया और इसी के माध्यम से

आत्मा की धर्म अथवा अधर्म में प्रवृत्ति दर्शाई गई है। उपनिषदों में कहा गया है कि सबसे पहले मन ही इंद्रियों के माध्यम से किसी विषय की ओर आकर्षित होता है। इसके बाद वह इन विषयों को बुद्धि के समक्ष आकर्षक रूप से प्रदर्शित करता है। बुद्धि मन द्वारा प्रस्तुत विषयों को गुण-दोष, लाभ-हानि, यश-अपयश आदि का विचार करके स्वीकार अथवा अस्वीकार करती है। मनुष्य के व्यवहार में मन की इस केन्द्रीय भूमिका के कारण ही भारत की परंपरा में मन को वश में करने संबंधी बहुत से उल्लेख प्राप्त होते हैं। एक उद्धरण में कहा जाता है कि इस संसार को कौन जीत सकता है? और उसके उत्तर में कहा जाता है कि "जिसने मन को जीत लिया, वही इस संसार को जीत सकता है।"

मानव के व्यक्तित्व में मन की इसी केंद्रीय भूमिका के कारण वैदिक ऋषियों ने इसके स्वरूप, प्रवृत्ति और सामर्थ्य को लेकर बहुत प्रकार के उपदेश किए हैं। इनमें से कुछ के अनुसार मन आत्मा का सहभागी होने के कारण जन्म-जन्मांतर के संस्कारों से युक्त होता है। वही इस जन्म में परिवेश के अनुसार मनुष्य के व्यक्तित्व को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मन के इन संस्कारों को पूर्वजन्म के संस्कार या जन्मजात-प्रवृत्ति कहा जाता है। मन की महत्ता को इस तथ्य से भी जाना जाता है, कि पूरी तरह जागृत होने पर भी मनुष्य अपनी किसी भी इंद्रिय से संसार के किसी भी विषय का साक्षात्कार या अनुभव तब तक नहीं कर सकता जब तक मन का संयोग न हो।

अन्य शब्दों में, जिस इन्द्रिय के साथ मन होता है, वही अपने विषय का अनुभव कर सकती है। यही कारण है कि कभी-कभी हम खुली आँखों से भी दृश्य नहीं देख पाते और जागते हुए भी किसी अनुभव से वंचित रह जाते हैं। यह हमारे जीवन में मन के महत्व को दर्शाने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है। इसलिए, मन और उसकी प्रवृत्ति को समझना और उसे अपने कल्याण के लिए प्रयोग करना मनुष्य जीवन की सफलता के लिए अनिवार्य है। इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर इस इकाई के माध्यम से मन के विषय में उपर्युक्त शीर्षकों के अंतर्गत विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.3.1 मनोविज्ञान का सन्दर्भ

मनोविज्ञान क्या है ? अथवा इसका स्वरूप और महत्व किस प्रकार का है? इन प्रश्नों पर विचार से पहले यह समझना आवश्यक है कि मन क्या है और क्या इसकी उपस्थिति को किन्हीं प्रमाणों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए सबसे पहले जो तथ्य हमारे सामने उपस्थित होता है, वह है कि मनुष्य सभी गुण, कर्म, स्वभाव, अभ्यास आदि अपने परिवेश के आधार पर विकसित नहीं करता, अपितु समान परिवेश में रहने वाले मानवों में विविध व्यक्तित्व देखे जा सकते हैं। इस परिस्थिति के कारण को आधुनिक मनोविज्ञान आनुवंशिकी के रूप में स्वीकार करता है। आज भारत ही नहीं, बल्कि विश्वभर में स्वीकार किया जा चुका है कि व्यक्तित्व के निर्माण में परिवेश के साथ आनुवंशिकता का समान योगदान रहता है। इसका तात्पर्य है कि बालक का व्यक्तित्व केवल परिवेश अर्थात् उसके परिवार, पास-पड़ौस, विद्यालय, समाज आदि पर ही निर्भर नहीं होता।

ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही परिवार, समूह, समुदाय या समाज में जन्म लेने और पलने-बढ़ने वाले बच्चे भिन्न प्रकार का व्यक्तित्व प्रदर्शित करते हैं। ऐसे में परिवेश के समान होने पर भी व्यक्तित्व की भिन्नता का जो एकमात्र कारण समझ आता है; वह है उनकी जन्मजात प्रवृत्ति या स्वाभाविक संस्कार। यह प्रवृत्ति या संस्कार मनुष्य के अंतरण में विद्यमान रहते हैं और समय के

साथ-साथ उद्घाटित होते जाते हैं। इनका प्रभाव व्यक्ति के दृष्टिकोण और अपने वातावरण के साथ अंतर्क्रिया के तौर-तरीकों पर स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। इसका अर्थ है कि परिवारजन अथवा शिक्षक कैसा भी परिवेश निर्मित कर लें; फिर भी बालक के भीतर ऐसी कोई सत्ता अवश्य रहती है, जो उसके व्यवहार, विचार और निर्णय की भिन्नता को प्रभावित करती है। भारतीय मनीषा ने इस सत्ता या अवयव को 'मन' का नाम दिया है।

इस परिस्थिति के अतिरिक्त भी जीवन व्यवहार में अनुभव किया जाता है कि पूरी तरह जागा हुआ होने और आँखें खुली होने पर भी हमकिसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य-विशेष को नहीं देख पाते, कान के सक्षम होने पर भी किसी ध्वनि या पुकार को नहीं सुन पाते। ऐसा ही व्यवहार अन्य इंद्रियों के साथ भी अनुभव किया जाता है। इसका सबसे प्रभावी स्पष्टीकरण है कि इन्द्रियों के जिस व्यवहार के प्रति हमारा ध्यान केंद्रित नहीं होता, उस इंद्रियार्थ-संयोग से हमें कोई संवेदना प्राप्त नहीं होती। इस स्थिति के कारण को विद्वान-जन 'मन' का नाम देते हैं।

प्रायः सभी भारतीय दर्शन अन्तःकरण के चार अवयव स्वीकार करते हैं। इनमें सर्वप्रथम है मन, जो एकादश इन्द्रियों में शामिल होते हुए भी'उनसे उन्नत और विषय के ग्रहण में निर्णायक है। मन इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले विषयों को बुद्धि के समक्ष प्रस्तुत करता है। बुद्धि उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म, लाभ-हानि आदि परिणामों का विचार करके उपस्थित विकल्पों से किसी एक के पक्ष में निर्णय करती है। यदि किसी विषय में बार-बार एक समान निर्णय किया जाता है, तो चित्त उसका संग्रह कर लेता है, ताकि समान विषय में बार-बार विचार-विमर्श के आवश्यकता न रहे। अंतःकरण का चौथा अवयव अहंकार है, जो इस प्रकार के निर्णयों को सब प्रकार से सुरक्षित करता है और उन्हें सदा और सब परिस्थितियों में व्यवहार में लाने के लिए सप्रयास रहता है। इस प्रकार मन की अगुवाई में अंतःकरण के सभी अवयव जीवन -व्यवहारों का संचालन करते हैं।

सामान्य रूप में विज्ञान को ऐसेज्ञान के रूप में जाना जाता है जो अवलोकन, तार्किक-चिंतन, अन्वेषण और अध्ययन द्वारा उपलब्ध होता है। विज्ञान की अन्य विशेषता व्यक्ति और परिस्थिति से निरपेक्ष होना है। इसका अर्थ है कि विज्ञान के सिद्धांतकिसीव्यक्ति और परिस्थिति से प्रभावित नहीं होते। यदि ऐसा होता है तो उन्हें विज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा जाता। अन्य शब्दों में, विज्ञान व्यवस्थित और नियमबद्ध ज्ञान है, जिसे तर्क और प्रमाण के द्वारा सिद्ध किया जा सके। इस संदर्भ में मनोविज्ञान; मन के विषय में व्यवस्थित, तर्कपूर्ण और प्रामाणिक ज्ञान प्रदान करने वाला शास्त्र है। विविध शास्त्रों में उपलब्ध मन-सम्बन्धी समस्त विवरण, उल्लेख और उद्धरण, जो एक दूसरे के समान, सभी को स्वीकार्य और तर्क के द्वारा प्रमाणित हैं; वे मनोविज्ञान के घटक अवयव हैं।अन्य शब्दों में मनोविज्ञान मन के स्वरूप, व्यवहार और गुणों का वैज्ञानिक अध्ययन है, जिसे मनुष्य के व्यवहार को समझने में उपयोग किया जा सकता है।

मनोविज्ञान को मन का विज्ञान, मन से संबंधित विज्ञान, मन की स्थितियों, स्वरूप और कार्यों का अध्ययन करने वाला विज्ञान आदि विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। वैदिक चिंतन में मन का भौतिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक विवेचन उपलब्ध होता है, जिसके कारण भारतीय मनोविज्ञान विश्वभर में स्वीकृत है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में मन के स्वरूप, कार्य, प्रभाव और गतिविधियों का निरीक्षण, अवलोकन और यंत्रों द्वारा सूक्ष्मनिरीक्षण भी मनोविज्ञान के अंतर्गत

सम्मिलित हो गया है। वैदिक मनोविज्ञान अपने आप में एक ही विषय रहा है, जबकि पाश्चात्य संदर्भ में इसे बाल, शिक्षा, समाज, उद्योग, विधि, वाणिज्य, अपराध, स्नायु और परा-मनोविज्ञान जैसी अन्यान्य श्रेणियों में बाँटकर पढ़ा जाता है।

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1. परिवेश का क्या तात्पर्य है ?
2. आनुवंशिकता से आप क्या समझते हैं ?
3. व्यक्तित्व के निर्माण में किन प्रमुख परिस्थितियों का योगदान होता है ?
4. मनुष्य के अंतःकरण के अवयवों के नाम बताइए।
5. मनुष्य के जीवन में बुद्धि की भूमिका किस प्रकार की है ?

3.3.2 वैदिक ग्रन्थों में मनोविज्ञान की परिकल्पना

वेद को समस्त ज्ञान-विज्ञान का आदि-स्रोत मानने वाली भारतीय परंपरा मनोविज्ञान जैसे आधुनिक प्रतीत होने वाले ज्ञान-क्षेत्र के बीज भी वेदों में निहित मानती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस सृष्टि के सर्वप्रथम शास्त्र के रूप में स्वीकृत वेद की संहिताओं और फिर उनके आधार पर उद्भूत ग्रन्थों में मन, उसकी शक्तियों, विशेषताओं, स्वरूप और सदुपयोग के विषय में अनेक सूत्र प्राप्त होते हैं। इनमें सर्वाधिक स्पष्ट सन्देश यजुर्वेद के चौंतीसवें अध्याय के छह मंत्र हैं, जिन्हें "शिव-संकल्प के मंत्र" का नाम दिया गया है। इनमें से प्रत्येक मंत्र न केवल मन को मनुष्य का महत्वपूर्ण अवयव स्वीकार करता है, बल्कि उसके सामर्थ्य और शक्तियों को भी इतनी स्पष्टता से व्यक्त करता है कि यह सूक्त मनोविज्ञान के सर्वप्रथम उपदेश के रूप में स्वीकार्य हो जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि इस सूक्त के माध्यम से न केवल मन की शक्तियों को सविस्तार प्रस्तुत किया गया है, अपितु उन शक्तियों के सदुपयोग की कामना भी व्यक्त की गई है।

इस प्रकरण से स्पष्ट है कि मन मनुष्य के व्यक्तित्व का एक स्वतंत्र और शक्तिशाली अवयव है और उसके शिव-संकल्प-युक्त अर्थात् सकारात्मक और उन्नत हुए बिना मनुष्य का विकास और उत्कर्ष संभव नहीं हो सकता। इस प्रकार यजुर्वेद मनोविज्ञान का आदि स्रोत है। इस बात पर गर्व और आश्चर्य होना स्वाभाविक है कि ऐसे वैज्ञानिक विषय पर इतनी प्रामाणिकता के साथ दिया गया ज्ञान मनुष्यता के आदिग्रंथ वेद में उपलब्ध होता है। इस प्रकरण से प्रमाणित होता है कि वेद मन और मनोविज्ञान से संबंधित ज्ञान की गंगोत्री है। यहीं से इस विषय का ज्ञान अन्य वैदिक ग्रंथों, दर्शनशास्त्र और वेदोत्तर साहित्य तक आया और विश्वविख्यात हो गया।

वेद के अनुसार मन के सहयोग बिना मनुष्य छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा कोई भी कार्य नहीं कर सकता। जब तक वाणी, शरीर, विचार या शरीर के साथ मन का सहयोग नहीं होता, तब तक न व्यक्ति बोल सकता है, न चिंतन कर सकता है और न ही कार्य कर सकता है। इस अर्थ में मन हमारे शरीर की सभी इंद्रियों, चाहे वे ज्ञान की हों या कर्म की; का एकमात्र स्वामी है और वही है, जो हमारे शरीर की कार्य-शक्तियों को भी संचालित करने की क्षमता रखता है। यजुर्वेद में कहा गया है कि मन के अतिरिक्त हमारे शरीर के अन्य सभी अवयव भौतिक और मरणधर्मा हैं। उनके बीच यह मन ही चैतन्य और आत्मा का नित्य-सहचर है।

मन के स्वरूप का परिचय देते हुए वेद में बताया गया है कि इसके माध्यम से मनुष्य के अतीत या पूर्वजन्मों के संस्कार, वर्तमान के साथ मिलकर उसके भविष्य का निर्माण करते हैं। मन मनुष्य की सभी ज्ञानेंद्रियों, कर्मेन्द्रियों और बुद्धि के साथ मिलकर जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आत्मा का सहयोग करता है। हमारा जितना भी ज्ञान, अनुभव और वृत्तियाँ होती हैं, वे सभी इस मन में समाई रहती है। वे चाहे सक्रिय हों, निष्क्रिय हों या प्रसुप्त हों; लेकिन मन की परिधि के भीतर ही विद्यमान रहती हैं। मन अपने सामर्थ्य से जब, जहाँ और जैसी आवश्यकता होती है, वहाँ इन प्रवृत्तियों को जागृत और प्रयोग कर सकता है। जैसे सारथी किसी रथ में जोते हुए घोड़े को अपनी योजना के अनुसार चलने के लिए लगाम का इस्तेमाल करता है, इसी प्रकार की भूमिका हमारे जीवन के कार्य-व्यवहारों के संचालन में मन की रहती है। इस विवरण से स्पष्ट है कि मन, उसके स्वरूप और प्रवृत्ति के विषय में जितना और जिस प्रकार का मौलिक वर्णन वेद में उपलब्ध होता है, वैसा और उतना व्यापक विवेचन अन्य किसी ग्रंथ में मिलना असंभव है, इसलिए वेद को मनोविज्ञान काआदि स्रोत कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

मन के स्वरूप का उल्लेख करते हुए वेद में इसे अत्यंत विद्वान, आत्मा का निकट सहचर, जरा-रोग-मरण आदि परिवर्तनों से रहित, इंद्रियों का स्वामी और अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा प्रशिक्षित किए जाने योग्य बताया गया है। वेद में मन का कार्य संकल्प और विकल्प; अर्थात् किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान, स्थिति, क्रिया आदि के पक्ष में निर्णय करना और बाद में उसे बदल देना बताया गया है। इस प्रकार मन बुद्धि के सामने निर्णय के लिए अनेक विकल्प प्रस्तुत करता है। यह मानव के अंतःकरण के एक अन्य अवयव चित्त का भी बहुत निकट सहयोगी है; क्योंकि इसी के माध्यम से आने वाले विषयों पर बुद्धि द्वारा लिए गए निर्णयों का संग्रह चित्त में होता है। मन ही जगत, जीवन और उसके विषयों के प्रति मनुष्य के आकर्षण का कारण है। इसके अभाव में मनुष्य का संसार में संयोग होना संभव नहीं होता। स्मृति, संकल्प, इच्छा, प्रेरणा, धारणा जैसे अनेक कार्य मन के द्वारा किए जाते हैं।

वैदिक वाङ्मय परंपरा में वेद के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान आता है। इन शास्त्रों में वैदिक मंत्रो के व्यावहारिक उपयोग का उल्लेख प्राप्त होता है। सभी वेदों पर आधारित ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इन्हीं में से एक शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है कि जैसे सूर्य के उदय होने पर जगत के सभी कार्य आरंभ होते हैं, उसी प्रकार मन के सक्रिय होने पर ही मनुष्य क्रियावान होता है। इस ब्राह्मण में यह भी बताया गया है कि जब तक मन पक्ष में नहीं होता, तब तक मनुष्य कोई भी कार्य करने में समर्थ नहीं होता। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में मन को मनुष्य के शरीर में उपस्थित दैवी शक्ति कहा गया है। मन को समस्त सांसारिक ज्ञान का स्रोत बताया गया है। अन्य ब्राह्मणों में मन को कामना या इच्छा का दूसरा रूप बताया गया है और कहा गया है कि जिस प्रकार चंद्रमा से रात्रि की शोभा होती है, उसी प्रकार मन से व्यक्तित्व में प्रकाश होता है। अन्य ब्राह्मण ग्रंथों में भी मन के विषय में बहुत सकारात्मक विचार व्यक्त किए गए हैं।

वेद और ब्राह्मण के बाद उपनिषद वैदिक वाङ्मय के महत्वपूर्ण घटक हैं। इन उपनिषदों का प्रणयन ऋषि-मुनियों ने अपने गहन चिंतन और अनुभव के आधार पर किया। इन ग्रंथो में मन को ज्ञान की प्राप्ति का अनिवार्य माध्यम बताया गया है। इसी प्रकार मन को शरीर रूपी रथ में आत्मा के

लिए लगाम की तरह भूमिका निभाने वाला कहा गया है। मन के महत्त्व को रेखांकित करते हुए उपनिषदों में कहा गया है कि इंद्रियों को वश में करने के लिए मन के संयम के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। जिस व्यक्ति का मन नियंत्रित है, वह अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति सरलता से कर सकता है।

कठोपनिषद में मन को सूक्ष्म शरीर का अवयव कहा गया है। इस उपनिषद में बताया गया है कि जब मन के सहयोग से इंद्रियों का संयमन किया जाता है, तब बुद्धि स्थिर हो जाती है और मनुष्य अपनी परम-गति को प्राप्त करता है। मन की उत्पत्ति हृदय प्रदेश से कही जाती है, जहाँ एक सौ एक नाड़ियों का संयोग होता है और सुषुम्ना नाड़ी उद्भूत होती है जो हृदय से कपाल के शिखर पर स्थित ब्रह्मरंध्र तक जाती है। मुंडक उपनिषद में मन की तुलना चंद्रमा की कलाओं से की गई है, जो इसके रजसात्मक अथवा चंचल होने का प्रमाण है। मन की उत्पत्ति के विषय में यहाँ कहा गया है कि परमेश्वर की प्रेरणा से इंद्रियों और प्राण के उपरांत मन का उद्भव होता है। मन के गुणों की चर्चा करते हुए उपनिषद में इसे प्रति-शरीर-भिन्न, रचनात्मक, त्रिगुण से युक्त, सदा जागृत, इंद्रियों का स्वामी, बुद्धि का सहयोगी और परम बलवान कहा गया है। इस प्रकार वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि वैदिक साहित्य के सभी ग्रंथों में मन की बहुत चर्चा की गई है। जिसके माध्यम से मन तथा वैदिक मनोविज्ञान के स्वरूप, विशेषताओं और महत्त्व का विशद विवेचन प्राप्त होता है।

बहु-विकल्पीय प्रश्न –

6. भारतीय परंपरा किसको समस्त ज्ञान-विज्ञान का आदि-स्रोत मानती है?

(क) वेद (ख) रामायण

(ग) महाभारत (घ) भगवद्गीता

7. वैदिक मनोविज्ञान का सर्वाधिक स्पष्ट सन्देश किस वेद में उपलब्ध होता है?

(क) ऋग्वेद (ख) यजुर्वेद

(ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद

8. वैदिक संहिता में मनोविज्ञान के मन्त्रों के संग्रह को किस नाम से जाना जाता है?

(क) संगठनसूक्त (ख) मनोविज्ञान सूक्त

(ग) शिव-संकल्पसूक्त (घ) विश्वज्ञान सूक्त

9. मन और आत्मा के बीच किस प्रकार का संबंध बताया गया है?

(क) घोड़े और लगाम का (ख) लगाम और सारथी का

(ग) सेवक और स्वामी का (घ) बंधन का कारण

10. मन की उत्पत्ति किस अंग से कही जाती है?

(क) हृदय प्रदेश से (ख) सुषुम्ना नाड़ी से

(ग) ब्रह्मरंध्र से (घ) मस्तिष्क से

3.3.3 वैदिक मनोविज्ञान का स्वरूप

वैदिक मनोविज्ञान का स्वरूप बहुत तार्किक और वैज्ञानिक है। इसके आधार पर मन के विषय में सभी प्रकार का ज्ञान विभिन्न शीर्षकों और उप-शीर्षकों के अंतर्गत प्राप्त किया जा सकता है। यह ज्ञान इतना विश्वसनीय है कि आधुनिक मनोविज्ञान भी इसके तथ्यों को यथार्थ रूप से स्वीकार

करता है। भारत की परंपरा में सृष्टि के समस्त तत्व भौतिक होते हुए भी अनिवार्य रूप से आध्यात्मिक दृष्टि से देखे जाते हैं। मन भी इसका अपवाद नहीं है। मन के स्वरूप, कार्य और महत्व के विषय में जो चर्चा ऊपर की गई है, उससे मन और वैदिक मनोविज्ञान का आरंभिक परिचय बहुत स्पष्टता और विस्तार से प्राप्त होता है। इस ज्ञान के आधार पर मन के विषय में कुछ शीर्षकों के अंतर्गत चर्चा की जा रही है।

3.3.3.1 त्रिगुणात्मक

प्रकृति का अंग होने के कारण मन को भी सत्त्व, रजस और तमस; इन तीन गुणों से युक्त बताया गया है। किन्तुव्यावहारिकस्तरपरएक समय में इनमें से किसी एक ही गुण की प्रधानता होती है और उसी के आधार पर मन के कार्य और उनका परिणाम होता है। सात्विक मन के बारह गुण गिनाए गए हैं, जो इस प्रकार हैं - अक्रूरता, संविभागरुचिता (सभी विषयों/इन्द्रियों के प्रति समान रूचि), द्वन्द-सहन (सुख-दुख के प्रति सहनशीलता) सत्य, धर्म, आस्तिकता, ज्ञान, बुद्धि, मेधा, स्मृति, धैर्य और अनभिशंगता (श्रेष्ठ कार्यों का सहज सम्पादन)। मन जब राजसिक वृत्ति धारण करता है तो उसमें ग्यारह गुण पाए जाते हैं। ये हैं - दु:ख बाहुल्य, (असहज अनुभव करना), चंचलता (घूमने का स्वभाव), अधीरता (जल्दी परेशान हो जाना), अहंकार, असत्य-भाषण, क्रूरता, दम्भ (घमण्ड), मान, आनंद, विषय-संबंधी इच्छा और क्रोध। इसी कड़ी में तामस मन के सात लक्षण बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं-: विषाद यानि खिन्न रहना, नास्तिकता - वैदिक उपदेशों व वेद मार्ग का विरोध, अधर्म - नियम विरुद्ध आचरण, बुद्धि-निरोध - ज्ञानपूर्वक कार्य न करना, दुष्टबुद्धि (ग़लतमार्गकाअनुसरण), अकर्मण्यता (आलस्य) और निद्रा।

3.3.3.2 जड़ और चैतन्य का समन्वय

भारतीय वैदिक परंपरा के अनुसार सृष्टि के समस्त भौतिक पदार्थों और जैविक प्राणियों की उत्पत्ति का एकमात्र कारण ब्रह्म, परमात्मा अथवा ईश्वर है। इस उत्पत्ति की प्रक्रिया में मन का आविर्भाव अंतःकरण के प्रधान अवयव 'अहंकार' से बताई गई है। जहाँ तक मन की उत्पत्ति प्रक्रिया का प्रश्न है, तो सर्वप्रथम ब्रह्म से महत्तत्व (सृष्टि की उत्पत्ति, नियमन और प्रलय में सक्षम चैतन्य शक्ति) उदय होता है। उस महत्तत्व से सात्विक, राजसिक और तामसिक; इन तीन गुणों वाला अहंकार उत्पन्न होता है, जिन्हें वैचारिक, तैजस और भूतादि के नाम से भी जाना जाता है। इनमें से वैचारिक और तैजस अहंकार के समन्वय से मन का उद्भव होता है।

यहाँ एक विशेष तथ्य पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि इंद्रियों के साथ ही उत्पन्न होने पर भी ज्ञान और कर्म प्रकार की इन्द्रियों के साथ समन्यव में सक्षम होना मन की सबसे बड़ी विशेषता है। इसी कारण मन को उभयेंद्रिय कहा जाता है। इस सन्दर्भ में यह भी ध्यातव्य है प्रकृति का ही एक विकार होने के कारण मन जड़ अथवा अचेतन है लेकिन अपनी प्रकृति और कार्यविधि के अनुसार वह चैतन्य के समान व्यवहार करता है। वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य के अस्तित्व में आत्मा के अतिरिक्त कोई भी अवयव चैतन्य अथवा स्वयं-प्रकाश नहीं है। मानव का कोई भी घटक चाहे वह कोई इंद्रिय हो, मन हो, बुद्धि या अहंकार हो; अपने व्यवहार में चैतन्य अनुभव होते हुए भी मूल-प्रकृति में जड़ हैं।

3.3.3.3. मनुष्य जीवन का केंद्रीय तत्व

संपूर्ण वैदिक वाङ्मय में मन की चर्चा अनिवार्य रूप से उपलब्ध होती है। यह विवेचना उसके स्वरूप, शक्तियों और महत्व को बताती है। वेद में मन को सदा-जागृत, अति तीव्रगामी, संवेदना के लिए अनिवार्य, कार्य-व्यवहार में उपयोगी, समस्त ज्ञान का कारण और दिव्यज्योति बताया गया है। ब्राह्मणों में मन की स्तुति करते हुए इसे ब्रह्म का समकक्ष, सर्वशक्तिमान, सृष्टिकर्ता, दिव्य शक्तियों का स्वामी और विचारों का केन्द्र कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में मन को काम, संकल्प, विचिकित्सा, श्रद्धा, धैर्य, लज्जा, ज्ञान, भ्रम आदि समस्त मानवीय भावनाओं का केंद्र कहा गया है।

उपनिषद साहित्य में चेतन की जो चार अवस्थाएँ बताई गई हैं, वे वस्तुतः मन की स्थितियाँ हैं। इनके अनुसार मन जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था में रहकर व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के अनुभव कराता है। आधुनिक मनोविज्ञान में इन्हें मन की चेतन, अचेतन और प्रसुप्त अवस्था कहा गया है। इसके अतिरिक्त भी उपनिषदों ने मन को शरीर की ऊर्जा, गति, शक्ति, उद्बोधन, संप्रेषण, आकर्षण, संयोग, निरोध जैसी समस्त मानवीय स्थितियों के लिए सक्षम कहा है। इस प्रकार मन पूरे वैदिक साहित्य का केंद्रीय तत्व है।

3.3.4 वैदिक मनोविज्ञान की विशेषताएँ

वैदिक साहित्य अपने विषयों, अध्यात्म प्रधान दृष्टि और मानवीय भावों के कारण संपूर्ण विश्व में विशिष्ट है। यही विशेषताएँ वैदिक मनस्-शास्त्र को आधुनिक मनोविज्ञान से अलग करती हैं। पहले बताया जा चुका है कि वैदिक मनोविज्ञान का बीज यजुर्वेद में है। इसके 34वें सूक्त में मन तत्त्व का जैसा परिचय और विवेचन किया गया है, वह न केवल अद्वितीय है; अपितु मन के दैवीय और आध्यात्मिक सिद्धांत को भी प्रस्तुत करता है। यहाँ कुछ मंत्रो का उल्लेख किया जा रहा है, जिनके माध्यम से वैदिक मनोविज्ञान की विशेषता को समझा जा सकता है –

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। (34/01)

हे परमात्मन्! जीवात्मा का साधन कहा जाने वाला मेरा मन जो जागृत अवस्था में दूर-दूर जाता है, वैसे ही सोते हुए भी दूर-दूर भागता है, जो इन्द्रियों के माध्यम से शब्दादि विषयों का प्रकाशक है, आपकी कृपा से वह शिव यानि कल्याणकारी संकल्प (इच्छा) वाला हो जाए।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनःशिवसंकल्पमस्तु ।। (34/3)

जो उत्कृष्ट ज्ञान और निश्चयात्मक संकल्प का साधन है, जो सभी जीवों में प्रकाश युक्त और नाशरहित है, जिसके बिना कोई कुछ भी कार्य नहीं कर सकता, ऐसा मेरा मन शुभ गुणों की इच्छा करे और दुष्ट गुणों से पृथक् रहे। इस मन्त्र के माध्यम से मन की तीन शक्तियों प्रज्ञान या पहचान, चित्त या स्मरण और धृति अथवा धारणा शक्ति का उल्लेख किया गया है।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। (34/6)

हे सर्वनियन्ता परमेश्वर! जो मेरा मन मनुष्यों को यहाँ-वहाँ ले जाता है जैसे कोई सारथी लगाम द्वारा रथ के घोड़ों को अपने नियत मार्ग पर ले जाता है, जो मन हृदय में निवास करता है लेकिन सतत गतिमान् और अत्यन्त वेग वाला है, वह मन मेरी इन्द्रियों को अधर्म से विमुख करके सदैव धर्म-पथ पर चलाया करे।

इसशृंखलामेंकठोपनिषदमेंसंकलितकुछमंत्रभीउल्लेखनीयहैं –

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ 3/3॥

इस शरीर रूपी रथ का स्वामी आत्मा है। शरीर उसका रथ है। बुद्धि सारथी और मन उसकी लगाम है। इस मंत्र के द्वारा मनुष्य के जीवन और कार्य-व्यवहारों में मन की केंद्रीय भूमिका को रेखांकित किया गया है। इसी कड़ी में एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि -

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।

तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ (कठ 3/6)

जो विवेकी यानि सही और ग़लत के निर्णय में कुशल व्यक्ति अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से मन को वश में कर होता है, उसकी इन्द्रियाँ ऐसे ही वश में हो जाती हैं, जैसे सुशिक्षित घोड़े सारथी के वश में रहते हैं। इस तथ्य को एक अन्य उदाहरण द्वारा दोहराया गया है कि शुद्ध बुद्धि वाला जो सारथी मन रूपी लगाम को अपने वश में करने में सक्षम है, वही मानव जीवन के परम लक्ष्य 'ब्रह्म के परम पद' को प्राप्त कर सकता है।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः।

सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥ (कठ 3/9)

रिक्त स्थान पूर्ति -

11. प्रकृति का अंग होने के कारण मन को.....गुणों से युक्त बताया गया है।
12. जड़ होने पर भी मन.....की तरह व्यवहार करता है।
13. चेतन की जो चार अवस्थाएँ जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और .....होती हैं।
14. इस शरीर रूपी रथ का स्वामी.....है और मन उसकी लगाम है।
15. यजुर्वेद में मन के.....संकल्पयुक्त होने की कामना की गई है।

3.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में मानव जीवन के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले हमारे अंतःकरण के सबसे सक्रिय घटक मन का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। इसके अनुसार इंद्रियों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले विषयों के साथ जुड़कर बुद्धि के सामने विषयों को प्रस्तुत करता है। इन्हीं संवेदनाओं के आधार पर बुद्धि निर्णय करके जीवन का संचालन करती है। मन के साथ जो विज्ञान शब्द जुड़ा है, वह किसी विषय के संबंध में तर्क, प्रमाण और अनुसन्धान आधारित ज्ञान का संकलन होता है। मनोविज्ञान के अंतर्गत मन के स्वरूप, इसकी शक्तियों, क्षमताओं, उपयोगिता आदि से संबंधित विषयों को प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई का लक्ष्य वैदिक साहित्य में मन के स्वरूप को प्रस्तुत करना है। तदनुसार वेदों में मन से सम्बंधित सबसे स्पष्ट और प्रसिद्द विवरण यजुर्वेद के 34वें अध्याय में उपलब्ध होते हैं। इस

विवरण में मन को सचल, दिव्य, स्वप्न में भी गमन करने में सक्षम, समस्त ज्ञान का केंद्र, शरीर रूपी रथ का सारथी और आत्मा का सहचर बताया गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में मन को मनुष्य के शरीर में उपस्थित दैवी शक्ति कहा गया है। इनमें मन को समस्त सांसारिक ज्ञान का स्रोत बताया गया है। इसी कड़ी में उपनिषदों में इंद्रियों को वश में करने के लिए मन के संयम को अनिवार्य बताया गया है। तदनुसार, जिस व्यक्ति का मन नियंत्रित है, वह अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति सरलता से कर सकता है।

आधुनिक समय में जिसे मनोविज्ञान कहते हैं, उसका वैदिक युग में किस प्रकार का स्वरूप था, उस विषय में भी इस इकाई में प्रकाश डाला गया है। भारतीय मनोविज्ञान आधुनिक मनस्शास्त्र से कुछ भिन्न है। इसमें मन को एक दैवीय और आध्यात्मिक शक्ति के रूप में देखा जाता है; जब कि आधुनिक मनोविज्ञान में यह हमारी बुद्धि का ही एक अंग है। यहाँ मन और बुद्धि में कोई स्पष्ट विभाजन की रेखा का अभाव देखा जाता है। इसके बाद वैदिक मनोविज्ञान का विवेचन करते हुए कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं जिनसे आभास होता है कि वेद और वैदिक साहित्य में कितनी स्पष्टता से मन के विषय में बहुत उपयोगी जानकारी दी गई है। सारतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत इकाई मन और मनोविज्ञान के संबंध में एक विहंगम दृष्टि प्रस्तुत करती है।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

मन- मनुष्य के अंतःकरण का अवयव जो संकल्प और विकल्प करता है।

बुद्धि- मन द्वारा प्रस्तुत विषयों पर निर्णय करने वाला अंतःकरण का अवयव।

चित्त- बुद्धि द्वारा किए गए सामान्य निर्णयों को संजोने वाला अवयव।

अहंकार- व्यक्ति को अन्य जनों से भिन्न आभास करने वाला अवयव।

मनोविज्ञान- मन का स्वरूप, कार्य, प्रकृति, विशेषताओं, गतिविधियों आदि को प्रस्तुत करने वाला व्यवस्थित शास्त्र।

आनुवंशिकी - मनुष्य के व्यक्तित्व में जन्म से ही मौजूद रहने वाले गुण, कर्म, संस्कार आदि।

परिवेश- व्यक्ति के माता-पिता, परिवार, पड़ौस, विद्यालय आदि का समन्यव जो किसी व्यक्ति की भाषा, गुण, कर्म, संस्कार आदि को प्रभावित करता है।

व्यक्तित्व- किसी मनुष्य के दृश्य और अदृश्य स्वरूप से आभासित होने वाला प्रभाव, जिसके आधार पर हम उसका मूल्यांकनऔर उससे व्यवहार करते हैं।

वेद- सृष्टि की आदि में परमात्मा की प्रेरणा से शुद्ध अंतःकरण वाले ऋषियों को प्राप्त ज्ञान।

ब्राह्मण- वेद-मन्त्रों के संस्कार, अनुष्ठान या व्यवहार सम्बन्धी अर्थ और व्याख्या।

उपनिषद- वेदों पर आधारित अध्यात्म और दर्शन को समर्पित ग्रन्थ।

दर्शन- वैदिक ज्ञान द्वारा मानव-जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के उपाय बताने वाले शास्त्र।

शिव-संकल्प- शिव का अर्थ है कल्याण और संकल्प का भाव है इच्छा-शक्ति। मन के द्वारा श्रेष्ठ ज्ञान, कर्म और संस्कार प्राप्ति की इच्छा।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1. किसी व्यक्ति के परिवार और आस-पास के माहौल को परिवेश कहा जाता है।
2. किसी व्यक्ति को अपने माता-पिता और पुरखों से प्राप्त गुण आनुवंशिकता कहलाते हैं।
3. व्यक्तित्व के निर्माण में आनुवंशिकता, परिवेश और शिक्षा का प्रमुख योगदान होता है।
4. मनुष्य के अंतःकरण में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये चार अवयव होते हैं।
5. मनुष्य के जीवन में बुद्धि की भूमिका निर्णायक की है।

बहु-विकल्पीय प्रश्न –

6. क) वेद
7. ख) यजुर्वेद
8. ग) शिव-संकल्प-सूक्त
9. ग) सेवक और स्वामी का
10. क) हृदय प्रदेश से

रिक्त-स्थानपूर्ति –

11. तीन
12. चेतन
13. तुरीय
14. आत्मा
15. शिव

3.7 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. कृष्ण लाल, वेद व्याख्या और वैदिक विचारधारा, नाग पब्लिशर्स दिल्ली, 1987
2. दास ए.सी., ऋग्वैदिक इण्डियाः कल्चरल हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया एज़ डिपिक्टिड इन ऋग्वेद, कॉस्मो पब्लिकेशन्स इण्डिया, 2003
3. पण्डित रघुनन्दन शर्मा, वैदिक सम्पत्ति, सेठ शूरजी वल्लभदास ट्रस्ट, मुम्बई, 1956.
4. यजुर्वेद संहिता, सम्पादन और प्रकाशन; दयानन्द संस्थान नई दिल्ली, 1996.
5. रामविचार, एम. ए; वेद सन्देश, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली 2009.
6. लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय, भारतीय संस्कृति कोश, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1996.
7. सरस्वती महर्षि दयानन्द, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 1988

3.8 सहायक सामग्री

1. गोयंदका हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर, उ.प्र; 2016
2. सिंह उमेश कुमार संस्कृत भाषा में निबद्ध दुर्लभ वैज्ञानिक ग्रन्थ, निकष, 2012
3. शास्त्रीराजवीर (सम्पादक), दयानन्द-सन्देश पत्रिका, वैदिक मनोविज्ञान-विशेषांक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 1978.

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वैदिक साहित्य में प्रस्तुत के स्वरूप का परिचय दीजिए।

2. वैदिक मनोविज्ञान के क्या तात्पर्य है ? इसके विज्ञान सम्मत होने पर टिप्पणी कीजिए। वैदिक साहित्य के अनुसार मनोविज्ञान के स्वरूप की विवेचना कीजिए
3. यजुर्वेद में संकलित मनोविज्ञान के सूत्रों का सोदाहरण उल्लेख कीजिए
4. वैदिक मनोविज्ञान की विशेषताओं पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।
5. क्या वैदिक मनोविज्ञान आधुनिक अवधारणाओं के समकक्ष है ? अपने उत्तर के पक्ष में वैदिक साहित्य के उद्धरण प्रस्तुत कीजिए।

इकाई.4 वैदिक अर्थव्यवस्था (Vedic Economy)

इकाई की रुपरेखा

4.1उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 वैदिक सभ्यता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
4.3.1 ऋग्वैदिक व उत्तरवैदिक काल का सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य
4.3.2 वैदिक समाज की संरचना और उसकी आर्थिक गतिविधियाँ
4.4 वैदिक साहित्य में आर्थिक चिंतन
4.4.1'अर्थ' की वैदिक परिभाषा एवं महत्व
4.4.2 ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में अर्थचिंतन
4.5 वैदिक काल की आर्थिक गतिविधियाँ
4.5.1कृषि, पशुपालन, व्यापार एवं वाणिज्य
4.5.2 ऋण व्यवस्था, विनिमय प्रणाली, मुद्रा का स्वरूप
4.6 समाज एवं वर्ग व्यवस्था का आर्थिक प्रभाव
4.6.1वर्ण व्यवस्था एवं श्रम विभाजन
4.6.2 वर्णाश्रम व्यवस्था और उसका आर्थिक प्रभाव
4.7 राजव्यवस्था एवं कर प्रणाली
4.7.1 राजा की आर्थिक भूमिका
4.7.2 कर व्यवस्था (बलि, भाग, दक्षिणा आदि)
4.8 वैदिक साहित्य में आर्थिक नैतिकता
4.8.1 अर्थ और धर्म का सम्बन्ध
4.8.2 वैदिक अर्थनीति में नैतिक मूल्यों का स्थान
4.9 आधुनिक संदर्भ में वैदिक अर्थव्यवस्था
4.9.1वैदिक आर्थिक सिद्धांतों की प्रासंगिकता
4.9.2 आधुनिक आर्थिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 सन्दर्भ गन्र्थ
4.13 बोध प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मानव सभ्यता के प्राचीनतम कालखंडों में एक, वैदिक युग, भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। यह युग न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध था, बल्कि इसकी आर्थिक व्यवस्था भी संगठित और संतुलित थी। वैदिक अर्थव्यवस्था का आधार मुख्यतः कृषि, पशुपालन, शिल्पकला और वाणिज्य पर आधारित था। इस व्यवस्था में समाज के विभिन्न वर्गों का योगदान स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वेदों में वर्णित आर्थिक गतिविधियाँ दर्शाती हैं कि उस समय मानव समाज आत्मनिर्भरता, सामुदायिक सहयोग और प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग की अवधारणा पर आधारित था। तत्कालीन लोग कृषि कार्य में निपुण थे, पशुपालन उनकी समृद्धि का प्रतीक था, और शिल्पकारी तथा व्यापारिक गतिविधियाँ आर्थिक विकास को गति प्रदान करती थीं। वैदिक समाज में वस्तु-विनिमय प्रणाली का प्रचलन था, जहाँ वस्तुओं और सेवाओं का आदान-प्रदान बिना मुद्रा के होता था। यह आर्थिक संरचना प्राकृतिक संतुलन और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देती थी। वैदिक ऋचाओं में नदियों, वनों, पशुओं और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का उल्लेख मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक लोग पर्यावरण के प्रति संवेदनशील और जागरूक थे। इस प्रकार, वैदिक अर्थव्यवस्था एक आदर्श और संतुलित आर्थिक ढांचे का प्रतिनिधित्व करती है, जो न केवल भौतिक उन्नति की दिशा में कार्य करती थी, बल्कि नैतिकता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों का भी पालन करती थी।

इस इकाई में आप वैदिक सभ्यता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, वैदिक साहित्य में आर्थिक चिंतन के साथ साथ वैदिक काल की आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन करेंगे। साथ ही समाज एवं वर्ग व्यवस्था के आर्थिक प्रभाव, राजव्यवस्था एवं कर प्रणाली व वैदिक साहित्य में आर्थिक नैतिकता व आधुनिक संदर्भ में वैदिक अर्थव्यवस्थाको समझ सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात,आप –

- वैदिक सभ्यता के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य कोजान सकेंगे।
- वैदिक साहित्य में आर्थिक चिंतन का विश्लेषण कर सकेंगे।
- समाज एवं वर्ग व्यवस्था का आर्थिक प्रभाव को समझ सकेंगे।
- वैदिक काल की आर्थिक गतिविधियों का वर्णन कर सकेंगे।
- राजव्यवस्था एवं कर प्रणाली को समझ सकेंगे।
- वैदिक साहित्य में आर्थिक नैतिकता व आधुनिक संदर्भ में वैदिक अर्थव्यवस्था के बारे में जान सकेंगे।

4.3 वैदिक सभ्यता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

वैदिक सभ्यता (1500 ई.पू. – 600 ई.पू.) भारतीय उपमहाद्वीप की एक महत्वपूर्ण सभ्यता मानी जाती है, जिसका मूल आधार वेदों में वर्णित ज्ञान और सामाजिक संरचना है। इसे दो प्रमुख

चरणों में विभाजित किया जाता है:**ऋग्वैदिक काल (1500–1000 ई.पू.), उत्तर वैदिक काल (1000–600 ई.पू.)**

1. ऋग्वैदिक काल (1500–1000 ई.पू.): यह कालसप्त सिंधु क्षेत्र (वर्तमान पंजाब और हरियाणा) में फैला हुआ था।ऋग्वेद, जो चार वेदों में सबसे प्राचीन है, इस काल की मुख्य साहित्यिक रचना है। समाज जन (कबीला) में विभाजित था औरराजन (राजा) इसका नेतृत्व करता था।मुख्य आजीविका कृषि और पशुपालन थी। लोहे का ज्ञान नहीं था, उपकरण मुख्यतः तांबे और कांसे के बने होते थे। देवताओं में इंद्र, अग्नि, वरुण और सोम की पूजा प्रमुख थी। महिलाओं को समाज में सम्मान प्राप्त था और वे विदुषी भी होती थीं, जैसे घोषा और लोपा मुद्रा।

2. उत्तर वैदिक काल (1000–600 ई.पू.): इस काल में आर्यों का विस्तार गंगा-यमुना के दो आब क्षेत्र तक हुआ। चार वेदों का संकलन (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) पूरा हुआ। सामाजिक संरचना जटिल हुई औरवर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) का प्रारंभ हुआ। लोहे का उपयोग शुरू हुआ, जिससे कृषि और युद्ध तकनीकों में सुधार हुआ। शिक्षा का केंद्र गुरुकुल प्रणाली थी। महाकाव्य काल (महाभारत और रामायण की रचना) का प्रारंभिक चरण इसी काल से माना जाता है। इस समय धार्मिक अनुष्ठानों में यज्ञों का महत्व बढ़ा औरउपनिषदोंका उद्भव हुआ, जो दार्शनिक चिंतन का प्रतीक बने।

वैदिक सभ्यता की विशेषताएँ:

1. **धार्मिक विश्वास:** प्रकृति-पूजा, यज्ञ परंपरा और वैदिक मंत्रों का उच्चारण।
2. **सामाजिक संरचना:** परिवार प्रधान इकाई थी, जिसमें पिता मुखिया होता था।
3. **शिक्षा व्यवस्था:** गुरुकुलों में वेदों और शास्त्रों का अध्ययन होता था।
4. **अर्थव्यवस्था:** कृषि, पशुपालन, व्यापार, और हस्तकला मुख्य आधार थे।
5. **भाषा:** संस्कृत प्रमुख भाषा थी।
6. **साहित्यिक योगदान:**चार वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, और उपनिषद।

वैदिक सभ्यता भारतीय संस्कृति का मूलभूत आधार है। इस काल में सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक संरचनाओं का विकास हुआ, जो आगे चलकर भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों में विस्तार पाता रहा।

4.3.1 ऋग्वैदिक व उत्तरवैदिक काल का सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य

भारतीय इतिहास को वैदिक काल (1500-600 ईसा पूर्व) में दो भागों में विभाजित किया जाता है:

1. उत्तरवैदिक काल (1000-600 ईसा पूर्व)

1. ऋग्वैदिक काल का सामाजिक परिदृश्य:परिवार (कुल) समाज की बुनियादी इकाई थी। पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था थी और पिता को मुखिया माना जाता था।समाज मुख्यतः चार वर्णों में विभाजित था — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। हालांकि, इस काल में यह विभाजन कर्म के आधार पर अधिक था, जन्म आधारित नहीं। महिलाओं को समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था। उन्हें वेदों के अध्ययन का अधिकार था, और वे धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं।एकपत्नी प्रथा प्रचलित थी, और विवाह को एक महत्वपूर्ण संस्कार माना

जाता था।'सभा' और 'समिति' दो प्रमुख सामुदायिक संस्थाएँ थीं, जो निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।

2. **ऋग्वैदिक काल का आर्थिक परिदृश्य:**मुख्य रूप से कृषि, पशुपालन और सीमित व्यापार पर आधारित था।जौ और गेहूं प्रमुख फसलें थीं। खेती में हल और बैलों का उपयोग होता था।गायों को संपत्ति का प्रतीक माना जाता था। 'गविष्ठि' शब्द का अर्थ था गायों के लिए युद्ध।सीमित स्तर पर वस्त्र निर्माण, धातु कार्य (ताम्र और कांस्य), और कुम्हारगिरी प्रचलित थी।इस काल में मुद्रा का उपयोग नहीं होता था; वस्तु विनिमय प्रणाली (Barter System) प्रचलित थी।

3. **ऋग्वैदिक काल (1500-1000 ईसा पूर्व)**

3. **उत्तरवैदिक काल का सामाजिक परिदृश्य:** यह अधिक कठोर और जन्म आधारित हो गई। ब्राह्मण और क्षत्रिय उच्च स्थान पर थे, जबकि वैश्य व्यापारी और कृषक वर्ग में रहे। शूद्रों की स्थिति कमजोर हो गई।महिलाओं का वेद अध्ययन का अधिकार समाप्त हो गया, और वे धार्मिक अनुष्ठानों में सीमित हो गईं। इस काल में ग्रामों के साथ नगरों का भी विकास हुआ।शिक्षा का केंद्रीकरण गुरुकुलों में हुआ, जहाँ वेदों और शास्त्रों का अध्ययन कराया जाता था।

4. **उत्तरवैदिक काल का आर्थिक परिदृश्य:** लोहे के उपकरणों के प्रयोग से कृषि का विस्तार हुआ। धान, गेहूं, और जौ के साथ अन्य फसलों का उत्पादन भी होने लगा। व्यापारिक मार्गों का निर्माण हुआ और व्यापार के लिए कारवां चलने लगे। इस काल में 'निष्क', 'शतमान' जैसी मुद्राओं का उपयोग होने लगा।लोहा, तांबा और कांसे के औजार बनने लगे। बुनाई, कुम्हारगिरी, धातु-निर्माण का भी विकास हुआ। इस काल में काशी, कोशल, मगध जैसे महत्वपूर्ण नगरों का विकास हुआ।

4.3.2 वैदिक समाज की संरचना और उसकी आर्थिक गतिविधियाँ

1. **वैदिक समाज की संरचना:** वैदिक काल (1500-600 ईसा पूर्व) को दो मुख्य चरणों में बाँटा जाता है: **ऋग्वैदिक काल (1500-1000 ईसा पूर्व) व उत्तरवैदिक काल (1000-600 ईसा पूर्व)**

1. **परिवार और समाज की संरचना:** समाज की मूल इकाई परिवार थी, जिसेकुलकहा जाता था।परिवार पितृसत्तात्मक था, जिसमें सबसे वरिष्ठ पुरुष को मुखिया (*गृहपति*) माना जाता था। संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी, जिसमें कई पीढ़ियाँ एक साथ रहती थीं।

2. **समुदाय एवं पंचायतें:** समाज में निर्णय लेने के लिए दो प्रमुख संस्थाएँ थीं: **सभा** — प्रौढ़ व्यक्तियों का समूह जो धार्मिक एवं सामाजिक मामलों पर विचार करता था। **समिति** — बड़ी जनसभा, जिसमें राजा का चयन और नीतियों का निर्धारण होता था।

3. **वर्ण व्यवस्था:** प्रारंभिक वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था कर्म (कार्य) पर आधारित थी:**ब्राह्मण:** यज्ञ, शिक्षा और धर्म का कार्य। **क्षत्रिय:** युद्ध और शासन का कार्य। **वैश्य:**व्यापार, कृषि और पशुपालन। **शूद्र:**सेवा कार्य। उत्तरवैदिक काल में यह जन्म आधारित और कठोर हो गई।

4. **महिलाओं की स्थिति:** ऋग्वैदिक काल में महिलाओं का समाज में सम्मान था।वे शिक्षित होती थीं और धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं। उत्तरवैदिक काल में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई और उन्हें वेदाध्ययन से वंचित कर दिया गया।

2. **वैदिक काल की आर्थिक गतिविधियाँ:**

1. **कृषि (Agriculture):**मुख्य व्यवसाय कृषि था। *ऋग्वैदिक काल*में जौ (*यव*) और गेहूं (*गोधूम*) की खेती होती थी। *उत्तरवैदिक काल*में धान, कपास और तिलहन की खेती भी होने लगी।लोहे के उपकरण (हल, फाल) का प्रयोग होने से कृषि का विस्तार हुआ।
2. **पशुपालन (Animal Husbandry):** गाय को संपत्ति का प्रतीक माना जाता था। "गविष्ठि" का अर्थ था गायों के लिए युद्ध।घोड़े, भैंस, बकरी, भेड़ और हाथियों का भी पालन होता था।
3. **व्यापार (Trade):** प्रारंभिक काल में वस्तु विनिमय प्रणाली (*Barter System*) का प्रचलन था।उत्तरवैदिक काल में *निष्क*, *शतमान* जैसी धातु मुद्राओं का प्रचलन शुरू हुआ। समुद्री और थलमार्ग व्यापार भी विकसित हुआ।
4. **शिल्प और उद्योग (Crafts and Industry):** कुम्हारगिरी, धातुकर्म (तांबा, कांसा, लोहा), बुनाई और लकड़ी का कार्य प्रचलित था।रथ निर्माण, हथियार निर्माण, आभूषण निर्माण में भी दक्षता थी।
5. **भोजन और वस्त्र (Food and Clothing):** भोजन में मुख्यतः जौ, गेहूं, दूध, घी और माँस का उपयोग होता था। वस्त्र सूती, ऊनी और चमड़े के होते थे। रंगाई और बुनाई का प्रचलन था।

3. **आर्थिक संगठन और शासन व्यवस्था:***राजा*का मुख्य कार्य रक्षा और व्यवस्था बनाए रखना था।कर प्रणाली नहीं थी; लोग स्वेच्छा से अनुदान (*बलि*) देते थे।युद्ध का उद्देश्य भूमि प्राप्ति नहीं, पशु (विशेषकर गाय) प्राप्त करना होता था।

4.4 वैदिक साहित्य में आर्थिक चिंतन

वैदिक साहित्य, जिसमें मुख्यतः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद शामिल हैं, न केवल धार्मिक और दार्शनिक विचारों का संग्रह है, बल्कि इसमें आर्थिक चिंतन का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। वैदिक काल (1500 ई.पू. – 600 ई.पू.) में आर्थिक गतिविधियाँ समाज के दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा थीं, और इन्हें संतुलित व नैतिक ढंग से संचालित करने के निर्देश भी वेदों में मिलते हैं।

4.4.1 'अर्थ' की वैदिक परिभाषा एवं महत्व

1. **अर्थ की वैदिक परिभाषा:**वैदिक साहित्य में'अर्थ'का आशय केवल धन या संपत्ति नहीं, बल्कि सभी प्रकार की भौतिक आवश्यकताएँ, संसाधन और समृद्धि से है जो मानव जीवन को सुखी और सुरक्षित बनाते हैं।ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेदऔरब्राह्मण ग्रंथोंमें अर्थ को जीवन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य माना गया है।संस्कृत में "अर्थ"का शाब्दिक अर्थ होता है—लक्ष्य, उद्देश्ययामूल्यवानवस्तु।यह सिर्फ आर्थिक संपन्नता ही नहीं, बल्कि सामाजिक और भौतिक उन्नति का भी प्रतीक है।

2, वैदिक ग्रंथों में अर्थ का उल्लेख:

1. **ऋग्वेद:**गाय (धन का प्रतीक) और स्वर्ण को समृद्धि का सूचक माना गया है।"गविष्टि" (गायों के लिए युद्ध) का उल्लेख अर्थ की सुरक्षा को दर्शाता है।
2. **अर्थववेद:**इसमें कृषि, व्यापार, शिल्प और वस्त्र निर्माण को समृद्धि के साधन बताया गया है।'धन्वन्तरि सूक्त' में स्वास्थ्य और समृद्धि की प्रार्थना की गई है।
3. **ब्राह्मण ग्रंथ:**इसमें समाज में धन के आदान-प्रदान, व्यापारिक संबंध और आर्थिक व्यवस्थाओं का उल्लेख है।
4. **उपनिषद:**अर्थ को धर्म के अधीन बताया गया है; अधर्म से अर्जित धन को अस्वीकार्य माना गया है।"धर्मस्य मूलमर्थ:" — धर्म की स्थापना के लिए अर्थ का होना अनिवार्य है।

3. अर्थ का महत्व:

1. **जीवन यापन का आधार:**भोजन, वस्त्र, निवास, शिक्षा और सामाजिक कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होती है।वैदिक काल में कृषि, पशुपालन और व्यापार से अर्थ का संचय होता था।

2. **यज्ञ और अनुष्ठान:**वैदिक समाज में यज्ञ और अनुष्ठान का विशेष महत्व था, जिनके संचालन के लिए धन आवश्यक था।राजसूय यज्ञऔरअश्वमेध यज्ञजैसे अनुष्ठान केवल समृद्ध राज्यों में ही होते थे।

3. **सामाजिक व्यवस्था का संचालन:**राजा और शासन व्यवस्था के लिए धन संग्रह किया जाता था।'बलि' (स्वेच्छा से दी जाने वाली कर राशि) का प्रयोग समाज के विकास में होता था।

4. **शिक्षा और ज्ञान:**गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रों को आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती थी।

5. **धर्म और परोपकार:**वैदिक काल में अर्थ का एक हिस्सा परोपकार और दान के लिए भी सुरक्षित रखा जाता था।"धनेन धर्मं साधयेत्" — अर्थ का उपयोग धर्म के पालन में करना चाहिए।

4. **अर्थ और धर्म का संबंध:**वैदिक दृष्टिकोण के अनुसार, अर्थ और धर्म का घनिष्ठ संबंध है।अर्थकी प्राप्ति धर्म के मार्ग पर रहकर होनी चाहिए।अधर्म के द्वारा अर्जित संपत्ति को वैदिक समाज में अनुचित माना गया।अर्थ का प्रयोगधर्म, काम, औरमोक्षकी प्राप्ति में सहायक होना चाहिए।

वैदिक समाज में 'अर्थ' को जीवन का महत्वपूर्ण आधार माना गया, परंतु यह आवश्यक था कि इसकी प्राप्ति नैतिकता और धर्म के अनुरूप हो। इसका उद्देश्य केवल व्यक्तिगत सुख-संपत्ति न होकर समाज की उन्नति और धार्मिक स्थिरता को भी सुनिश्चित करना था।

4.4.2 ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में अर्थचिंतन

1. **ब्राह्मण ग्रंथों में अर्थचिंतन:**ब्राह्मण ग्रंथ (1000-800 ईसा पूर्व) वेदों के अनुषंगिक ग्रंथ हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य वेदों में बताए गए यज्ञों और कर्मकांडों का विस्तार से वर्णन करना है। इनमेंअर्थको यज्ञ, सामाजिक संरचना, और धार्मिक कर्तव्यों के संदर्भ में समझाया गया है।

अर्थ से संबंधित प्रमुख विचार:

1. **यज्ञ और अनुष्ठान:**ब्राह्मण ग्रंथों में अर्थ का प्रयोगयज्ञऔरहवनमें आवश्यक सामग्री की प्राप्ति के लिए होता है।राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, औरवाजपेय यज्ञजैसे बड़े अनुष्ठान केवल आर्थिक समृद्धि वाले राजा ही कर सकते थे।
2. **धन संग्रह और दान:**राजा कोबलि (स्वेच्छा से दिया जाने वाला कर) के माध्यम से धन संग्रह करना होता था।धर्म के अनुसार अर्जित धन का एक भाग दान में देना अनिवार्य माना गया।
3. **संपत्ति का उपयोग:**संपत्ति का उपयोग केवल व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं, बल्कि समाज और राज्य के कल्याण के लिए होना चाहिए।
4. **अर्थ और धर्म का संबंध:**ब्राह्मण ग्रंथों में यह स्पष्ट किया गया कि धर्म के अनुरूप अर्जित धन ही शुभ फल देता है।"धर्मस्य मूलमर्थ:" — धर्म की स्थापना के लिए अर्थ का होना अनिवार्य है।

2. आरण्यक ग्रंथों में अर्थचिंतन:आरण्यकग्रंथ (800-600 ईसा पूर्व) मुख्यतः वनवासियों और तपस्वियों के अध्ययन हेतु लिखे गए थे। इनमें यज्ञ और कर्मकांड की व्याख्या गूढ़ चिंतन के साथ की गई है।

अर्थ से संबंधित प्रमुख विचार:

1. **धन का त्याग और तपस्या:**आरण्यकों में धन और भौतिक वस्तुओं को त्यागकर ध्यान और तपस्या पर अधिक बल दिया गया है।इसे आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग बताया गया है।
2. **अर्थ और मोक्ष:**आरण्यक ग्रंथों में यह माना गया कि अर्थ का उपभोग सीमित होना चाहिए ताकि मोक्ष की प्राप्ति में बाधा न उत्पन्न हो।संतुलित जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया गया—जहाँ आवश्यक धन का संग्रह हो, परंतु लालसा नहीं।
3. **अर्थ का त्याग और साधना:**साधु-संन्यासी और तपस्वी लोग अर्थ का त्याग कर केवल भिक्षा पर जीवन निर्वाह करते थे।इसे आत्मशुद्धि और सत्य की खोज का साधन माना गया।

3. उपनिषदों में अर्थचिंतन:उपनिषद (600-400 ईसा पूर्व) वैदिक साहित्य का दार्शनिक और आध्यात्मिक हिस्सा हैं। इन ग्रंथों में भौतिक जगत की अपेक्षा आत्मज्ञान और ब्रह्म की खोज पर अधिक बल दिया गया है।

अर्थ से संबंधित प्रमुख विचार:

1. **मायात्मक दृष्टिकोण:** उपनिषदों में भौतिक संपत्ति और धन कोमायाकहा गया है, जो नश्वर और अस्थाई है।बृहदारण्यक उपनिषदमें कहा गया है: "माया में लिप्त व्यक्ति सत्य को नहीं देख सकता।"
2. **ब्रह्मज्ञान और अर्थ का संबंध:** उपनिषद मानते हैं कि वास्तविक सुख और समृद्धि बाहरी धन में नहीं, बल्कि आत्मज्ञान में है।"अहम् ब्रह्मास्मि"— मैं ब्रह्म हूं, इस ज्ञान की प्राप्ति को सर्वोच्च धन कहा गया।

3. **त्याग का महत्व:** ईशोपनिषदमें कहा गया है: "तेन त्यक्तेन भुंजीथा:" — त्यागपूर्वक भोग करो।इसका मतलब है कि व्यक्ति को धन का उपभोग करना चाहिए, लेकिन उसे अपना मानकर आसक्त नहीं होना चाहिए।
4. **अर्थ की सीमाएँ:** उपनिषदों में स्पष्ट किया गया है कि भौतिक सुख-संपत्ति सीमित और क्षणिक हैं।वास्तविक शांति आत्मा की खोज में है, न कि भौतिक वस्तुओं में।

ब्राह्मण ग्रंथ अर्थ को धर्म के पालन के लिए अनिवार्य मानते हैं।आरण्यक त्याग और आत्मिक उन्नति की बात करते हैं।उपनिषद इसे माया बताते हुए आत्मज्ञान को सर्वोपरि मानते हैं।

4.5 वैदिक काल की आर्थिक गतिविधियाँ

वैदिक काल (1500 ई.पू. से 600 ई.पू.) भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण कालखंड है, जिसमें समाज का आर्थिक ढांचा मुख्य रूप से कृषि, पशुपालन, शिल्पकला, और व्यापार पर आधारित था। इस कालखंड की आर्थिक गतिविधियाँ न केवल समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करती थीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना को भी सुदृढ़ बनाती थीं।वैदिक काल की आर्थिक गतिविधियाँ प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित थीं और सामुदायिक सहयोग से संचालित होती थीं। कृषि और पशुपालन ने आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया, जबकि शिल्प और व्यापार ने समाज में आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया।

4.5.1 कृषि, पशुपालन, व्यापार एवं वाणिज्य

1. **कृषि (Agriculture):** वैदिक काल मेंकृषिअर्थव्यवस्था का मुख्य आधार थी। इसे सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि माना गया।

मुख्य विशेषताएँ:

1. **मुख्य फसलें:**ऋग्वैदिक कालमें जौ (यव) और गेहूं (गोधूम) मुख्य फसलें थीं।उत्तरवैदिक कालमें धान (व्रीहि), तिलहन (तिल), कपास और दालों का भी उत्पादन होने लगा।
2. **कृषि उपकरण:**प्रारंभिक काल में लकड़ी के हल (लांगल) का उपयोग होता था। उत्तरवैदिक कालमें लोहे के उपकरण (कृषक उपकरण) का विकास हुआ, जिससे खेती अधिक प्रभावी हुई।
3. **सिंचाई प्रबंधन:** सिंचाई के साधन सीमित थे। वर्षा पर निर्भरता अधिक थी।नदियों के किनारे बसे गांवों में खेती अधिक उपजाऊ होती थी।
4. **खेती का तरीका:** हल चलाने के लिए बैलों का प्रयोग होता था।सामूहिक रूप से खेती की जाती थी, जहाँ परिवार और समाज के लोग मिलकर कार्य करते थे।
5. **भंडारण:** फसलों को मिट्टी के बड़े-बड़े पात्रों और खलिहानों में संग्रहित किया जाता था।

2. **पशुपालन (Animal Husbandry):** वैदिक काल मेंपशुपालनकृषि के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी।

मुख्य विशेषताएँ:

1. **गाय का महत्व:** गाय को धन और समृद्धि का प्रतीक माना जाता था। "गविष्टि" (गायों के लिए युद्ध) का उल्लेख मिलता है।
2. **अन्य पशु:** घोड़े (अश्व), भैंस (महिष), बकरी (अजा), भेड़ (अवि), ऊँट और हाथी का भी पालन होता था।घोड़े युद्ध और रथों के लिए उपयोग किए जाते थे।
3. **दुग्ध उत्पादन:** दूध, दही, मक्खन और घी का उत्पादन होता था, जो यज्ञ और दैनिक जीवन में उपयोग होता था।
4. **परिवहन और कृषि कार्य:** बैलों का उपयोग हल चलाने और गाड़ियों को खींचने में होता था।हाथी का उपयोग युद्ध और भारी सामान ढोने में किया जाता था।
5. **समृद्धि का मापदंड:** व्यक्ति की समृद्धि उसकी गायों और अन्य पशुओं की संख्या से आंकी जाती थी।

3. व्यापार (Trade): वैदिक काल में व्यापारिक गतिविधियाँ सीमित थीं, परंतु उत्तरवैदिक काल में इनका विस्तार हुआ।

मुख्य विशेषताएँ:

1. **वस्तु-विनिमय प्रणाली (Barter System):**प्रारंभिक वैदिक काल में मुद्रा का प्रचलन नहीं था।वस्तुओं का विनिमय होता था, जैसे अनाज के बदले वस्त्र, गाय के बदले धातु इत्यादि।
2. **स्थानीय और क्षेत्रीय व्यापार:**स्थानीय स्तर पर अनाज, दूध, घी, वस्त्र, और धातु का व्यापार होता था।क्षेत्रीय व्यापार में लोहा, तांबा, सोना, और हाथ से बने उत्पाद बेचे जाते थे।
3. **वणिक वर्ग का उदय:**उत्तरवैदिक काल मेंवैश्यवर्ग व्यापारी के रूप में उभरा।उन्होंने व्यापारिक कारवाँ का संचालन किया और दूरस्थ स्थानों तक वस्त्र, अनाज और धातु पहुँचाई।
4. **समुद्री व्यापार:**कुछ समुद्री व्यापार के संकेत मिलते हैं, विशेषकर सिंधु नदी और उसके आस-पास के क्षेत्रों में।

4. वाणिज्य (Commerce): वाणिज्य वैदिक समाज में उभरता हुआ एक महत्वपूर्ण आर्थिक स्तंभ था।

मुख्य विशेषताएँ:

1. **मुद्रा का प्रचलन:** उत्तरवैदिक कालमें 'निष्क', 'शतमान' और 'कर्षापण' जैसी धातु की मुद्राओं का उपयोग होने लगा।ये मुख्यतः स्वर्ण और तांबे से निर्मित होते थे।
2. **व्यापारिक मार्ग:** स्थलीय और नदीमार्ग दोनों का उपयोग व्यापारिक वस्तुओं के आदान-प्रदान के लिए होता था।व्यापारिक मार्गों के किनारे विश्राम स्थल (श्रेणी) और बाजार बनाए जाते थे।
3. **न्यायिक व्यवस्था:** व्यापारिक लेन-देन को सुरक्षित रखने के लिए कुछ न्यायिक नियम बनाए गए थे।व्यापार में धोखाधड़ी और अनुबंध भंग करना गंभीर अपराध माना जाता था।

4. **व्यापारिक संगठन:** श्रेणियाँ (Guilds) व्यापारिक समुदायों द्वारा बनाए गए संगठन थे, जो व्यापार की देखरेख और सुरक्षा सुनिश्चित करते थे।

4.5.2 ऋण व्यवस्था, विनिमय प्रणाली, मुद्रा का स्वरूप

ऋण व्यवस्था (Debt System): वैदिक काल में ऋण (Loan) लेने और देने की परंपरा मौजूद थी। ऋग्वेद, अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रंथों में इसके स्पष्ट संकेत मिलते हैं।

मुख्य विशेषताएँ:

1. **ऋण का उद्देश्य:**कृषि, व्यापार, विवाह और यज्ञ के आयोजन के लिए ऋण लिया जाता था।कभी-कभी प्राकृतिक आपदाओं के समय भी ऋण की आवश्यकता पड़ती थी।
2. **ऋणदाता (Creditor) और ऋणी (Debtor):**ऋण देने वाले कोऋणदाता (रिणदायिन्) और ऋण लेने वाले कोऋणी (रिण्य) कहा जाता था।
3. **ब्याज (Interest):**अर्थववेदमें ब्याज कोकुसिदकहा गया है।ब्याज दर निश्चित थी, परंतु अलग-अलग प्रकार के ऋण के लिए दरें भिन्न होती थीं।कृषि संबंधी ऋणों पर ब्याज कम और व्यापारिक ऋणों पर अधिक होता था।
4. **ऋणमुक्ति के नियम:**समय पर ऋण न चुकाने पर ऋणी की संपत्ति ज़ब्त की जा सकती थी।कभी-कभी सामाजिक अपमान का भी सामना करना पड़ता था।अथर्ववेदमें ऋणमुक्ति के लिए देवताओं से प्रार्थना का भी उल्लेख मिलता है।
5. **ऋण और सामाजिक प्रतिष्ठा:**ऋण चुकाने को धर्म का कर्तव्य माना गया था।समय पर ऋण न चुकाने वाले को समाज में सम्मान नहीं मिलता था।

2. **विनिमय प्रणाली (Barter System):** ऋग्वैदिक काल में मुद्रा का प्रचलन नहीं था, इसलिए वस्तु-विनिमय प्रणाली ही व्यापार का मुख्य माध्यम थी।

मुख्य विशेषताएँ:

1. **वस्तु-विनिमय का स्वरूप:**एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु का आदान-प्रदान होता था।अनाज के बदले वस्त्र, दूध के बदले औजार, गाय के बदले धातु इत्यादि।
2. **मूल्य निर्धारण:**वस्तुओं का मूल्य उनकी उपयोगिता और दुर्लभता के आधार पर तय होता था।गाय को मूल्य मापन की इकाई के रूप में देखा जाता था।
3. **प्रमुख विनिमय वस्तुएँ:**अनाज (जौ, गेहूं, धान), पशु (गाय, घोड़ा, भेड़), धातु (तांबा, कांसा), वस्त्र और आभूषण
4. **सीमाएँ:**बड़ी मात्रा में वस्तुओं का विनिमय कठिन था।दूरस्थ व्यापार में वस्तुओं का ले जाना असुविधाजनक था।मूल्य का सटीक निर्धारण कठिन होता था।

3. **मुद्रा का स्वरूप (Form of Currency):** उत्तरवैदिक काल में व्यापार के बढ़ते विस्तार के साथ-साथ वस्तु-विनिमय प्रणाली के विकल्प के रूप मेंमुद्राका उपयोग प्रारंभ हुआ।

मुख्य विशेषताएँ:

1. **प्रमुख मुद्राएँ:**निष्क (Nishka): यह सोने की एक मुद्रा थी। प्रारंभ में यह गहने के रूप में उपयोग होती थी, बाद में इसे विनिमय के लिए अपनाया गया।शतमान

(Shatamana): यह चांदी की मुद्रा थी।कर्षापण (Karshapana): यह तांबे की मुद्रा थी, जिसका उपयोग छोटे व्यापारिक लेन-देन में होता था।

2. **मुद्राओं का स्वरूप:**इन मुद्राओं पर किसी प्रकार की मुहर या अंकन नहीं होता था।केवल वजन के आधार पर इनका मूल्यांकन किया जाता था।
3. **मुद्रा का प्रचलन:**मुद्रा का प्रयोग मुख्यतः बड़े व्यापारिक लेन-देन, यज्ञ सामग्री की खरीद, और राज्य करों के भुगतान में होता था।राजा भी अपने सैनिकों और सेवकों को इसी प्रकार का भुगतान करते थे।
4. **धातु निर्माण और संग्रहण:**सोना, चांदी, और तांबा की मुद्रा बनाई जाती थी।इन्हें राजा के खजाने में सुरक्षित रखा जाता था।
5. **व्यापारिक सुरक्षा:**व्यापारिक मार्गों पर राजा की सेना सुरक्षा प्रदान करती थी।व्यापारिक गुट (श्रेणी) भी लेन-देन की सुरक्षा सुनिश्चित करते थे।

बोध प्रश्न- क (Check Your Progress-A)

1. **.....** काल (1500–1000 ई.पू.)सप्त सिंधु क्षेत्र (वर्तमान पंजाब और हरियाणा) में फैला हुआ था।
2. ..... शब्द का अर्थ था गायों के लिए युद्ध से है।
3. समाज की मूल इकाई परिवार थी, जिसे..... कहा जाता था।
4. ..... व्यक्तियों का समूह जो धार्मिक एवं सामाजिक मामलों पर विचार करता था।
5. ..... ग्रंथ (800-600 ईसा पूर्व) मुख्यतः वनवासियों और तपस्वियों के अध्ययन हेतु लिखे गए थे।
6. ऋग्वैदिक कालमें ..... मुख्य फसलें थीं।
7. उत्तरवैदिक कालमें .....जैसी धातु की मुद्राओं का उपयोग होने लगा।
8. अर्थववेदमें ब्याज को..... कहा गया है।

4.6 समाज एवं वर्ग व्यवस्था का आर्थिक प्रभाव

वैदिक काल (1500 ई.पू. – 600 ई.पू.) में समाज की संरचना एक विशिष्टवर्ण व्यवस्थापर आधारित थी। यह व्यवस्था न केवल सामाजिक संरचना को निर्धारित करती थी, बल्कि आर्थिक गतिविधियों को भी गहराई से प्रभावित करती थी। वैदिक साहित्य (मुख्यतः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) में वर्णित चार मुख्य वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र—समाज में अपने-अपने विशिष्ट आर्थिक उत्तरदायित्व निभाते थे।वैदिक काल की वर्ण व्यवस्था ने आर्थिक गतिविधियों को स्पष्ट रूप से विभाजित कर दिया था, जिससे उत्पादन और व्यापार सुचारु रूप से चलते थे। समाज के सभी वर्ग अपने-अपने क्षेत्र में दक्ष थे, जिससे आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

4.6.1 वर्ण व्यवस्था एवं श्रम विभाजन

1. वैदिक काल की वर्ण व्यवस्था (Varna System): वर्ण व्यवस्था वैदिक समाज की एक महत्वपूर्ण सामाजिक संरचना थी, जिसमें समाज को चार मुख्य वर्णों में विभाजित किया गया था:ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। इस विभाजन का आधार जन्म न होकर मुख्यतःकर्मऔरगुणथा।

(1) ब्राह्मण (Brahmin): शिक्षा, ज्ञान का प्रसार, यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठान का संचालन करना इनके प्रमुख कर्तव्यों में से एक है ।समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था।वेदों का अध्ययन और अध्यापन, मंत्रोच्चार, पूजा-पाठ, और सलाहकार की भूमिका आदि कार्य इनके द्वारा किये जाते है।आजीविका के रूप मेंसमाज द्वारा दी गई दक्षिणा, यज्ञों में प्राप्त दान है । **उदाहरण:**गुरुकुलोंमें ब्राह्मण शिक्षा देते थे और राजा के धार्मिक सलाहकार भी होते थे।

(2) क्षत्रिय (Kshatriya): राज्य की रक्षा, प्रशासन और युद्ध संचालन इनके प्रमुख कर्तव्य है। समाज की सैन्य और राजनीतिक शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में स्थान प्राप्त है ।युद्ध कला में निपुणता, राज्य की रक्षा, प्रजा का संरक्षण आदि कार्य इनके द्वारा किये जाते है।भूमि से प्राप्त कर (बलि), युद्ध में जीती गई संपत्ति आदि इनके आजीविका के प्रमुख साधन है।**उदाहरण:**राजा, सामंत, सेनापति आदि सभी क्षत्रिय वर्ण से होते थे।

(3) वैश्य (Vaishya): व्यापार, कृषि, पशुपालन और आर्थिक गतिविधियाँ आदि इनके प्रमुख कर्तव्यों में से एक है ।आर्थिक गतिविधियों के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में स्थान प्राप्त है ।व्यापार, वस्तु-विनिमय, पशुपालन, कृषि उत्पादन आदि प्रमुख कार्य इनके द्वारा किये जाते है ।व्यापार से प्राप्त धन, अनाज का उत्पादन, वस्त्र निर्माण आदि इनके आजीविका के साधन है । **उदाहरण:** व्यापारी वर्गजो स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार करते थे।

(4) शूद्र (Shudra): समाज की सेवा और अन्य तीन वर्णों की सहायता करना प्रमुख कार्य है ।सामाजिक संरचना में सबसे निम्न स्थान प्राप्त है । कृषि, कारीगरी, भवन निर्माण, घरेलू कार्य, हस्तकला आदि इनके प्रमुख कार्य है।श्रम कार्य के बदले अनाज, वस्त्र, और आवासआदि इनके आजीविका के प्रमुख साधन है । **उदाहरण:**कुम्हार, लोहार, बुनकर, चर्मकार आदि शूद्र वर्ण से आते थे।

2. श्रम विभाजन (Division of Labor): वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत श्रम विभाजन का स्पष्ट निर्धारण था। प्रत्येक वर्ण का कार्य विभाजित था जिससे समाज का संचालन सुचारू रूप से होता था।

मुख्य बिंदु:

1. **कर्म आधारित विभाजन:**प्रारंभिक वैदिक काल में वर्णों का आधार कर्म था, अर्थात व्यक्ति अपने कर्मों के आधार पर वर्ण निर्धारित करता था।उदाहरण: जो पढ़ाई में निपुण होता वह ब्राह्मण बनता, जो युद्ध में निपुण होता वह क्षत्रिय बनता।
2. **विशिष्टता का विकास:**प्रत्येक वर्ग अपने कार्यों में विशेष दक्षता प्राप्त करता था।इससे उत्पादन की गुणवत्ता और समाज की कार्यक्षमता में वृद्धि होती थी।

3. **पारिवारिक पेशा:** उत्तरवैदिक काल में यह व्यवस्था जन्म आधारित होने लगी; ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रिय बनने लगा।इससे सामाजिक गतिशीलता में कमी आई।
4. **सहयोग पर आधारित समाज:** चारों वर्ण मिलकर समाज को स्थिर और संगठित बनाए रखते थे।कोई भी वर्ण दूसरों के बिना पूर्ण नहीं था।

3. वैदिक ग्रंथों में वर्ण व्यवस्था का उल्लेख: ऋग्वेद: ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (10.90) में चारों वर्णों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है:ब्राह्मणपुरुष के मुख से, क्षत्रियभुजाओं से, वैश्यउदर से, शूद्रपैरों से उत्पन्न माने गए हैं। **अथर्ववेद:**इसमें समाज में विभिन्न व्यवसायों का वर्णन है, जैसे कृषक, लोहार, बढ़ई आदि। **मनुस्मृति:**मनु ने समाज की स्थिरता के लिए वर्ण व्यवस्था को महत्वपूर्ण बताया। समाज की उन्नति के लिए प्रत्येक वर्ण को अपने कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक बताया।

प्रारंभिक वैदिक काल में यह व्यवस्थाकर्म आधारितथी, जबकि उत्तरवैदिक काल में यहजन्म आधारितबन गई।वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य समाज को व्यवस्थित करना था, परंतु कालांतर में इसमें कठोरता आ गई।

4.6.2 वर्णाश्रम व्यवस्था और उसका आर्थिक प्रभाव

1. वर्णाश्रम व्यवस्था (Varna-Ashrama System): वर्णाश्रम व्यवस्थावैदिक समाज की एक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं धार्मिक संरचना थी, जिसमेंवर्णऔरआश्रमका स्पष्ट विभाजन था।

वर्ण व्यवस्था (Varna System): वर्ण व्यवस्था समाज को चार मुख्य वर्गों में विभाजित करती थी:

1. **ब्राह्मण (Brahmin):** धर्म, शिक्षा और यज्ञों के संचालन का कार्य।समाज में धार्मिक और बौद्धिक नेतृत्व प्रदान करते थे।उनके मुख्य कार्य: वेदों का अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ अनुष्ठान और धार्मिक सलाह।
2. **क्षत्रिय (Kshatriya):** राज्य की रक्षा, शासन और युद्ध संचालन।प्रशासन और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का दायित्व।उनके मुख्य कार्य: युद्ध कला, राज्य प्रबंधन और प्रजा का संरक्षण।
3. **वैश्य (Vaishya):** कृषि, व्यापार, पशुपालन और आर्थिक गतिविधियों का संचालन।व्यापारिक करों का भुगतान और वाणिज्यिक संबंधों का विकास।उनके मुख्य कार्य: अनाज उत्पादन, व्यापारिक लेन-देन, वस्त्र निर्माण।
4. **शूद्र (Shudra):** सेवा कार्य, हस्तकला और निर्माण कार्य।समाज के अन्य तीन वर्णों की सहायता और श्रम का संचालन।उनके मुख्य कार्य: बढ़ईगिरी, कुम्हारगिरी, धातु-कर्म, निर्माण।

आश्रम व्यवस्था (Ashrama System): वैदिक काल में जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया था, जिसका उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को एक निश्चित अनुशासन और उद्देश्य प्रदान करना था।

1. **ब्रह्मचर्य आश्रम (Student Life):**शिक्षा और वेदों का अध्ययन।जीवन का प्रारंभिक चरण, जिसमें अनुशासन और ज्ञान का विकास होता था।
2. **गृहस्थ आश्रम (Householder Life):**विवाह, परिवार का पालन और सामाजिक दायित्वों का निर्वाह।आर्थिक उपार्जन और समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति।
3. **वानप्रस्थ आश्रम (Retired Life):**सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों का त्याग कर तपस्या और साधना।समाज और युवा पीढ़ी को शिक्षा और अनुभव का मार्गदर्शन।
4. **संन्यास आश्रम (Renunciation):** सभी प्रकार के सांसारिक बंधनों का परित्याग।मोक्ष प्राप्ति का अंतिम लक्ष्य।

2. आर्थिक प्रभाव (Economic Impact):

1. **वर्णाश्रम आधारित श्रम विभाजन (Labor Division):** वर्ण व्यवस्था ने श्रम का स्पष्ट विभाजन किया, जिससे दक्षता और उत्पादन में वृद्धि हुई।ब्राह्मण धार्मिक अनुष्ठान और शिक्षा में निपुण थे, क्षत्रिय युद्ध और शासन में, वैश्य व्यापार और कृषि में, और शूद्र निर्माण और सेवा कार्य में।यह विभाजन समाज की आर्थिक संरचना को व्यवस्थित बनाए रखने में सहायक था।
2. **उत्पादन और व्यापार में वृद्धि (Increased Production and Trade):** वैश्य वर्ग के व्यापारिक और कृषि कार्यों ने समाज की आर्थिक नींव को मजबूत बनाया।अनाज, पशुपालन, धातु-निर्माण, हस्तकला आदि के उत्पादन ने व्यापार को बढ़ावा दिया।ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में विनिमय प्रणाली के माध्यम से वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था।
3. **राजस्व और कर प्रणाली (Revenue and Tax System):** क्षत्रिय राजा अपने राज्य की समृद्धि के लिए व्यापार और कृषि पर कर (बलि, भाग, कर) लगाते थे।इन करों का उपयोग युद्ध, सुरक्षा और बुनियादी ढांचे के निर्माण में होता था।
4. **सामाजिक और आर्थिक स्थिरता (Social and Economic Stability):** वर्णाश्रम ने प्रत्येक व्यक्ति को समाज में एक निश्चित भूमिका दी, जिससे सामाजिक स्थिरता बनी रही।आर्थिक गतिविधियाँ सुनिश्चित तरीके से संचालित होती थीं, जिससे कोई भी कार्य उपेक्षित नहीं होता था।
5. **कौशल और हस्तकला का विकास (Skill and Craftsmanship Development):** शूद्रों द्वारा कुम्हारगिरी, बढ़ईगिरी, लोहारगीरी, कपड़ा बुनाई आदि का विकास हुआ।धातु-कर्म, आभूषण निर्माण और कृषि उपकरणों का उत्पादन भी शूद्र वर्ग द्वारा संचालित होता था।
6. **संपत्ति और धन का वितरण (Distribution of Wealth):** संपत्ति का वितरण मुख्यतः वर्ण आधारित था।ब्राह्मण को यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठानों में दान प्राप्त होता था।क्षत्रिय युद्ध और शासन से संपत्ति अर्जित करते थे।वैश्य व्यापार और कृषि से धन संग्रह करते थे।शूद्रों को श्रम के बदले अनाज और वस्त्र मिलते थे।

वर्णाश्रम व्यवस्थाने वैदिक काल की अर्थव्यवस्था को एक मजबूत ढाँचा प्रदान किया।उत्पादन की स्पष्ट जिम्मेदारियों और वर्गीकरण से न केवल सामाजिक स्थिरता बनी, बल्कि आर्थिक उन्नति भी सुनिश्चित हुई।

4.7 राजव्यवस्था एवं कर प्रणाली

वैदिक काल (1500 ई.पू. – 600 ई.पू.) मेंराजव्यवस्थाऔरकर प्रणालीका महत्वपूर्ण स्थान था। यह वह समय था जब सामाजिक संगठन मजबूत हो रहे थे और एक संगठित शासन प्रणाली का विकास प्रारंभ हुआ। प्रारंभिक वैदिक काल में जनजातीय सभ्यता थी, लेकिन उत्तर वैदिक काल तक आते-आते संगठित राज्य और कर व्यवस्था स्पष्ट रूप से विकसित हो चुकी थी।वैदिक काल में राजव्यवस्था और कर प्रणाली एक सुव्यवस्थित और संतुलित ढांचे पर आधारित थी। राजा का मुख्य कर्तव्य प्रजा की रक्षा और राज्य की उन्नति था, जिसके लिए कर का संग्रह आवश्यक था। यह प्रणाली न केवल सामाजिक स्थिरता प्रदान करती थी, बल्कि आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक एकता को भी बढ़ावा देती थी।

4.7.1 राजा की आर्थिक भूमिका

1. **राजा का समृद्धि और सुरक्षा से संबंध:** वैदिक काल में राजा का मुख्य कार्य समाज की सुरक्षा, शांति और समृद्धि बनाए रखना था। राजा न केवल राजनीतिक और सैन्य नेता थे, बल्कि वह आर्थिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। उनके कार्य समाज की समृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित और प्रोत्साहित करने से जुड़े थे।

(1) **भूमि और कृषि:** राजा की अर्थव्यवस्था में भूमि की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

- **भूमि का अधिग्रहण और प्रबंधन:**राजा अपनी भूमि का नियंत्रण रखते थे और उसे कृषकों को खेती करने के लिए देते थे। इस प्रकार भूमि के वितरण में राजा का महत्वपूर्ण योगदान था।
- **कृषि और उत्पादन की देखरेख:**राजा ने यह सुनिश्चित किया कि कृषि भूमि उपजाऊ रहे और कृषि कार्यों के लिए उपयुक्त जल, बीज और संसाधन उपलब्ध हों।
- **राजस्व और कर:**राजा द्वारा कृषकों से प्राप्त करों का एक प्रमुख स्रोत भूमि कर था। इस कर का उपयोग राज्य की रक्षा, प्रशासन और विभिन्न सामाजिक कार्यों के लिए किया जाता था।कृषि उत्पादों पर कर (जैसे अनाज का हिस्सा), पशुपालन से प्राप्त उत्पादों पर कर और अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर कर के रूप में आर्थिक समृद्धि अर्जित की जाती थी।

(2) **व्यापार और वाणिज्य:** राजा ने व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए कई कदम उठाए।

- **वाणिज्यिक मार्गों की सुरक्षा:** राजा ने व्यापारियों और व्यापार मार्गों की सुरक्षा सुनिश्चित की, ताकि व्यापारिक गतिविधियाँ निर्बाध रूप से चल सकें।
- **विदेशी व्यापार:** राजा विदेशों से व्यापार करने के लिए भी अपने व्यापारिक नेटवर्क को विकसित करता था। इसे प्रोत्साहित करने के लिए बाहरी व्यापारियों को राज्य में सुरक्षित रहने की अनुमति दी जाती थी।

- **आधिकारिक कर संग्रह:** व्यापारियों से व्यापार कर (राजस्व) और उत्पादों पर कर लिया जाता था। ऋग्वेदमें विभिन्न प्रकार के व्यापारिक करों का उल्लेख है, जैसेसिंधु (सिंधु नदी) के रास्ते से व्यापारी माल लेकर आते थे और राजा उन्हें कर देते थे।

(3) सैनिक और सुरक्षा व्यवस्था: राजा का कार्य सुरक्षा प्रदान करना था, और इसके लिए सैन्य खर्चों का प्रबंधन भी उनकी जिम्मेदारी थी।

- **सैन्य खर्च और रक्षा:** राजा अपनी सेना को बनाए रखने और युद्ध के लिए धन जुटाने के लिए करों का संग्रह करते थे।
- **राज्य की सुरक्षा:** राजा के पास राज्य की रक्षा के लिए सेना थी, जो न केवल आंतरिक सुरक्षा बल्कि बाहरी आक्रमणों से रक्षा भी करती थी।
- **प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग:** सेना की आपूर्ति के लिए संसाधनों का संग्रहण और वितरण भी राजा की जिम्मेदारी थी।

(4) धार्मिक कार्य और यज्ञों का आयोजन: राजा धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञों का आयोजन भी करता था, जो समाज में शांति और समृद्धि लाने के लिए किए जाते थे।

- **धार्मिक अनुष्ठान और यज्ञ:** राजा यज्ञों में हिस्सा लेते थे और प्रजा के कल्याण के लिए यज्ञों का आयोजन करते थे।
- **धन का उपयोग:** यज्ञों और धार्मिक कार्यों के लिए राजा धन जुटाते थे, जो समाज में एकता और सुरक्षा की भावना को बढ़ाते थेइन यज्ञों के आयोजन के लिए धन की आवश्यकता होती थी, जिसे राजा करों और दानों से प्राप्त करते थे।

(5) राज्य की आर्थिक प्रबंधन: राजा राज्य की समृद्धि और संसाधनों के न्यायसंगत वितरण के लिए भी जिम्मेदार था।

- **धन की संग्रहण और वितरण:** राजा विभिन्न प्रकार के करों (जैसे भूमि कर, पशुपालन कर, व्यापार कर) के माध्यम से धन एकत्र करते थे और इसे राज्य के विकास, सेना, प्रशासन, और सामाजिक कार्यों में व्यय करते थे।
- **व्यापार और उद्योग की प्रोत्साहना:** राजा ने व्यापार और उद्योग को बढ़ावा देने के लिए राज्य में शांति और कानून व्यवस्था बनाए रखी।
- **कृषि और अन्य संसाधनों का प्रबंधन:** राजा ने कृषि, जल आपूर्ति, पशुपालन, और जंगलों जैसे प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन किया।

राजा की आर्थिक भूमिका वैदिक समाज में अत्यंत महत्वपूर्ण थी। उन्होंने भूमि, कृषि, व्यापार, सुरक्षा, धार्मिक कार्य, और राज्य के संसाधनों के प्रबंधन में सक्रिय भागीदारी निभाई। राजा का मुख्य उद्देश्य राज्य की समृद्धि और समाज के विकास को सुनिश्चित करना था। उनका कार्य केवल राजनीतिक और सैन्य क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि आर्थिक गतिविधियों में भी गहरा प्रभाव डालता था।

4.7.2 कर व्यवस्था (बलि, भाग, दक्षिणा आदि)

वैदिक काल की कर व्यवस्था (Tax System in Vedic Period): वैदिक काल में करों का संग्रह एक आवश्यक प्रक्रिया थी, जो राज्य की वित्तीय स्थिरता और सामाजिक विकास के लिए महत्वपूर्ण थी। इन करों का उद्देश्य राजा को अपनी सैन्य और प्रशासनिक आवश्यकताओं को

पूरा करने के लिए धन जुटाना था, साथ ही राज्य के विकास और सार्वजनिक कार्यों के लिए भी संसाधन उपलब्ध कराना था। विभिन्न प्रकार के करों का उल्लेख वेदों और अन्य वैदिक ग्रंथों में मिलता है, जैसेबलि, भाग, दक्षिणाऔर अन्य।

1. **बलि (Bali):** बलि एक प्रकार का कर था, जो प्रजा से प्राप्त किया जाता था। यह मुख्यतः**कृषि उत्पादों** के रूप में लिया जाता था।
   - **संग्रह:**बलि का मुख्य उद्देश्य राजा को भूमि और कृषि उत्पादों पर कर प्रदान करना था। यह एक प्रकार का"राजस्व कर"था, जिसे प्रजा अपनी भूमि से उपजे उत्पादों में से हिस्सा देता था।बलि के रूप में अनाज, पशु, या अन्य वस्तुएं दी जाती थीं।
   - **राज्य की उपयोगिता:** बलि से प्राप्त धन का उपयोगसैन्य, धार्मिक अनुष्ठानों, औरराजकीय कामोंके लिए किया जाता था।इसे "प्राकृतिक कर" भी माना जाता था, क्योंकि यह कृषि, पशुपालन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों से लिया जाता था।
2. **भाग (Bhaga):** भाग भी एक प्रकार का कर था, जो विशेष रूप सेकृषि उत्पादोंपर लिया जाता था। यह आमतौर पर भूमि की उपज से एक निश्चितहिस्साहोता था।
   - **संग्रह:** भाग कोकृषकअपनी उपज का एक हिस्सा राजा को प्रदान करते थे। इसे वे राज्य के प्रशासन या सैन्य खर्च के लिए देते थे।भाग का निर्धारण सामान्यतः कृषि उत्पादन के आधार पर किया जाता था।
   - **राज्य का लाभ:** यह कर राज्य को आर्थिक रूप से सक्षम बनाता था, जिससे वह अपने संसाधनों का सही तरीके से प्रबंधन कर सके।साथ ही यह कृषि समुदाय के लिए भी सुनिश्चित करता था कि वे अपनी उपज का एक हिस्सा राज्य को देंगे, लेकिन उनके पास अपनी आवश्यकताओं के लिए भी पर्याप्त संसाधन होंगे।
3. **दक्षिणा (Daksina):** दक्षिणा एक प्रकार कादानथा, जो राजा या ब्राह्मणों को विशेष धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञों में दिया जाता था। यह केवल कर नहीं था, बल्कि यह समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का हिस्सा था।
   - **संग्रह:** दक्षिणा का संग्रहयज्ञों, धार्मिक अनुष्ठानों, औरब्राह्मणोंके लिए किया जाता था।इसे राजा और ब्राह्मणों द्वारा विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञों के दौरान लिया जाता था। दक्षिणा अक्सरस्वर्ण, आभूषण, धनयाअनाजके रूप में दी जाती थी।
   - **धार्मिक महत्व:** दक्षिणा को एकधार्मिक दानमाना जाता था, और यह समाज में धार्मिक आयोजनों को प्रोत्साहित करने के लिए था। दक्षिणा देने से व्यक्ति कोपुण्यमिलता था, और इसे समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में योगदान माना जाता था।
4. **अन्य कर और राजस्व (Other Taxes and Revenues):**

(1) **गोकर (Go Tax):** गोयानीपशु, विशेष रूप से बैल, गाय, और घोड़े।राज्य को पशुपालन पर भी कर लगता था, और यह प्राचीन समय में विशेष रूप से कृषकों से लिया जाता था जो पशुपालन करते थे।

(2) **धनकर (Wealth Tax):** धन कर, जिसे व्यक्तिगत संपत्ति पर लिया जाता था, का उल्लेख प्राचीन लेखों में मिलता है।यह मुख्य रूप से व्यापारियों, कृषि उत्पादकों और अन्य संपत्ति धारकों से लिया जाता था।

(3) **स्थलकर (Land Tax):** भूमि पर कर एक सामान्य कर था, जो कृषकों और अन्य भूमि धारकों से लिया जाता था।यह एक प्रकार का भूमि राजस्व था, जो किसानों द्वारा अपनी कृषि भूमि से उपज प्राप्त करने पर लिया जाता था।

5. करों का समाज पर प्रभाव (Impact of Taxes on Society):

(1) **समाज की आर्थिक संरचना:**करों के संग्रह ने राज्य को समृद्ध और शक्तिशाली बनाया।बलि, भाग, औरदक्षिणाजैसे करों ने सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संरचना को संतुलित रखा।

(2) **कृषि और व्यापार पर प्रभाव:**कृषि उत्पादों पर करों का प्रभाव भूमि उत्पादकता को बढ़ावा देने के साथ-साथ राज्य की आर्थिक स्थिति को भी मजबूत करता था।व्यापारियों से लिया गया कर राज्य की वाणिज्यिक गतिविधियों को स्थिर बनाता था और बाहरी व्यापार को प्रोत्साहित करता था।

(3) **सामाजिक संरचना और धार्मिक कर्तव्य:**करों का संग्रह धार्मिक आयोजनों के साथ जुड़ा था, जैसे यज्ञ और अनुष्ठान। यह समाज के धार्मिक कर्तव्यों को निभाने के लिए भी एक तरीका था।

वैदिक काल में करों का संग्रह मुख्यतःकृषिऔरधार्मिक कार्योंसे जुड़ा था।बलि, भाग, औरदक्षिणाजैसे कर राज्य की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए थे।करों का संग्रह ना केवल राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करता था, बल्कि समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित करता था।करों की यह व्यवस्था वैदिक समाज की समृद्धि और उसकी संरचना को बनाए रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थी।

4.8 वैदिक साहित्य में आर्थिक नैतिकता

वैदिक साहित्य (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद) न केवल धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, बल्कि उसमें आर्थिक गतिविधियों को भी नैतिकता और धर्म के साथ जोड़ा गया है। वैदिक काल में आर्थिक समृद्धि को केवल भौतिक संपत्ति तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि इसका आधारसामाजिक न्याय, सामूहिक हित, और नैतिक मूल्योंपर आधारित था।वैदिक काल में आर्थिक समृद्धि का उद्देश्य केवल भौतिक उन्नति नहीं था, बल्कि सामाजिक और नैतिक मूल्यों के साथ आर्थिक गतिविधियों का संचालन करना था। दान, न्याय, पारदर्शिता, और सामूहिक कल्याण पर आधारित आर्थिक चिंतन इस काल की विशेषता थी।

4.8.1 अर्थ और धर्म का सम्बन्ध

वैदिक काल मेंअर्थऔरधर्मको अलग-अलग अवधारणाओं के रूप में नहीं देखा गया था, बल्कि ये दोनों एक दूसरे के पूरक थे। अर्थ (अर्थव्यवस्था) और धर्म (धार्मिक कर्तव्य) का आपस में गहरा संबंध था, और दोनों का समाज में विकास और स्थिरता के लिए अहम योगदान था।

1. **अर्थ (Artha) का वैदिक दृष्टिकोण:** अर्थ का अर्थ केवलधन, संपत्तियाभौतिक संसाधननहीं था, बल्कि यहसंसारिक सुख-संप्राप्ति, जीवन के उद्देश्य की पूर्ति, औरव्यावसायिक सफलतासे जुड़ा हुआ था। वैदिक दृष्टिकोण मेंअर्थको एक महत्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता था, जो जीवन के चार प्रमुख लक्ष्यों में से एक था (चार पुरुषार्थ)। इन चार पुरुषार्थों मेंधर्म, अर्थ, काम, औरमोक्षशामिल हैं।
   - **अर्थ का महत्व:सामाजिक स्थिति:** अर्थ समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन था। एक व्यक्ति काधन और संसाधन उसकी सामाजिक स्थिति का निर्धारण करता था।कृषि, व्यापार और उद्योग: अर्थ की प्राप्ति मुख्यतःकृषि, पशुपालन, वाणिज्य, और उधारी जैसी गतिविधियों से होती थी। ये सब आर्थिक गतिविधियाँ वैदिक समाज के स्थायित्व के लिए आवश्यक मानी जाती थीं। राज्य के लिए:राजा के लिए भी अर्थ का महत्व था, क्योंकि यह राज्य कीसुरक्षा, सैन्य, औरधार्मिक आयोजनोंके लिए आवश्यक था। राजा अपनी संपत्ति का उपयोग राज्य की सुरक्षा और कल्याण के लिए करता था।
2. **धर्म (Dharma) का वैदिक दृष्टिकोण:** धर्मका अर्थ केवल धार्मिक कृत्य या पूजा-पाठ नहीं था, बल्कि यह जीवन के सभी पहलुओं से जुड़ा हुआ था। यह नैतिकता, कर्तव्य, और सदाचार का प्रतिनिधित्व करता था। वैदिक समाज में धर्म का मुख्य उद्देश्यव्यक्तिगतऔरसामाजिक जिम्मेदारियोंको निभाना था, ताकि जीवन में संतुलन, शांति, औरसमाज में सहयोग बना रहे।
   - **धर्म का महत्व: व्यक्तिगत कर्तव्य:** प्रत्येक व्यक्ति को अपनेधार्मिक कर्तव्योंका पालन करना था। इसका अर्थ था कि व्यक्ति को अपनी स्थिति और कर्तव्यों के अनुसार आचरण करना चाहिए, जैसे किब्राह्मणको अध्ययन और उपदेश देना, क्षत्रियको राज्य और युद्ध की जिम्मेदारी निभाना, वैश्य को व्यापार करना औरशूद्रको सेवा कार्य करना। सामाजिक कर्तव्य: धर्म ने सामाजिक जिम्मेदारियों को भी महत्वपूर्ण माना। समाज में संतुलन बनाए रखने के लिए व्यक्ति को दूसरों के अधिकारों का सम्मान करना और गलत कार्यों से बचना था।ईश्वर के प्रति आस्था: धर्म का एक प्रमुख पहलू थाईश्वर के प्रति आस्थाऔरधार्मिक अनुष्ठान। यज्ञ और पूजा द्वारा व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलता था।
3. **अर्थ और धर्म का संबंध:**

(1) **अर्थ और धर्म के बीच संतुलन:**वैदिक समाज मेंअर्थ और धर्म का संबंध एक संतुलन पर आधारित था। दोनों को समान महत्व दिया गया था, क्योंकि बिना अर्थ के जीवन की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकती थीं और बिना धर्म के जीवन की नैतिकता और उद्देश्य नहीं रह सकते थे।
   - **धर्म का समर्थन:** धर्म ने अर्थ की प्राप्ति के तरीकों को सत्कर्म और नैतिकता के साथ जोड़ा। यानी, व्यक्ति को धन अर्जित करने के लिए ईमानदारी, न्याय और सदाचार का पालन करना चाहिए। यह भी माना जाता था कि व्यक्ति अगर धर्म के अनुसार कार्य करता है, तो उसे जीवन में समृद्धि और खुशहाली मिलती है।

- **अर्थ की सीमाएँ:**अर्थ (धन और संपत्ति) को केवल वैकल्पिक साधन माना जाता था। इसका उद्देश्य केवल भौतिक सुख-संसाधनों की प्राप्ति नहीं था, बल्कि इसका सबसे बड़ा उद्देश्य था समाज और राज्य के कल्याण के लिए उसका उपयोग करना। इसके बिना धर्म अधूरा होता, और यदि अर्थ की प्राप्ति अव्यक्तिक या अन्यथा होती, तो वह धर्म के खिलाफ माना जाता।

(2) **धर्म के माध्यम से अर्थ का प्रबंधन:**धर्म ने अर्थ को सही दिशा देने के लिए मार्गदर्शन किया। उदाहरण के तौर पर:

- **सत्कर्म (Right Livelihood):** धर्म ने अर्थ अर्जित करने के तरीकों को शुद्ध और नैतिक रूप से स्वीकार किया। उदाहरण के लिए, व्यापार, कृषि, औरउधारीको धर्म के अनुसार संचालित करना चाहिए था। ये सभी कार्य व्यक्ति को समाज में सम्मान दिलाने के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक प्रगति में भी सहायक थे।
- **धन का सदुपयोग (Right Use of Wealth):** धन अर्जित करने के बाद, धर्म ने यह सुनिश्चित किया धन का उपयोग सामाजिक कल्याण और धार्मिक कृत्य में किया जाए। उदाहरण के लिए, यज्ञों और दान में धन का उपयोग करने से व्यक्ति को पुण्य मिलता था और वह धर्म की दिशा में अग्रसर होता था।

(3) **धर्म और अर्थ की आपसी परिपूरकता:** धर्म और अर्थ की आपसी परिपूरकता यह सुनिश्चित करती थी कि एक व्यक्ति अपने जीवन में दोनों को संतुलित रूप से प्राप्त करे।

- **समाज में संतुलन:** धर्म ने सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना की, जब कि अर्थ ने समाज में संपत्ति और समृद्धि का वितरण किया। दोनों का उद्देश्य था समाज में शांति और सुख का विस्तार करना।
- **सामाजिक उत्तरदायित्व:** धर्म ने यह भी सुनिश्चित किया कि जो लोग अर्थ की प्राप्ति में सफल होते थे, वे उसे समाज के भले के लिए खर्च करें। यह समाज में सामूहिक कल्याण और विकास के लिए था।

वैदिक काल में अर्थ और धर्म का संबंध बहुत गहरा और परस्पर निर्भर था। अर्थ का मुख्य उद्देश्य भौतिक संसाधनों की प्राप्ति था, जब कि धर्म ने उन संसाधनों को नैतिक तरीके से अर्जित करने और उनका सही तरीके से उपयोग करने का मार्गदर्शन किया। दोनों की यह परस्पर पूरकता एक संतुलित और समृद्ध जीवन की दिशा में मार्गदर्शन करती थी। अर्थ और धर्म के सही संतुलन से व्यक्ति न केवल अपनी व्यक्तिगत सुख-साधन की प्राप्ति करता था, बल्कि वह समाज और राज्य के समग्र कल्याण के लिए भी कार्य करता था।

4.8.2 वैदिक अर्थनीति में नैतिक मूल्यों का स्थान

वैदिक अर्थनीति मेंनैतिकताऔरसदाचारका अत्यधिक महत्व था, क्योंकि यह समाज की समृद्धि और संतुलन को बनाए रखने का मुख्य आधार था। वैदिक काल में अर्थ और धर्म के बीच का संबंध काफी गहरा था, और अर्थ की प्राप्ति केवल भौतिक लाभ तक सीमित नहीं थी। बल्कि, अर्थ की प्राप्ति के लिए उचित नैतिक व्यवहार और धार्मिक कर्तव्यों का पालन अनिवार्य था।

1. **नैतिकता और अर्थ की प्राप्ति का संबंध (The Relationship Between Morality and Economic Gains):** वैदिक काल में अर्थ को प्राप्त करने के लिए नैतिकता का पालन आवश्यक माना जाता था। जो व्यक्ति या समूह अर्थ अर्जित करने के लिए धर्म और नैतिकता के सिद्धांतों का उल्लंघन करता, उसे समाज में निंदा का सामना करना पड़ता था। वैदिक समाज में यह सिद्धांत था कि धन की प्राप्ति **सदाचार** और **न्याय** के रास्ते से ही होनी चाहिए।नैतिक मूल्योंका अर्थ के साथ संबंध इस प्रकार था:
   - **ईमानदारी और सत्यनिष्ठा:** व्यापार, कृषि, और अन्य व्यवसायों में ईमानदारी और सत्यनिष्ठा का पालन करना आवश्यक था। किसी भी प्रकार का धोखाधड़ी या अनैतिक कार्य समाज के लिए हानिकारक समझा जाता था। उदाहरण के लिए, व्यापारियों को सत्य बोलने और समानता से व्यवहार करने की आवश्यकता होती थी।
   - **धार्मिक दायित्व और नैतिकता: धार्मिक कर्तव्यों** का पालन करते हुए धन अर्जित किया जाना चाहिए था। यही कारण था कियज्ञ, दान, और पुण्य कार्यों के लिए धन का उपयोग करना एक महत्वपूर्ण नैतिक मूल्य था।
   - **व्यावसायिक नैतिकता:** एक व्यक्ति को व्यवसाय करने के दौरान यह सुनिश्चित करना था कि उसकी गतिविधियाँ समाज के हित में हो और किसी भी प्रकार काशोषणन हो।
2. **नैतिकता और सामाजिक न्याय (Morality and Social Justice) :** वैदिक अर्थनीति में नैतिक मूल्यों का मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना करना था। यह सुनिश्चित करना था कि आर्थिक संसाधन सिर्फ एक विशेष वर्ग तक सीमित न रहें, बल्कि समाज के हर वर्ग को न्यायपूर्ण तरीके से अवसर मिले।
   - **वर्ण व्यवस्था का धर्मिक दृष्टिकोण:**वैदिक समाज में वर्ण व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक वर्ग का एक निश्चित धार्मिक कर्तव्य था। इन कर्तव्यों को निभाने से समाज में सामाजिक संतुलन और न्याय बना रहता था। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणों का कर्तव्य था कि वे धर्म का प्रचार करें, क्षत्रिय अपने राज्य की रक्षा करें, और वैश्य व्यापार और कृषि के माध्यम से समाज की आर्थिक स्थिति को मजबूत करें।
   - **आर्थिक संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण:** नैतिकता का पालन करते हुए अर्थ का वितरण समाज में संतुलन बनाए रखने के लिए किया जाता था। संपत्ति का संग्रह और वितरण नैतिकता के अनुसार किया जाता था, ताकि कोई वर्ग अत्यधिक संपन्न न हो और न ही कोई वर्ग अत्यधिक दरिद्रता का शिकार हो।
3. **नैतिक मूल्यों के साथ व्यापार और कृषि (Business and Agriculture with Moral Values):** व्यापार और कृषि, जो वैदिक अर्थव्यवस्था के दो प्रमुख स्तंभ थे, नैतिकता और सदाचार के आधार पर संचालित होते थे।
   - **कृषि:** कृषक को अपनी भूमि से उपज लेने के दौरान यह सुनिश्चित करना होता था कि वह प्राकृतिक संसाधनों का सतत और सतर्क उपयोग करें। धर्म के अनुसार, कृषक का कर्तव्य था कि वह अपनी भूमि से उपज अर्जित करे, लेकिन वह अपनी भूमि और पर्यावरण का

केंद्र करें और उसे नुकसान न पहुँचाए। भूमि की उपज पर कर (जैसे बलि और भाग) सही तरीके से लगाया जाता था, जिससे संपत्ति का न्यायपूर्ण वितरण होता था।

- **व्यापार:** व्यापारियों को समानता, ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से व्यापार करना होता था। किसी भी प्रकार के धोखाधड़ी, जालसाजी या दाम बढ़ाने जैसे अ नैतिक कार्यों से बचना आवश्यक था। व्यापारी को यह सुनिश्चित करना था कि उनका व्यापारसमाज की भलाई के लिए हो और किसी भी प्रकार का शोषण न हो।

4. **दान और पुण्य के कार्य (Charity and Pious Works)**: वेदों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है किधन अर्जित करना अच्छा है, लेकिन उसे सामाजिक भलाई के लिए खर्च करना और दान करना अधिक महत्वपूर्ण है। दान और पुण्य के कार्यों को नैतिकता से जोड़ा गया था, और यह माना जाता था कि इस तरह से अर्जित पुण्य व्यक्ति को आध्यात्मिक प्रगति और धन के साथ साथ समाज में उच्च स्थानप्राप्त करने में मदद करता है।

- **दान का महत्व:** दान के माध्यम से व्यक्ति न केवल सामाजिक भलाई करता था, बल्कि उसे पुण्य भी प्राप्त होता था, जो उसके जीवन के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक था। इसे धर्म का एक हिस्सा माना जाता था, और इसको व्यक्ति के सामाजिक कर्तव्य और आध्यात्मिक विकास के रूप में देखा जाता था।

वैदिक अर्थनीति में नैतिकता का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण था। अर्थ की प्राप्ति केवल भौतिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि धार्मिक कर्तव्यों, नैतिक आचरण, और सामाजिक जिम्मेदारियों के माध्यम से की जाती थी। व्यापार, कृषि, और सामाजिक सेवा जैसे आर्थिक कार्यों को भी सदाचार और न्याय के सिद्धांतों पर आधारित किया जाता था। धन और संपत्ति का उपयोग समाज की भलाई और धार्मिक कार्यों के लिए किया जाता था, और यह सुनिश्चित किया जाता था कि किसी भी प्रकार की अन्याय पूर्ण या नैतिक रूप से गलत अर्थ की अर्जन और खर्च से बचा जाए। इस प्रकार, वैदिक अर्थनीति का उद्देश्य केवल भौतिक संपत्ति की प्राप्ति नहीं, बल्कि एक धार्मिक, नैतिक और सामाजिक संतुलन बनाए रखना था।

4.9 आधुनिक संदर्भ में वैदिक अर्थव्यवस्था

वैदिक अर्थव्यवस्था, जो लगभग 1500 ई.पू. से 600 ई.पू. के बीच भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित थी, आज भी अपने मूल सिद्धांतों के कारण आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिक है। भले ही आज की अर्थव्यवस्था वैश्वीकरण, डिजिटल लेन-देन और तकनीकी प्रगति पर आधारित है, फिर भी वैदिक अर्थव्यवस्था के कई सिद्धांत आज की चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करते हैं।वैदिक अर्थव्यवस्था का सिद्धांत प्राकृतिक संतुलन, सामुदायिक सहयोग, आत्मनिर्भरता, और नैतिक व्यापार पर आधारित था। आज की चुनौतियों जैसे पर्यावरण संकट, आर्थिक असमानता, और वैश्वीकरण का समाधान वैदिक मूल्यों से प्रेरणा लेकर किया जा सकता है।

4.9.1 वैदिक आर्थिक सिद्धांतों की प्रासंगिकता

वैदिक काल में स्थापित आर्थिक सिद्धांतन केवल उस समय के लिए महत्वपूर्ण थे, बल्कि इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता आज भी समाज, अर्थव्यवस्था और जीवन के विभिन्न पहलुओं में देखी जा सकती है। वैदिक अर्थनीति का आधार नैतिकता, धर्म और सामाजिक न्याय था, जो किसी

भी समाज के विकास के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता आधुनिक युग में भी बनी हुई है, खासकर जब हम समाज में आर्थिक असमानता, प्राकृतिक संसाधनों के शोषण, और नैतिक विघटन से जूझ रहे होते हैं।

1. **नैतिकता और संतुलित संपत्ति वितरण (Morality and Balanced Distribution of Wealth):** वैदिक अर्थव्यवस्था में नैतिकता और धर्म का पालन करना आवश्यक था। यह सिद्धांत आज भी व्यापार और आर्थिक नीति में प्रासंगिक हैं।
   - **समानता और समृद्धि:** वैदिक अर्थनीति में यह सुनिश्चित किया जाता था कि संपत्ति का वितरण न्यायपूर्ण तरीके से हो। यही सिद्धांत आज भी आर्थिक असमानता को दूर करने में मदद कर सकता है। आधुनिक समाज में जहां अमीर और गरीब के बीच अंतर बढ़ रहा है, वैदिक सिद्धांत धन का समान वितरण और समाज के कमजोर वर्गों की सहायता का महत्व बताते हैं।
   - **सामाजिक जिम्मेदारी:** व्यापारियों और उद्योगपतियों को केवल लाभ के लिए नहीं, बल्कि समाज की भलाई के लिए कार्य करने की प्रेरणा दी जाती थी। आज के निगमित सामाजिक जिम्मेदारी (CSR) के सिद्धांत में वैदिक मूल्य पूरी तरह से समाहित हैं।
2. **प्रकृति और संसाधनों का स्थिर उपयोग (Sustainable Use of Nature and Resources):** वैदिक समाज में प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संतुलित और स्थिर तरीके से किया जाता था। इसका उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का शोषण नहीं बल्कि उनका सतत उपयोग था। यह सिद्धांत आधुनिक पर्यावरणीय संकट से निपटने के लिए प्रासंगिक है।
   - **संसाधनों का संरक्षण:** वैदिक समाज में यह विश्वास था कि प्राकृतिक संसाधन हमारे साथ हैं, लेकिन हमें उनकासमान रूप से और सही तरीके से उपयोगकरना चाहिए। यही सिद्धांत आज के पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है।
   - **पुनर्चक्रण और हरित प्रौद्योगिकियाँ:** वैदिक सिद्धांत प्राकृतिक संसाधनों का पुनः उपयोग और संरक्षण पर बल देते थे, जो आज के सतत विकास और हरित प्रौद्योगिकियों के सिद्धांतों से मेल खाते हैं।
3. **सामूहिक सहयोग और समृद्धि (Collective Cooperation and Prosperity):** वैदिक अर्थनीति में समाज के प्रत्येक वर्ग को एक दूसरे के साथ सहयोग करने की प्रेरणा दी जाती थी, जिससे सामूहिक समृद्धि और सामाजिक समरसता बनी रहती थी। यह सिद्धांत आज भी समाजवाद, सामाजिक न्याय और सामूहिक विकास के सिद्धांतों में प्रासंगिक है।
   - **सामाजिक सुरक्षा और सहयोग:** वैदिक काल में यह माना जाता था कि समाज के सभी वर्गों का भला एक साथ मिलकर ही हो सकता है। आज के सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम और सामूहिक कल्याण योजनाओं में इस सिद्धांत का पालन किया जा सकता है।
   - **सामूहिक दायित्व:** समाज के सभी वर्गों को अपनी भूमिका निभानी होती थी। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणधर्म और शिक्षा का प्रसार करते थे, क्षत्रिय राज्य की रक्षा करते थे, और वैश्य व्यापार और कृषि के माध्यम से समाज को आर्थिक रूप से सशक्त बनाते थे। यह सिद्धांत

आज भीसमान अवसर और सामूहिक जिम्मेदारी की नींव पर आधारित योजनाओं में देखा जा सकता है।

4. **कृषि और पर्यावरणीय स्थिरता (Agriculture and Environmental Sustainability):** वैदिक काल में कृषि को बहुत महत्व दिया गया था, और इसे प्राकृतिक संसाधनों का आदान-प्रदान और सतत प्रबंधन के सिद्धांत पर आधारित माना गया था। कृषि को समृद्ध बनाने के लिए यह आवश्यक था कि भूमि, जल, और अन्य संसाधनों का सही तरीके से उपयोग किया जाए।
   - **सतत कृषि:** आज के ऑर्गेनिक कृषि और सतत कृषि विधियों में वैदिक सिद्धांतों की स्पष्ट झलक मिलती है, जो प्राकृतिक संसाधनों को बिना नुकसान पहुँचाए उत्पादन बढ़ाने की दिशा में काम करते हैं।
5. **ऋण और आर्थिक सहयोग (Debt and Economic Cooperation):** वैदिक समाज में ऋण को समाज की आर्थिक गतिविधियों का एक हिस्सा माना जाता था, जिसका उद्देश्य सहायता और सामूहिक समृद्धि था। ऋण के संबंध में यह सिद्धांत था कि ऋण का भुगतान और सामाजिक जिम्मेदारी दोनों का ध्यान रखा जाए।
   - **सामाजिक ऋण:**आज के माइक्रोफाइनेंस और सामूहिक ऋण योजनाओं में यह सिद्धांत प्रासंगिक है। जहां कमज़ोर वर्ग को ऋण देकर उन्हें आर्थिक सशक्तिकरण दिया जाता है। यह उन लोगों के लिए होता है जो पारंपरिक बैंकों से ऋण प्राप्त करने में सक्षम नहीं होते।
6. **दान और पुण्य के कार्य (Charity and Acts of Piety):** वैदिक काल में दान और पुण्य को बहुत महत्व दिया जाता था, और यह सिर्फ आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक भलाई के लिए भी किया जाता था। दान को समाज में धन का पुनर्वितरण और आर्थिक असमानता को कम करने के उपाय के रूप में देखा जाता था।
   - **सामाजिक जिम्मेदारी:** आज के चैरिटी और दान के कार्यक्रमों में भी वैदिक सिद्धांतों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। विशेष रूप से निगमित सामाजिक जिम्मेदारी (CSR) और कल्याण कार्यक्रमों में इन सिद्धांतों का पालन किया जा सकता है, ता कि गरीब और असहाय वर्गों की मदद की जा सके।

वैदिक आर्थिक सिद्धांतों की प्रासंगिकता आज भी बहुत महत्वपूर्ण है। नैतिकता, सामाजिक न्याय, धार्मिक कर्तव्य, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सामूहिक सहयोग के सिद्धांत आज भी आधुनिक समाज और आर्थिक व्यवस्थाओं में लागू किए जा सकते हैं। इन सिद्धांतों की ओर लौटना हमारे समाज को धार्मिक, नैतिक और आर्थिक रूप से स्थिर बनाने में मदद कर सकता है।

4.9.2 आधुनिक आर्थिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन

वैदिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों की आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता इस बात से स्पष्ट होती है कि वे आज के समाज और अर्थव्यवस्था में नैतिक, धार्मिक, सामाजिक और पर्यावरणीय पहलुओं के साथ सामंजस्य पूर्ण संतुलन बनाने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। आधुनिक युग में जब उपभोक्तावाद, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण, और आर्थिक असमानताएँ बढ़

रही हैं, तो वैदिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांत हमें इन समस्याओं से निपटने के लिए मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।वेदिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों को यदि हम आधुनिक संदर्भ में लागू करें तो यहसतत विकास, समाज की समृद्धि, नैतिक व्यापारिक प्रथाएँ, औरसामाजिक समानताकी ओर अग्रसर कर सकते हैं।

1. **नैतिक और सतत आर्थिक विकास (Moral and Sustainable Economic Development):** वैदिक काल मेंआर्थिक गतिविधियाँ नैतिक मूल्यों के आधार पर संचालित होती थीं। आज के संदर्भ में सतत विकास (Sustainable Development) और पर्यावरणीय जिम्मेदारी को वैदिक सिद्धांतों के साथ जोड़ा जा सकता है। वैदिक समाज ने प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग और उनका संरक्षण किया, जो आज कीआधुनिक पर्यावरणीय नीतियों और इको-फ्रेंडली प्रौद्योगिकियों से मेल खाता है।
   - **सतत कृषि:** वैदिक सिद्धांतों के अनुसार, कृषिकेवल उत्पादन का साधन नहीं थी, बल्कि यह एक सामाजिक दायित्व और प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग था। इस सिद्धांत को आधुनिक जैविक कृषि (Organic Farming) और स्मार्ट कृषि प्रौद्योगिकियों में लागू किया जा सकता है।
   - **प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण:** वैदिक समाज ने जल और भूमि के संरक्षण की महत्ता समझी थी। आज के समय में जब जल संकट और प्राकृतिक संसाधनों का शोषण बढ़ रहा है, वैदिक सिद्धांतों के प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग को अपनाया जा सकता है।
2. **समाज की समृद्धि और समानता (Social Prosperity and Equality):** वैदिक अर्थव्यवस्था में समाज के सभी वर्गों का भला करना प्राथमिक था। यह सिद्धांत आधुनिक समाजवाद और सामाजिक सुरक्षा के सिद्धांतों से मेल खाता है, जिनमें समान अवसर और सामूहिक समृद्धि को बढ़ावा दिया जाता है।
   - **आर्थिक समानता:** वैदिक समाज में यह सुनिश्चित किया जाता था किधनका वितरण न्यायपूर्ण तरीके से हो। आज के समय में जब आर्थिक असमानताएँ बढ़ रही हैं, वैदिक सिद्धांत धन का समान वितरण और सामाजिक न्याय की आवश्यकता को उजागर करते हैं।
   - **सामूहिक सहयोग:** वैदिक काल में सामूहिकता और समाज के कमजोर वर्गों की मदद करने की भावना थी। यह सिद्धांत आज के सामाजिक कल्याण योजनाओं, माइक्रोफाइनेंस और समाज सेवाकी परियोजनाओं में लागू हो सकता है।
3. **व्यापार और नैतिक व्यापारिक प्रथाएँ (Business and Ethical Business Practices):** वैदिक काल में व्यापार को केवललाभ कमाने का माध्यम नहीं माना जाता था, बल्कि इसे नैतिक रूप से सही और समाज के लिए लाभकारी समझा जाता था। इस दृष्टिकोण को आज के नैतिक व्यापार, समाजोपयोगी व्यापार, और कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी (CSR) में लागू किया जा सकता है।

- **नैतिक व्यापार:** वैदिक काल में व्यापारियों से अपेक्षाएँ थीं कि वेसमानता, इंसाफ और नैतिक सिद्धांतों का पालन करें। आज के सामाजिक दायित्व (CSR) के सिद्धांत में वैदिक अर्थव्यवस्था का यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जहां पर्यावरणीय, सामाजिक, और आर्थिक जिम्मेदारियों का पालन किया जाता है।
- **वाणिज्य और व्यापार में नैतिकता:** व्यापार में ईमानदारी और नैतिकता को बढ़ावा देने के लिए ईमानदार व्यापार प्रथाएँ और ग्राहक संतुष्टि को महत्व दिया जाता था। यह आधुनिक व्यापार में उपभोक्ता संरक्षण और ईमानदार व्यापारिक सिद्धांतों को बनाए रखने के सिद्धांतों से मेल खाता है।

4. **ऋण और आर्थिक सहयोग (Debt and Economic Cooperation):** वैदिक काल में ऋण एक महत्वपूर्ण आर्थिक उपकरण था, जो केवल व्यापार के लिए नहीं, बल्कि समाज की सहायता के लिए भी प्रयोग होता था। ऋण का उद्देश्य समाज में आर्थिक सहयोग को बढ़ावा देना था।
   - **सामूहिक ऋण योजनाएँ:** माइक्रो फाइनेंस और सामूहिक ऋण (Group Lending) की अवधारणा आज भी वैदिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों से प्रेरित हो सकती है, जहां कमज़ोर वर्गों को सामूहिक ऋण देकर उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त किया जाता है।
   - **व्यक्तिगत और सामाजिक ऋण:** वैदिक काल में ऋण को समाज की सहायता और सामूहिक विकास के रूप में लिया जाता था। इस सिद्धांत को समाज के कमजोर वर्गों के लिए ऋण योजनाएँ और सामाजिक ऋणकी योजनाओं में लागू किया जा सकता है, जिससे आर्थिक असमानता को कम किया जा सके।
5. **दान और पुण्य (Charity and Piety):** वैदिक काल मेंदानको एक महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता था। दान न केवलधार्मिक कार्यथा, बल्किसामाजिक भलाईऔरसामूहिक विकासका एक तरीका था।
   - **आधुनिक चैरिटी और समाज सेवा:** आज के समय में जबआर्थिक असमानताएँ बढ़ रही हैं, वैदिक सिद्धांत दान और पुण्य की अवधारणा को समाज सेवा और वेलफेयर प्रोग्राम्स में लागू किया जा सकता है। कॉर्पोरेट दान, वेलफेयर कार्य और फाउंडेशन्स आज के समय में वैदिक सिद्धांतों का पालन करते हैं, जो समाज में समानता और समृद्धि बढ़ाने में मदद करते हैं।
6. **पारिस्थितिकी तंत्र और मानव-प्रकृति संबंध (Ecosystem and Human-Nature Relationship):** वैदिक समाज में प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक महत्व था, और इन्हें प्राकृतिक संतुलन बनाए रखते हुए प्रयोग किया जाता था। आज के समय में प्राकृतिक संसाधनों का शोषण और पर्यावरणीय संकट एक बड़ी समस्या बन चुकी है।
   - **पर्यावरणीय जागरूकता:** वैदिक सिद्धांतों के अनुसार प्राकृतिक संसाधनों का संवर्धन और सतत उपयोग आज के पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा और जलवायु परिवर्तन की नीतियों में भी महत्वपूर्ण हो सकता है।

आधुनिक संदर्भ में, वैदिक अर्थव्यवस्थाके सिद्धांतों की प्रासंगिकता और व्यावहारिक उपयोग अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन सिद्धांतों में सतत विकास, सामाजिक समानता, नैतिक व्यापार, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, और सामूहिक समृद्धिका जो संदेश था, वह आज के समाज और अर्थव्यवस्था में नैतिक और समाजोपयोगी दृष्टिकोण के रूप में काफी प्रभावी हो सकता है। वैदिक अर्थव्यवस्था न केवल आर्थिक सिद्धांतों का पालन करती थी, बल्कि यह एक समाज के लिए जिम्मेदारी और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति सम्मानकी भावना को प्रकट करती थी, जो आज भी हमारे जीवन में गहरे प्रभाव डाल सकती है।

बोध प्रश्न- ख(Check Your Progress-B)

1. ……द्वाराव्यापार, कृषि, पशुपालन और आर्थिक गतिविधियाँ संपन्न की जाती है।
2. प्रारंभिक वैदिक काल में वर्णों का आधार …… था।
3. वैदिक काल में जीवन को …….. आश्रमों में विभाजित किया गया था, जिसका उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को एक निश्चित अनुशासन और उद्देश्य प्रदान करना था।
4. …… का मुख्य उद्देश्य राजा को भूमि और कृषि उत्पादों पर कर प्रदान करना था।
5. दक्षिणा एक प्रकार का…… था, जो राजा या ब्राह्मणों को विशेष धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञों में दिया जाता था।
6. अर्थ का मुख्य उद्देश्य भौतिक संसाधनों की प्राप्ति था, जबकि…….. ने उन संसाधनों को नैतिक तरीके से अर्जित करने और उनका सही तरीके से उपयोग करने का मार्गदर्शन किया।
7. वैदिक काल मेंआर्थिक गतिविधियाँ……. मूल्यों के आधार पर संचालित होती थीं।

4.10 सारांश

वैदिक काल (1500–500 ईसा पूर्व) भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण चरण था, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचनाओं का विकास हुआ। वैदिक साहित्य (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) में वर्णित आर्थिक गतिविधियाँ उस समय की समृद्धि और समाज की संगठन क्षमता को दर्शाती हैं। कृषि मुख्य आर्थिक गतिविधि थी।जौ, गेहूं, चावल और दालों की खेती होती थी।व्यापार वस्तु विनिमय (Barter System) के माध्यम से होता था।सोना, चांदी, और अनाज का उपयोग विनिमय माध्यम के रूप में किया जाता था।स्थलीय मार्गों के साथ-साथ नदी मार्गों का भी उपयोग व्यापार के लिए किया जाता था।सिंचाई के साधन सीमित थे, मुख्यतः वर्षा पर निर्भरता थी।

कपड़ा बुनाई, धातु कार्य (तांबा, कांस्य), मिट्टी के बर्तन और लकड़ी के कार्य प्रचलित थे।गाँव आर्थिक इकाइयों के रूप में कार्य करते थे।उत्पादन मुख्यतः घरेलू और सामुदायिक आवश्यकताओं के लिए होता था।राजा को "बली" और "भाग" के रूप में कर दिया जाता था। यह कर अनाज, पशु, या अन्य उत्पादों के रूप में हो सकता था। समाज में विभिन्न पेशेवार समूह थे: कृषक, शिल्पकार, व्यापारिक वर्ग आदि।समाज वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) पर आधारित था, जो आर्थिक कार्यों का निर्धारण करता था।वैदिक अर्थव्यवस्था का ढांचा सरल लेकिन सुसंगठित था। कृषि, पशुपालन, और विनिमय प्रणाली पर आधारित इस अर्थव्यवस्था ने भारतीय

समाज की आर्थिक नींव रखी। सामुदायिक सहयोग और संसाधनों का सतत उपयोग इसकी प्रमुख विशेषता थी।

4.11 शब्दावली

वैदिक अर्थव्यवस्था: वैदिक अर्थव्यवस्था से तात्पर्य उस आर्थिक संरचना से है जो प्राचीन भारत के वैदिक काल (1500–500 ई.पू.) के दौरान विकसित हुई थी।

आरण्यक: "आरण्यक"शब्द संस्कृत के "अरण्य" शब्द से बना है, जिसका अर्थवन (Forest) होता है।

वर्णाश्रम: वर्णाश्रमएक प्राचीन भारतीय सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था है, जो व्यक्ति केवर्ण (जाति/व्यवसाय)औरआश्रम (जीवन के चरण)के आधार पर समाज को व्यवस्थित करती है।

विनिमय प्रणाली: विनिमय प्रणालीका अर्थ है वस्तुओं या सेवाओं केसीधे बदले (Exchange) का ऐसा तरीका जिसमें मुद्रा (पैसे) का उपयोग नहीं होता।

दक्षिणा: दक्षिणा संस्कृत शब्द है, जिसका मूल अर्थ है "दान", "भेंट", या "प्रदानकियागयाउपहार"।

4.12 सन्दर्भ गर्न्थ

1. ऋग्वेद, वेदव्यास, विभिन्न संस्कृत संस्थान
2. अर्थशास्त्र, कौटिल्य (चाणक्य), विभिन्न संस्कृत संस्थान
3. मनुस्मृति, मनु, विभिन्न संस्कृत संस्थान
4. "वैदिक काल की आर्थिक संरचना" – डॉ. रामगोपाल
5. "हिन्दू अर्थशास्त्र का विकास" – पी.वी. काणे
6. Economic History of Ancient India, R.C. Majumdar, मुक्ता बुक्स
7. The Vedic Age, Romila Thapar, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
8. Ancient Indian Social History, Romila Thapar, ओरिएंट ब्लैकस्वान
9. The Wonder That Was India, A.L. Basham, पिकाडोर इंडिया
10. भारतीय अर्थव्यवस्था का इतिहास, आर. सी. मजूमदार, भारती विद्याभवन
11. भारत का प्राचीन इतिहास, राम शरण शर्मा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
12. प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था, डी. डी. कोसांबी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस

4.13 बोध प्रश्न

1. वैदिक काल में ग्राम्य अर्थव्यवस्था का क्या महत्व था ?
2. पशुपालन का वैदिक अर्थव्यवस्था में क्या योगदान था ?
3. वैदिक समाज में व्यापार का क्या स्वरूप था ?
4. वैदिक काल में सिंचाई के कौन से साधन प्रचलित थे ?
5. वैदिक काल की कृषि व्यवस्था का विस्तार से वर्णन करें।
6. वर्ण व्यवस्था का वैदिक अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव था ?

7. वैदिक काल में कुटीर उद्योगों की क्या भूमिका थी ?
8. व्यापार और विनिमय प्रणाली किस प्रकार संचालित होती थी ?
9. वैदिक समाज में कर प्रणाली और आर्थिक प्रबंधन का वर्णन करें।
10. वैदिक काल में मुख्य आर्थिक गतिविधि कौन-सी थी ?
11. 'बली' और 'भाग' का वैदिक अर्थव्यवस्था में क्या महत्व था ?
12. वैदिक समाज में गाय को विशेष महत्व क्यों दिया गया था?
13. वस्तु विनिमय प्रणाली का अर्थ स्पष्ट करें।
14. वैदिक काल में व्यापार किस प्रकार होता था ?
15. "अघन्य" शब्द का क्या अर्थ है और इसका उपयोग किसके लिए होता था ?
16. वैदिक काल में कुटीर उद्योगों का क्या महत्व था ?
17. पशुपालन का वैदिक अर्थव्यवस्था में क्या योगदान था ?
18. वैदिक अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
19. कृषि और पशुपालन वैदिक अर्थव्यवस्था के आधार स्तंभ कैसे थे? विस्तृत रूप से समझाइए।
20. वैदिक काल में व्यापार एवं विनिमय प्रणाली का स्वरूप क्या था? इसका समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ?
21. वर्ण व्यवस्था का वैदिक अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव था ?
22. वैदिक काल में ग्राम्य अर्थव्यवस्था की भूमिका का विस्तार से वर्णन कीजिए।
23. वैदिक काल में कुटीर उद्योगों का महत्व और उनके प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
24. राजस्व संग्रहण और कर प्रणाली का वर्णन करें। वैदिक काल में इसका समाज पर क्या प्रभाव पड़ा?
25. वैदिक काल में भूमि का स्वामित्व और उसके उपयोग का क्या स्वरूप था?
26. प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और प्रबंधन में वैदिक समाज की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
27. वैदिक काल की आर्थिक समृद्धि का विश्लेषण करते हुए उसके प्रमुख कारणों को स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

बोध प्रश्न- क (Check Your Progress-A)

1.ऋग्वैदिक

2. 'गविष्ठि'

3. कुल

4. प्रौढ़

5. आरण्यक

6. जौ (यव) और गेहूं (गोधूम)

7. 'निष्क', 'शतमान' और 'कर्षापण'

8. कुसिद

बोध प्रश्न- ख (Check Your Progress-B)

1. वैश्य
2. कर्म
3. चार
4. बलि
5. दान
6. धर्म
7. नैतिक

खण्ड- तीन (Section-C)

वैदिक गणित का परिचय

इकाई 1 वैदिक गणित का उद्भव एवं विकास

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 गणितशास्त्र का महत्व
1.4 वैदिक गणित का उद्भव एवं विकास
1.4.1 अंकगणित या पाटीगणित(Arithmetic)
1.4.2 बीजगणित (Algebra)
1.4.3 ज्यामिति या रेखागणित (Geometry)
1.5 सारांश
1.6पारिभाषिक शब्दावली
1.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय वियार्थियों !

प्रस्तुत इकाई 'वैदिक गणित का उद्भव एवं विकास' से सम्बन्धित है| | आज का युग विज्ञान का युग है, जिसे अनुसन्धान का युग भी कहा जाता है| आज विश्व में जो भी विकास हुआ वह गणित के ज्ञान के बिना असम्भव था| भारत में गणितीय ज्ञान वैदिक काल से ही सर्वोपरि रहा है| वेदों में गणितीय सूत्रों का प्रतिपादन ऋषियों ने विस्तृत रूप से किया है| वेदों के बाद वेदांगों में गणित को वेद पुरुष का नेत्र कहे जाने वाले ज्योतिषशास्त्र के अंतर्गत स्थान मिला|प्रचलित संख्या पद्धति आधुनिक विश्व को भारतवर्ष की ही देन है| गणित ज्ञान और विज्ञान की सभी शाखाओं का आधार है| सामान्य जनमानस के लिए गणित एक जटिल विषय रहा है, परन्तु भारतीय गणितज्ञों ने सदैव इसे मनोरंजन का विषय समझते हुए इसे सरल बनाने की प्रक्रिया पर विचार किया है| वैदिक गणित की पद्धतियों का अभ्यास करने पर उत्तर जल्दी निकलता है| आपको वैदिक गणित से परिचित करवाना इस इकाई का ध्येय है|

1.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- ❖ वैदिक गणित के महत्व को समझ सकेंगे|
- ❖ वैदिक गणित के मूल सूत्र एवं उपसूत्रों को जानेंगे|
- ❖ वैदिक गणित का उद्भव एवं विकास को जानेंगे|
- ❖ वैदिक गणित में शोध के लिए रुचि उत्पन्न होगी|

1.3 गणितशास्त्र का महत्व

विश्व में उपलब्ध साहित्यों में 'वेद' सबसे प्राचीनतम् ग्रंथ है| 'वेद' शब्द का अर्थ है- **'विद्यते ज्ञायतेऽनेनेति वेदः'**अर्थात जिसके द्वारा कोई ज्ञान प्राप्त किया जाए वही वेद है|वेदों में धर्म, विज्ञान, दर्शन, आचार शास्त्र, आयुर्वेद, संगीत आदि समस्त विषयों का वर्णन मिलता है| विज्ञान विषय के समस्त चिंतन की समस्त मूलभूत अवधारणाएं वेद से ही प्राप्त हुई हैं| मनुस्मृति में कहा गया है- **"सर्वज्ञानमयो हि सः"** वेदों में विज्ञान के अपूर्व भण्डार मिलते हैं|

गणित को विज्ञान की आधारशिला कहा जाता है| गणित ही सृष्टि रचना के मूल में है| संसार की प्रत्येक वस्तु किसी नियम से बद्ध है, उसमें कोई क्रम है| उस नियम और क्रम का ज्ञान गणित का विषय है| सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में गति है| गति का सम्बन्ध गणना से होता है, और गणना गणित का विषय है| सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह एवं पृथिवी की गति के ज्ञान से ही सूर्योदय और सूर्यास्त, सूर्य-ग्रहण, चन्द्रग्रहण, भू-परिक्रमा आदि का ज्ञान होता है| पूरा ज्योतिष शास्त्र गणित पर निर्भर है| स्थान और समय का निर्धारण गणित के आधार पर ही होता है| गति की निरन्तरता का नाम समय है और गति का चतुर्दिक् प्रसार ही स्थान है| इनके ज्ञान के लिए गणित की आवश्यकता होती है| गणित के द्वारा गति का आकलन किया जाता है| वेदांग ज्योतिष में गणितशास्त्र का महत्व बताते हुए कहा गया है कि-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा|

तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्|| वेदाङ्गज्योतिष(याजुष)४

अर्थात जिस प्रकार मयूरों की शिखाएँ और नागों की मणियाँ सर्वोच्च स्थान पर रहती है, ठीक उसी प्रकार सारे वेदांगों में गणित का स्थान सर्वोपरि है|

गणितशास्त्र के मर्मज्ञ महावीराचार्य ने (लगभग ८५० ई०) ने अपने ग्रन्थ 'गणितसारसंग्रह' (अध्याय १,श्लोक ९-१९) में कहा है कि-

बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे|

यत् किंचिद् वस्तु तत् सर्वं गणितेन विना न हि||

अर्थात अधिक गुणगान से क्या लाभ| इस चराचर जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके मूल में गणित न हो| गणित ज्ञान और विज्ञान की सभी शाखाओं का आधार है| सामान्य जनमानस के लिए गणित एक जटिल विषय रहा है| परन्तु भारतीय गणितज्ञों ने सदैव इसे मनोरंजन का विषय समझते हुए इसे सरल बनाने की प्रक्रिया पर विचार किया है|वैदिक गणित की पद्धतियों का अभ्यास करने पर उत्तर जल्दी निकलता है| और गलती होने की सम्भावना कम होती है|

1.4 वैदिक गणित का उद्भव एवं विकास

वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान का स्रोत हैं|वेदों में गणितशास्त्र से सम्बद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है| उनमे एक संख्या से लेकर परार्द्ध संख्या तक का उल्लेख है| उनमे १० संख्या का महत्व, उसके गुणन, स्थानमान तथा भाग आदि का वर्णन है| वेदों में गणित शब्द का उल्लेख नहीं मिलता लेकिन कुछ अन्य शब्द मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि गणना की विधि ज्ञात थी| यजुर्वेद (३०,२०) और तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.४.१५) में गणक (गणना करने वाला, ज्योतिषी) शब्द मिलता है| गणनासूचक गण, गणपति, गणाश्रि, गणिन्, गण्य आदि शब्द ऋग्वेद और यजुर्वेद में अनेक मंत्रों में आये हैं|ऋग्वेद में 'व्रातव्रातम्, गणंगणम्' शब्द गणना के आधार पर किए गए समूहों या वर्गों के लिए हैं| इसी प्रकार यजुर्वेद और अथर्ववेद में निधि, निधिपति, निधिपा शब्द कोष और कोषागार के अध्यक्ष के लिए हैं| ये कोष की गणना करते थे| यजुर्वेद में वित्तध शब्द भी कोषागार के अध्यक्ष के लिए आया है| यजुर्वेद में ज्योतिषी के लिए 'नक्षत्रदर्श' शब्द है और गणित विद्या जानने के कारण उसके ज्ञान की प्रशंसा की गयी है | छान्दोग्य उपनिषद् में सर्वप्रथम गणितशास्त्र का 'राशिविद्या' और ज्योतिष का 'नक्षत्रविद्या' नाम से उल्लेख है| वर्णन आता है कि सनत्कुमार के पूछने पर नारद जी ने बताया कि मैंने चारों वेद, इतिहास, पुराण, ब्रह्मविद्या आदि के साथ राशिविद्या और नक्षत्रविद्या का भी अध्ययन किया है| राशिविद्या शब्द अंकगणित के लिए है और नक्षत्रविद्या ज्योतिष के लिए है| इससे यह ज्ञात होता है कि अध्यात्म या पराविद्या के जिज्ञासु के लिए गणित और ज्योतिष का भी ज्ञान आवश्यक है|

पश्चिम के देशों में गणित का विकास १४ वीं शताब्दी तक कम था| परन्तु भारत में इससे पूर्व सूर्यमण्डल के सभी ग्रहों की सही गति जानने का गणित विकसित हो चुका था| वेदी को सही बनाने की ज्यामिति विकसित हो चुकी थी| समुद्र में चलने वाली नावों की सही दिशा समझने के लिए नक्षत्र मण्डल की गति जानने का विज्ञान विकसित हो चुका था| प्रकाश की गति का ज्ञान और वृत

की परिधि नापने की विधि निकाली जा चुकी थी| लीलावती और आर्यभटीय में बीजगणित चलन-कलन और गति शास्त्र का विकसित रूप मिलता है|

प्राचीन बौद्ध साहित्य में गणित के भेद-

१ मुद्रा (अंगुलियों पर गिनना)

२ गणना (सामान्य गणित, मौखिक गणना)

३ संख्यान (उच्च गणित)

दीर्घनिकाय, विनयपिटक, दिव्यावदान और मिलिन्दपंहो ग्रन्थों में इन तीनों का उल्लेख मिलता है| गणित के अर्थ में 'संख्यान' शब्द का प्रयोग अनेक ग्रन्थों में मिलता है | प्राचीन गणित में ज्योतिष भी समिलित था| क्षेत्रगणित या ज्यामिति (Geometry) का उल्लेख वेदांग के रूप प्रचलित 'कल्पसूत्र' और शुल्बसूत्रों में मिलता है| बाद में ज्योतिष स्वतन्त्र विषय हो गया और क्षेत्रगणित या ज्यामिति गणित का अंग हो गया|आगे चलकर अज्ञात राशि से सम्बन्ध रखने वाला बीजगणित (Algebra) कहलाया | यह पृथक करण सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त ने किया| उन्होंने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त ग्रन्थ में बीजगणित से सम्बद्ध अध्याय को 'कुट्टकाध्याय' कहा है|

जगद्गुरू स्वामीभारती कृष्ण तीर्थ जी द्वाराविरचितपुस्तक 'वैदिक गणित'जिसमें अंकगणितीय गणना की वैकल्पिक एवं संक्षिप्त विधियाँ दी गयीं हैं। इसमें १६ मूल सूत्र ,तथा१३ उपसूत्र दिये गये हैं। वैदिक गणित गणना की ऐसी पद्धति है, जिससेजटिल अंकगणितीय गणनाएं अत्यंत ही सरल, सहज व त्वरित संभव हैं।

वैदिक गणित के १६ मूल सूत्र

१. एकाधिकेन पूर्वेण
२. निखिलं नवतश्मचरमं दशतः
३. ऊर्ध्वतिर्यग्भ्याम्
४. परावर्त्य योजयेत्
५. शून्यं साम्यमुच्चये
६. अनुरूप्ये शून्यमन्यत्
७. संकलनव्यवकलनाभ्याम्
८. पूरणापूरणाभ्याम्
९. चलनकलनाभ्याम्
१०. यावदूनम्
११. व्यष्टिसमष्टिः
१२. शेषाण्यङ्केन चरमेण
१३. सोपान्त्यद्वयमन्त्यम्
१४. एकन्यूनेन पूर्वेण
१५. गुणितसमुच्चयः
१६. गुणकसमुच्चयः

वैदिक गणित के उपसूत्र

१. आनुरुपेण
२. शिष्यते शेषसंज्ञ:
३. आधमाधेनान्त्यमन्त्येन
४. केवलैः सप्तकं गुण्यात्
५. वेष्टम्
६. यावदूनं तावदूनम्
७. यावदूनं तावदूनीकृत्य वर्गं च योजयेत्
८. अन्त्योर्दशकेपि
९. अन्त्ययोरेव
१०. समुच्चयगुणितः
११. लोपस्थापनाभ्याम्
१२. विलोकनम्
१३. गुणितसमुच्चयः समुच्चयगुणितः
१४. ध्वजांक

गणित की मुख्य तीन शाखाएँ हैं- अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित|

1.4.1 अंकगणित या पाटीगणित (Arithmetic)

भारत में अंकगणित का इतिहास अत्यंत प्राचीन है| इसकी जानकारी वैदिक ग्रंथों से प्राप्त होती है| वैदिक एवं सूत्र ग्रंथों के बाद रामायण में भी अंकगणित की जानकारी प्राप्त होती है| जिसमें शत, सहस्र, कोटि, शंख, महाशंख, वृन्द आदि शब्द मिलते हैं| गणित के सामान्य प्रश्न पाटी (तख्ती, पट्ट या फलक) पर या मिट्टी में अंक लिखकर किए जाते थे, अतः अंकगणित का नाम 'पाटीगणित' या 'धूलिकर्म' पड़ गया| अंकगणित में संख्याएँ व्यक्त होती हैं, अतः उसे 'व्यक्तगणित कहा जाता है, और संखयाएँ अव्यक्त होने के कारण बीजगणित को 'अव्यक्तगणित' भी कहा जाता है |

अंकगणित के आठपरिकर्म (Fundamental Operations)

१ संकलित (जोड़), २ व्यवकलित (घटाना), ३ गुणन (गुणा करना), ४ भागहार (भाग देना), ५ वर्ग (Square),६ वर्गमूल (Square-root), ७ घन (Cube), ८ घनमूल (Cube-root)

संकलित (जोड़, Addition)

दो या अधिक राशियों के जोड़ने को जोड़ या संकलित कहते हैं| वेदों में जोड़ की विधि का वर्णन है| जोड़ के लिए प्रयुक्त शब्द हैं- संकलन, योग, मिश्रण, संमेलन, संयोजन, युक्ति, एकीकरण आदि| दो विभिन्न संख्याओं को जोड़ने को संकलन, योग या संकलित कहते हैं| जोड़ का चिह्न (+) है| वेदों में जोड़ के लिए निम्न शब्दों का प्रयोग मिलता है|

१ 'च' (और) शब्द अथर्ववेद में इनके उदाहरण मिलते हैं | जैसे- षष्टिः च षष्ट् च (६०+६=६६), चत्वारः चत्वारिंशत् च (४+४०=४४), त्रयः त्रिंशत् च (३+३०=३३) इत्यादि|

२ साकम् (साथ) शब्द ऋग्वेद में ९९ के लिए 'नव साकं नवती' (९+९०=९९), ३६० के लिए 'त्रिंशता साकं षष्टिः' (३००+६०=३६०)

३ बिना किसी शब्द के प्रयोग के किसी शब्द का प्रयोग किए बिना यदि संख्याएँ एक साथ दी जाती हैं, तो उनका अर्थ 'जोड़' है| जैसे- ११ से ९९ तक के शब्द| एकादश (१+१०=११), अष्टाशिति (८+८०=८८) इत्यादि|

जोड़ से सम्बद्ध कुछ शब्द हैं जैसे- १ योज्य (जिसमें कोई संख्या जोड़ी जाती है), २ योजक (जोड़ी जाने वाली संख्या), ३ योग (दोनों संख्याओं का जोड़)|

व्यकलित (घटाना, Subtraction)

किसी राशि में से किसी राशि को घटाने को व्यकलित या घटाना कहते हैं| जिसमें से घटाया जाता है, उसे वियोज्य या सर्वधन Minuend कहते हैं, और जिसे घटाते हैं, उसे वियोजक कहते हैं| जो बचता है, उसे शेष या अन्तर Remainder कहते हैं| घटाना का चिह्न (-)है|

वेदों में 'घटाना' के लिए कोई निश्चित शब्द नहीं है| कुछ शब्द हैं जिनका अर्थ घटाना निकलता है|

१ 'अवम' (कम) अथर्ववेद के एक मंत्र में घटाने के लिए 'अवम' शब्द दिया गया है| इस सूक्त में ११ संख्या से सम्बद्ध अंक इस प्रकार से हैं-९९, ८८, ७७, ६६, ५५, ४४, ३३, २२, ११

मंत्र में कहा गया है- 'एकादशावमा:' अर्थात प्रत्येक संख्या ११ कम होती गयी है| कम के लिए 'अवम' शब्द है|

२ ऊन, एकोन, एकान्न शब्द (एक कम) वेदों में 'एक कम' के लिए इन शब्दों का प्रयोग है| ऊन और न्यून (नि+ऊन) का अर्थ है- एक कम| एकान्न शब्द एकात्+न= एकान्न है, अर्थात एक संख्या से कम, एक कम|

'ऊन' वेदों में 'ऊन' शब्द का अनेक स्थानों पर न्यून या कम अर्थ में प्रयोग है| जैसे-'तन्वा ऊनम्' (जो शरीर में कमी है) आदि|

'एकोन' का १९, २९, ३९ आदि सभी शब्दों में इसका उपयोग हुआ है| जैसे एकोनविंशति (एक कम २० अर्थात १९), एकोनत्रिंशत् (२९) आदि|

'एकान्न' तैत्तिरीय संहिता में 'एकानन' का प्रयोग बहुत मिलता है| जैसे- एकान्नविंशति (२०-१=१९) आदि|

गुणन (Multiplication)

किसी संख्या को किसी किसी संख्या से गुणा करने को गुणन कहते हैं|जिस संख्या में अन्य संख्या से गुणा किया जाता है, उसे 'गुण्य' (Multiplicand) कहते हैं| जिस संख्या से गुणा किया जाता है, उसे गुणक (Multiplier) कहते हैं| गुणा करने के बाद जो राशि प्राप्त होती है, उसे 'गुणन फल' (Product of Multiplication) कहते हैं| गुणा के लिए (×) संकेत का प्रयोग किया जाता है|

वेदों में प्रयुक्त कुछ विधियाँ निमलिखित हैं-

१ बिना प्रत्यय के गुणन-कार्य कोई शब्द या प्रत्यय लगाए विना गुणन कार्य होता है| जैसे मैत्रायणी संहिता में उल्लेख है कि २ वर्ष में २४ और ३ वर्ष में ३६ मास होते हैं| १ वर्ष=१२ मास, २ वर्ष= १२×२=२४ मास| ३ वर्ष = १२×३=३६ मास|

ऋग्वेद में २ का पहाड़ा १० तक दिया गया है| जैसे २×१=२,२×२=४, २×३=६, २×४=८, २ ×५=१०

अथर्ववेद में २१ के लिए त्रिषप्त, अर्थात ३×७=२१ दिया है|

२ स् प्रत्यय लगाकर गुणनकार्य स् प्रत्यय लगाकर द्वि का द्वि: और त्रि का त्रि: बनता है| इसका अर्थ दोबारा या तीन बार होता है| जैसे- ऋग्वेद में २० के लिए द्विर्दश है, अर्थात १०×२=२० | काठक संहिता में ३३ के लिए त्रि: एकादश है, अर्थात ११×३=३३

३ संख्याशब्दों से वृत् लगाकर गुणनकार्य 'गुना'अर्थ में 'वृत्' लगाकर एकवृत् (एक गुना), द्विवृत् (दो गुना), त्रिवृत् (त्रिगुना) आदि शब्द बने हैं |

४ गुणन अर्थ में ता और धा प्रत्यय ऋग्वेद में 'गुना' अर्थ में 'ता' और 'धा' प्रत्ययों के प्रयोग हैं| 'द्विता' (दुगुना या दो प्रकार से) का प्रयोग है| चतुर्धा और चतुर्गुण का अर्थ है चौगुना|

५ गुणन अर्थ में कृत्व: प्रत्यय वेदों में गुणन अर्थ में 'कृत्व:' प्रत्यय का प्रयोग भी मिलता है| जैसे त्रि: कृत्व: (तिगुना), पञ्चकृत्व: (पाँच गुना) इत्यादि|

६ गुणन अर्थ में कृत् प्रयोग एक अर्थ में समान (स) शब्द से कृत् लगाकर सकृत् (एक गुना, एक बार) प्रयोग बनता है| ऋग्वेद में इसका 'एकवार' अर्थ में प्रयोग मिलता है|

भाग, भागहार (Division)

प्राचीन ग्रन्थों में भाग के लिए भागहार शब्द का प्रयोग हुआ है| इसके और भी अन्य पर्याय हैं, जैसे- भाजन, हरण, छेदन आदि| जिस संख्या को किसी अन्य संख्या से भाग दिया जाता है, उसे भाज्य या हार्य (Dividend) कहते हैं| जिस संख्या से भाग देते हैं, उसे भाजक, भागहार, हार, छेद या हर (Divisor) कहते हैं| भाग देने पर जो उत्तर प्राप्त होता है, उसे लब्धि या लब्ध (Quotient) कहते हैं| वेदों में 'भाग' शब्द का प्रयोग भाग या हिस्सा (Share) अर्थ में अनेक मंत्रों में हुआ है| जैसे- 'इन्द्र ने मुझे मेरा हिस्सा दिया|

१ भज् धातु 'यो रत्ना भजति मानवेभ्य:' जो मनुष्यों को रत्न बाँटता है|

२ वि-भज् धातु 'भागं विभजासि' तुम मनुष्यों को उनका हिस्सा देते हो|

३ वि- धा धातु यजुर्वेद में बांटने के अर्थ में विधा धातु का प्रयोग है| जैसे- 'अर्थान् व्यदधात्' परमात्मा ने प्रजा को यथायोग्य धन बाँटा है|

४ वन् धातु ऋग्वेद में वन् धातु का बाँटना अर्थ में प्रयोग है| 'अस्मभ्यं वनसे रत्नम्' तुम हमे रत्न बाँटते हो|

५ सन् धातु ऋग्वेद में सन् धातु बाँटने अर्थ में प्रयोग है| 'सनोति वाजम्' वह अन्न बाँटता है|

६ धा प्रत्यय'धा' प्रत्यय का प्रयोग भी भाग के लिए हुआ है| जैसे द्विधा (दो हिस्से में), त्रिधा (तीन हिस्से में), चतुर्धा (चार हिस्से में)|

७ श: प्रत्यय एकैकश: (एक-एक करके)

४, ८, १२, १६, २०, २४, २८, ३२, ३६, ४०, ४४, ४८ इनमें क्रमशः ४ से भाग देने पर क्रमशः यह उत्तर आएंगे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२

भिन्न-परिकर्म (Fractions)

भिन्न या बटा के लिए वेदों में कुछ शब्द मिलते हैं| यजुर्वेद में चतुर्थांश अर्थात १/४ के लिए 'पाद' शब्द का प्रयोग हुआ है| मंत्र में वर्णन आता है कि परमात्मा का त्रिपाद अर्थात ३/४ अंश संसार के बाहर है और एक पाद अर्थात १/४ अंश यह संसार है| वेदों में भाग या हिस्से के अर्थ में अंश और भाग शब्दों का प्रयोग हुआ है| आधा अर्थात १/२ के लिए अर्ध और नेम शब्दों का प्रयोग हुआ है|

एक-तिहाई अर्थात १/३ के लिए त्रेधा, त्रिधा शब्द मिलते हैं| इसी प्रकार डेढ (१+१/२) के लिए 'अध्यर्ध' शब्द है | ऋग्वेद में सौवें और सौवें हिस्से (१/१००) के लिए 'शततम' शब्द का प्रयोग हुआ है| शुल्ब सूत्रों में 'बटा' के अर्थ में 'भाग' शब्द का प्रयोग मिलता है| जैसे १/५ के लिए 'पञ्चम् भाग' शब्द १/१० के लिए 'दशमभाग' शब्द इत्यादि|

वर्ग, वर्गमूल (Square, Square-root)

वेदों में वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल का स्पष्ट उल्लेख नहीं है| वर्ग एवं वर्गमूल का संकेत है| घन एवं घनमूल का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संकेत नहीं मिलता है, आर्यभट्ट, भास्कर आदि के ग्रन्थों में वर्ग के लिए 'कृति' शब्द का प्रयोग है|

यजुर्वेद में दो स्थानों पर विषम संख्याओं का उल्लेख है| दोनों स्थानों पर १ से ३३ तक की विषम संख्याएँ दी गयी है| मंत्र १८, २४ में १ से ३३ तक विषम संख्याएँ दी गयी हैं, वे इस प्रकार से हैं- १, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, २१, २३, २५, २७, २९, ३१, ३३ इस प्रकार ये १७ अंक हैं| १ से १७ तक का वर्ग और वर्गमूल निकाला जाता है| जिस संख्या का वर्ग निकालना हो, उसके लिए उतनी ही विषम संख्याएँ लेनी होंगी| जैसे १ के लिए केवल १ विषम संख्या, २ के लिए २ विषम संख्याएँ, ३ के लिए ३ विषम संख्याएँ, १० के लिए १० विषम संख्याएँ| जैसे १ से १० तक के वर्ग के लिए १० तक की विषम संख्याएँ लेकर उन्हें जोड़ लें| वही वर्ग की संख्या होगी|

१. १+० = १
२. १+३ = ४ (२ का वर्ग) $२^२$
३. १+३+५ =९ (३ का वर्ग) $३^२$
४. १+३++५+७ = १६ (४ का वर्ग) $४^२$
५. १+३+५+७+९ = २५ (५ का वर्ग) $५^२$
६. १+३+५+७+९+११ = ३६ (६ का वर्ग) $६^२$
७. १+३+५+७+९+११+१३=४९ (७ का वर्ग) $७^२$
८. १+३+५+७+९+११+१३+१५ = ६४ (८ का वर्ग) $८^२$
९. १+३+५+७+९+११+१३+१५+१७ = ८१ (९ का वर्ग) $९^२$
१० १+३+५+७+९+११+१३+१५+१७+१९= १०० (१० का वर्ग) $१०^२$

इसी प्रकार १ से ३३ तक १७ विषम संख्याओं का जोड़ २८९ होगा और यह १७ संख्या का वर्ग है| श्रीधर, महावीर, भास्कर द्वितीय आदि ने भी इस विधि का उल्लेख किया है|

वर्ग निकालने में १, ३, ५ आदि विषम संख्याओं का जोड़ लेते हैं, किन्तु वर्गमूल निकालने में उन विषम संख्याओं का जोड़ नहीं लेना है, केवल इतना गिनना है कि विषम संख्या ली गयी है| इस प्रकार वर्ग का वर्गमूल निकलता जाएगा| १ से ३३ तक विषम संख्याओं में केवल १७ वर्गमूल होते हैं| जैसे-

वर्ग-

तीन का वर्ग १+३+५ = ९

पाँच का वर्ग १+३+५+७+९ = २५

छह का वर्ग १+३+५+७+९+११ = ३६

वर्गमूल-

९ का वर्गमूल- ३, इसमें १, ३, ५ = ३ संख्याएँ हैं|

२५ का वर्गमूल- ५, इसमें १, ३, ५, ७, ९ = ५ संख्याएँ हैं|

३६ का वर्गमूल- ६ इसमें १, ३, ५, ७, ९, ११ = ६ संख्याएँ हैं|

इसी प्रकार १७ तक के वर्ग के १७ वर्गमूल निकलते जाएंगे|घन एवं घनमूल का कोई संकेत प्राप्त नहीं होता है|

1.4.2 बीजगणित (Algebra)

भास्कराचार्य के अनुसार बीजगणित एवं अंकगणित में संरचना और सिद्धान्त के विचार से अनेक समानताएँ हैं| इन दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि अंकगणित में व्यक्त (ज्ञात) राशि की बात की जाती है जबकि बीजगणित में अव्यक्त (अज्ञात) राशि की बात की जाती है| बीजगणित में अंकों की सहायता के बिना संकेताक्षरों या वर्णों से गणित की क्रिया की जाती है|

ख = शून्य या आकाश (खं ब्रह्म, यजु० ४०.१७)

क = प्रजापति या ईश्वर (प्रजापतिर्वै कः, ऐत० ब्रा० २. ३८)

प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के संकेताक्षरों का बहुत प्रयोग हुआ है| लीलावती आदि में ऐसे संकेताक्षर अनेक हैं| जैसे- भ (२७), नन्द (९), अग्नि (३), ख (०), बाण (५), सूर्य (१२), शैल (७) | अंक दायें से बाईं ओर पढे जाते हैं| अतः भन्दाग्नि (३९२७), ख-बाण-सूर्य (१२५०) होते हैं|

1.4.3 ज्यामिति या रेखागणित (Geometry)

भारतीय गणित के इतिहास देखें तो ज्ञात होता है कि वैदिक काल में ही रेखागणित की नींव पड़ गई थी| भारतवर्ष में वैदिक यज्ञ वेदियों के निर्माण के प्रसंग में हुई| वेदों में रेखागणित सम्बन्धी सामग्री सूत्ररूप में मिलती है| इसका विस्तृत विवरण शुल्वसूत्रों में मिलता है|शुल्वसूत्र वे वैदिक साहित्य है जो कल्प तथा श्रौत सूत्र ग्रंथों के खण्ड हैं जो वेद के षडगों में एक है| ऋग्वेद के कतिपय मंत्रों में रेखागणित के कुछ पारिभाषिक शब्द मिलते हैं| यज्ञवेदी के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया है कि इसका क्या नाप था, इसकी क्या रूपरेखा थी, इसकी क्या परिधि थी|

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानम्, आज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत्| छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद् देवा देवमयजन्त विश्वे || (ऋग्०१०.१३०.३)

मंत्र में रेखागणित से संबद्ध ये शब्द हैं-

१. प्रभा- नाप, परिमाण (Measurement)
२. प्रतिमा- नक्शा, रूपरेखा (Outline)
३. निदानम्- कारण, मूलसिद्धान्त (Basic Principles)
४. परिधि- घेरा (Circumference)
५. छन्द- नापने का साधन, रज्जु आदि| इसी को शुल्व कहा गया है|
६. प्रउग- शुल्वसूत्रों में समद्विबाहु त्रिभुज (Isosceles triangle) के लिए इस शब्द का प्रयोग है|

ऋग्वेद के एक मंत्र में वृत्त (Circle) के बारे में विवरण मिलता है, जो इस प्रकार से है-

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः

चक्रं न वृत्तं व्यतीरवीविपत् | (ऋग० १.१५५.६)

अर्थात एक वृत्त में ४×९० = ३६० अंश होते हैं| ऐसे कालचक्र को विष्णु घुमाते हैं| इस मंत्र में स्पष्ट संकेत हैं कि एक वृत्त में ९० अंश के ४ खण्ड (त्रिज्या, Radius) होते हैं|

ऋग्वेद और अथर्ववेद में एक मंत्र मिलता है, जिसमें रेखागणित से संबद्ध कई महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हैं|

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत |

तस्मिन् साकं त्रिशता न शंकवो आर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः || (ऋग०१.१६४.४८ अथर्व० १०.८.४)

अर्थात इसमें वर्षचक्र का वर्णन करते हुए ये पारिभाषिक शब्द दिए हैं| एक चक्र (Circle) है, उसमें १२ प्रधियाँ हैं, अर्थात ३०-३० अंश पर १२ अरे हैं| पूरे चक्र में १२० अंश वाले ३ केंद्र बिन्दु हैं| पूरे चक्र में ३६० अंश हैं|

यजुर्वेद के एक मंत्र में त्रिभुज की रूपरेखा दी गई है|

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम्

अधः स्विदासीद् उपरि स्विदासीत्| (यजु० ३३.७४)

अर्थात सूर्य की किरणे तिरछी आती हैं, फिर नीचे फैलती हैं और फिर ऊपर तिरछी जाती हैं| इस प्रकार त्रिभुज की तीन भुजाएँ होती हैं| नीचे एक रेखा और दोनों ओर दो तिरछी रेखाएँ| इस प्रकार त्रिकोण की अनेक आकृतियाँ बनाई जा सकती हैं|

ऋग्वेद और तैत्तिरीय संहिता में अग्नि को त्रिषधस्थ अर्थात् तीन स्थानों पर विराजमान कहा गया है| तीन प्रकार की अग्नियाँ हैं- गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण| शतपथ ब्राह्मण में इनके आकार का वर्णन प्राप्त होता है|

१. गार्हपत्य अग्नि की वेदी मंडलाकार (Circle)
२. आहवनीय की चतुर्भुज (Square)
३. दक्षिनाग्नि की अर्धवृत्ताकार या अर्धचंद्राकार (Semi-Circle) होती है|

यह भी वर्णन किया गया है कि इनका क्षेत्रफल भी बराबर हो और यह एक वर्ग व्याम हो| (एक व्याम = १६ अंगुल या ४ हाथ अर्थात् लगभग ६ फीट) इससे यह ज्ञात होता है कि वेदी का निर्माण करणे वाला रेखागणित का ज्ञान रखता होगा, जिससे वह वृत्त को चतुर्भुज में बदल सके और उसको अर्धवृत्ताकार बना सके |

महावेदी

समद्विबाहु चतुर्भुज (Isosceles Trapezium)

शतपथ ब्राह्मण में महावेदी का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है|काण्ड ३ और काण्ड १० में इसके निर्माण का वर्णन किया गया है| इस वेदी का सम्बन्ध १. शत० ब्रा० ३.५.१.१ से ६ और काण्ड १०.२.३.७ से १४ सोम योग से है, अतः इसे सौमिकी वेदी भी कहते हैं| इसकी रचना समद्विबाहु चतुर्भुज (Isosceles Trapezium)होती है| इसका मुख पूर्व की ओर होता है|

पूर्व दिशा चौड़ाई- २४ पग (१२+१२ के भाग)

पश्चिम दिशा चौड़ाई- २४+६ = ३० पग (१५+१५ के २ भाग)

लंबाई - ३६ पग (पद)

१ पद प्रायः २ फीट का होता है| उसी हिसाब से इसकी लंबाई चौड़ाई समझनी चाहिए| इसमें पूर्व की ओर से पश्चिम की ओर २४×२४ पग का एक चतुर्भुज बनता है| पश्चिम दिशा में मध्य भाग से उत्तर और दक्षिण की ओर ३-३ पग और बढाते हैं| इस प्रकार ६ पग बढ़ जाने से पश्चिम दिशा में चौड़ाई २४+६ = ३० पग हो जाती है| उत्तर और दक्षिण दिशा के भाग समान हैं, अतः यह समद्विबाहु चतुर्भुज है| और्व और पश्चिम के भाग विषम है (२४ और ३० पग), अतः और्व और पश्चिम की भुजाएँ विषम हैं|

परिधि, व्यास और पाई-

ऋग्वेद के एक मंत्र में वृत्त की परिधि और व्यास का अनुपात 'त्रित' शब्द के द्वारा दिया गया है| मंत्र का अर्थ है कि त्रित ने वल राक्षस की परिधि को तोड़ दिया| अर्थात वृत्त की परिधि को त्रित यानि व्यास के अनुपात १/३ ने तोड़ दिया| यह अनुपात वस्तुतः २२/७ है| इस अनुपात को पाई (Pie) द्वारा सूचित किया जाता है|

भास्कराचार्य ने लीलावती में 'पाई' का स्थूल और सूक्ष्म मान दिए हैं-

व्यासो भनन्दाग्नि (३९२७) – हते विभक्ते

खवाणसूर्यैः (१२५०) परिधिस्तु सूक्ष्मः |

द्वविंशति (२२) घ्ने विहृतेऽथ शैलैः (७)

स्थूलोऽथवा स्याद् व्यवहारयोग्यः || (लीलावती, क्षेत्रव्यवहार ९८)

इसमें "पाई" का सूक्ष्ममान इस प्रकार है-

(क) ३९२७/१२५० = ३.१४१६

(ख) पाई का स्थूलमान २२/७ = ३.१४

कर्ण (Hypotenuse)

बौधायन, आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्ब सूत्रों में आयत (Rectangle) के कर्ण (Hypotenuse) के विषम में कहा गया है कि आयत का कर्ण दोनों क्षेत्रफलों को उत्पन्न करता है, जिसे उसकी लम्बाई और चौड़ाई अलग-अलग उत्पन्न करती है|

कात्यायन शुल्वसूत्र में इस बात को स्पष्ट किया है कि यदि लंबाई और चौड़ाई ज्ञात हो तो कर्ण (Hypotenuse) क्या होगा|

१. यदि चौड़ाई १ हो और लंबाई ३ हो तो इसका कर्ण १० का वर्गमूल होगा|
   $१^२ + ३^२ = १०$ का वर्गमूल
   अर्थात १×१ = १ और ३×३ = ९, इस प्रकार १+९ = १०

२. इसी प्रकार यदि किसी आयत की चौड़ाई २ पद और लंबाई ६ पद होगी तो उसका कर्ण ४० का वर्गमूल होगा| २ और ६ का वर्ग निकालकर जो जोड़ होगा, वह कर्ण का वर्ग होगा|
   $२^२ \times ६^२ = ४०$
   अर्थात २×२ = ४, ६×६ = ३६, ४+३६ = ४०
   शुल्वसूत्रों में कर्ण के लिए 'करणी' शब्द का प्रयोग है| शुल्व और शुल्ब शब्द यह दोनों प्रकार से लिखा जाता है|

1.5 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई मे आपने 'वैदिक गणित का उद्भव एवं विकास' का अध्ययन किया| आपने जाना कि भारत में गणित का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है| यह जानकारी वैदिक ग्रन्थों से प्राप्त होता है| गणित एक ऐसा विषय है जिसकी व्यापकता सार्वभौम है| प्रकृति के अनेकों व्यवहार गणित की साहयता से ही सम्भव है| गणित को विज्ञान एवं तकनीकी का मेरुदण्ड कहा गया है|गणित को विज्ञान की आधारशिला कहा जाता है| गणित ही सृष्टि रचना के मूल में है| संसार की प्रत्येक वस्तु किसी नियम से बद्ध है, उसमें कोई क्रम है| उस नियम और क्रम का ज्ञान गणित का विषय है| सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में गति है| गति का सम्बन्ध गणना से होता है, और गणना गणित का विषय है| सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह एवं पृथिवी की गति के ज्ञान से ही सूर्योदय और सूर्यास्त, सूर्य-ग्रहण, चन्द्रग्रहण, भू-परिक्रमा आदि का ज्ञान होता है| पूरा ज्योतिष शास्त्र गणित पर निर्भर है| स्थान और समय का निर्धारण गणित के आधार पर ही होता है| गति की निरन्तरता का नाम समय है और गति का चतुर्दिक् प्रसार ही स्थान है| इनके ज्ञान के लिए गणित की आवश्यकता होती है|आचार्य लगध जी ने वेदांग ज्योतिष में गणितशास्त्र का महत्व बताते हुए कहा है कि-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा|
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्||

अर्थात जिस प्रकार मयूरों की शिखाएँ और नागों की मणियाँ सर्वोच्च स्थान पर रहती है, ठीक उसी प्रकार सारे वेदांगों में गणित का स्थान सर्वोपरि है|भारत में गणितीय ज्ञान वैदिक काल से ही सर्वोपरि रहा है| प्रचलित संख्या पद्धति आधुनिक विश्व को भारतवर्ष की देन है| आज विश्व बौद्धिक समुदाय का एक बड़ा वर्ग हमारे वैदिक काल के समुन्नत ज्ञान को स्वीकार कर रहा है| ज्यामिति या रेखागणित (Geometry)की उत्पत्ति, भारतवर्ष में वैदिक यज्ञ वेदियों के निर्माण के प्रसंग में हुई |

1.6पारिभाषिक शब्दावली

- वैदिक गणित – वेदों में वर्णित गणित
- निर्धारण - निश्चित करना
- समुन्नत – बहुत ऊँचा
- अज्ञात - बिना जाने
- ज्यामिति – गणित की वह शाखा है जिसमें रेखाओं, आकृतियों और सतहों का अध्ययन किया जाता है|
- अंकगणित – गणित की वह शाखा जिसमें संख्याओं का हिसाब किया जाए|
- बीजगणित – गणित की वह शाखा जिसमें संख्याओं के बजाय प्रतीकों का इस्तेमाल किया जाता है|

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये |

1.'वैदिकगणित'पुस्तक का लेखक हैं |

(क) जगद्गुरू स्वामीभारती कृष्ण तीर्थ (ख) भास्कराचार्य

(ग) रामानुजन (ग) आर्यभट्ट

2. वैदिक गणित के मूल सूत्रों की संख्या है|

(क) १५ (ख) १६

(ग) १७ (घ) १८

3. दो या अधिक राशियों के जोड़ने को कहते हैं|

(क) गुणन (ख) घटाना

(ग) संकलित (घ) भाग

4. अंकगणित के परिकर्म हैं |

(क) ४ (ख) ६

(ग) ७ (घ) ८

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये |

1. वैदिक एवं सूत्र ग्रंथों के बाद----------में भी अंकगणित की जानकारी प्राप्त होती है|

2. वेदों में रेखागणित सम्बन्धी सामग्री ---------- में मिलती है|

3. किसी राशि में से किसी राशि को घटाने को--------- कहते हैं|

4.किसी संख्या को किसी किसी संख्या से गुणा करने को -------- कहते हैं|

(3) सही गलत का चयन कीजिये |

1. घन एवं घनमूल का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संकेत नहीं मिलता है, आर्यभट्ट, भास्कर आदि के ग्रन्थों में वर्ग के लिए 'कृति' शब्द का प्रयोग है| ( )

2. वेदों में 'भाग' शब्द का प्रयोग भाग या हिस्सा (Share) अर्थ में अनेक मंत्रों में हुआ है| ( )

3. अंकगणित में संख्याएँ व्यक्त नहीं होती हैं | ( )

4. वेदों में रेखागणित सम्बन्धी सामग्री सूत्ररूप में नहीं मिलती है| ( )

1.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, ख, ग, घ

2. रामायण, सूत्ररूप, व्यकलित, गुणन

3. सही, सही, गलत, गलत

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेदों में विज्ञान, लेखक डॉ कपिल देव द्विवेदी

2. वैदिक गणित, लेखक जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीभारती कृष्णतीर्थ जी महाराज

3. वेद विज्ञानश्री:, लेखक डॉ उर्मिला श्रीवास्तव

4. गणित का इतिहास, लेखक डॉ व्रज मोहन

5. वैदिक ज्ञान-विज्ञान, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय भारत सरकार

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. वैदिक गणित के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए|
2. गणितशास्त्र का महत्व लिखिए |
3. रेखागणित के बारे में स्पष्ट कीजिए |
4. अंकगणित के बारे में स्पष्ट कीजिए |

इकाई 2 भारतीय गणित के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ परम्परा

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 भारतीय गणित के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ परम्परा
2.3.1 गणित शास्त्र का अर्थ
2.3.2 गणितशास्त्र का परिचय
2.3.3 आर्यभट्ट
2.3.4 वराहमिहिर
2.3.5 ब्रह्मगुप्त
2.3.6 महावीराचार्य
2.3.7 भास्कराचार्य
2.3.8 श्रीधर
2.3.9 नारायण पण्डित
2.3.10 माधव
2.3.11 नीलकंठ सोमयाजी
2.3.12 पंडित जगन्नाथ
2.3.13 बापूदेव शास्त्री
2.3.14 सुधाकर द्विवेदी
2.3.15 श्रीनिवास रामानुजन
2.4 सारांश
2.5पारिभाषिक शब्दावली
2.6अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई 'भारतीय गणित के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ परम्परा' से सम्बन्धित है।भारत मेंप्रारंभिक काल से ही गणित महत्वपूर्ण विषय रहा है। भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परम्परा में प्रारम्भ से ही गणित को समस्त शस्त्रों में शीर्षस्थ कहा जाता है। शिष्ट समाज से लेकर जंगलों में रहने वाली सभी जातियाँ अपने-अपने ढंग से कामकाज चलाने के लिए हिसाब लगाती हैं। संसार के प्रायः सभी देशों में गणित का प्रारम्भ अंकों तथा गिनती से ही हुआ है, यही गिनती कुछ काल पश्चात अंकगणित में परिणित हो गई तथा दीर्घकाल बिताने पर गणित रूपी वृक्ष की अनेक शाखाएँ बीजगणित, त्रिकोणमिति एवं ज्यामिति आदि रूप में विकसित हुई। गणितशास्त्र को सुगम एवं सरल बनाने में कई आचार्यों ने अपना योगदान दिया।उन्हीं में से कुछ प्रमुख आचार्यों एवं उनके ग्रन्थों से परिचित करवाना इस इकाई का ध्येय है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- गणितशास्त्र के अर्थ को जानेंगे।
- गणितशास्त्र से परिचित होंगें।
- भारतीय गणित के प्रमुख आचार्य एवं उनके ग्रन्थों को जानेंगे।
- गणितशास्त्र के प्रति रुचि उत्पन्न होगी।
- जीवन में गणित की उपयोगिता को समझेंगे।

2.3 भारतीय गणित के प्रमुख आचार्य एवं ग्रन्थ परम्परा

भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परम्परा में प्रारम्भ से ही गणित को समस्त शस्त्रों में शीर्षस्थ कहा जाता है। आचार्यों का कथन है कि त्रैलोक्य में कुछ भी गणित के बिना सम्भव नहीं है। गणित के द्वारा गति का आकलन किया जाता है। वेदांग ज्योतिष में गणितशास्त्र का महत्व बताते हुए कहा गया है कि-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।। वेदाङ्गज्योतिष (याजुष)४

अर्थात जिस प्रकार मयूरों की शिखाएँ और नागों की मणियाँ सर्वोच्च स्थान पर रहती है, ठीक उसी प्रकार सारे वेदांगों में गणित का स्थान सर्वोपरि है।गणितशास्त्र के मर्मज्ञ महावीराचार्य ने (लगभग ८५० ई०) ने अपने ग्रन्थ 'गणितसारसंग्रह' में कहा है कि-

बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत् किंचिद् वस्तु तत् सर्वं गणितेन विना न हि।।

अर्थात अधिक गुणगान से क्या लाभ। इस चराचर जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके मूल में गणित न हो। गणित ज्ञान और विज्ञान की सभी शाखाओं का आधार है।

2.3.1 गणित शास्त्र का अर्थ

गणित का अर्थ है, जिसमें गणना की जाती है। इसी अर्थ में मित अर्थात 'नापा हुआ' और संख्यात अर्थात 'गिनती किया हुआ' शब्दों का भी प्रयोग कभी-कभी होता रहा है। किन्तु नाम प्रायः 'गणित' ही रहा है। गणित शब्द की व्युत्पत्ति गण् धातु से क्त प्रत्यय लगाकर की गई है। गण् धातु का अर्थ है 'गिनना' । क्त का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है, लेकिन 'गणित' शब्द के साथ निम्नलिखित अर्थों में किया जाता है-

१. भूतकालिक अर्थ अर्थात् गिना हुआ जैसे,

तस्माद्विक्रयः पण्यानां धृत्तो मितो गणितो वा कार्यः (कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ० ११०)

अर्थात विक्रयार्थ वस्तुओं को तोलकर, नाप कर अथवा गिनकर विक्रय करें। अमरकोष में भी कहा गया है 'संख्यातम् गणितम्' अर्थात् गणित का अर्थ है संख्या किया हुआ।

२. गणना अथवा हिसाब जैसे, गणित करके बताओ।

३. ज्योतिष, जिसमें प्रारम्भिक अंकगणित भी सम्मिलित था। क्योंकि वह उसका साधन था।

४. ग्रहगणित ज्योतिष की तीन शाखायें मानी जाती हैं। १. गणित अर्थात् ग्रहगणित, २. संहिता अर्थात सामान्य फलित ज्योतिष, ३. होरा अर्थात जातक शास्त्र जिसमें जन्मकाल की ग्रह-स्थिति के फलों का विवरण दिया रहता है।

पाणिनि के 'गण् संख्याने' अर्थात् गणधातु का अर्थ है संख्यान इस उक्ति से ही यह प्रतीत होता है कि संख्यान शब्द प्राचीन समय में गणना या गणित से अधिक प्रचलित था। बौद्धकाल में तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र में इसका बाहुल्य रूप से प्रयोग हुआ है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में एकाउण्टेंट के लिए संख्यायक शब्द आया है। परवर्ती काल में संख्यान शब्द केवल गणना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। जैसे-

लौकिके वैदिके वापि तथा सामयिकेऽपि यः ।
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते ।। (गणित सार० सं०)

गणित की प्रशंसा में यह वचन महावीराचार्य का है। वह कहते हैं कि लौकिक, वैदिक तथा अन्य सब प्रकार के सामयिक कृत्यों में संख्यान (गणना) का प्रयोग किया जाता है। गणना और गणित के शब्दार्थ मात्र से यह प्रतीत होता है कि गणना गिनने की क्रिया तथा गणित उसका फल है। जैसे- गिनने वाले णे २० आम गिने और कह दिया २०, यहाँ गिनने की क्रिया गणना से तथा २० गणित शब्द का वाच्यार्थ है।

गणना का प्रारम्भिक अर्थ गिनना अथवा गिनती ही था बाद में उसका गणित की प्रक्रियाओं द्वारा हिसाब लगाना अर्थ भी हो गया। आज भी जनगणना, पशुगणना आदि शब्दों में गणना का प्रारम्भिक अर्थ सुरक्षित है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में आया है **'विव्वस्त गणनां च कुर्यात्'** अर्थात टूटे हुए हथियारों का हिसाब रखें, इसमें भी गणना का उपरोक्त अर्थ ही है।

2.3.2 गणितशास्त्र का परिचय

भारतीय वैदिक साहित्य में गणित के ज्ञान का पर्याप्त परिचय मिलता है। गणित शास्त्र का प्रयोग सार्वभौम है। शिष्ट समाज से लेकर जंगलों में रहने वाली सभी जातियाँ अपने-अपने ढंग से कामकाज चलाने के लिए हिसाब लगाती हैं। संसार के प्रायः सभी देशों में गणित का प्रारम्भ अंकों तथा गिनती से ही हुआ है, यही गिनती कुछ काल पश्चात अंकगणित में परिणित हो गई तथा दीर्घकाल बिताने पर गणित रूपी वृक्ष की अनेक शाखाएँ बीजगणित, त्रिकोणमिति एवं ज्यामिति

आदि रूप में विकसित हुई। भारतीय परम्परा में गणित, नाट्यशास्त्र आदि का स्रोत यज्ञ रहा है। भिन्न-भिन्न देवताओं के पूजा समारोहों से ही प्राचीन ग्रीस में भी गणित और नाट्य आदि का विकास हुआ है। यज्ञ आदि हेतु वेदियों का निर्माण किया जाता था। यज्ञकाल के लिए उचित गणना की जाती थी, जैसे ज्योतिष सम्बन्धी गणना, गति, स्थिति आदि की आवश्यकता पड़ती थी। वैदिक साहित्य में ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन है। गणक, गण, गण्या आदि शब्द ऋग्वेद में मिलते हैं। गणित नक्षत्र विद्या के अंतर्गत आता था। यज्ञों को यथाकाल करने से ही शुभ फल की प्राप्ति तथा अनिष्टों की निवृत्ति होती थी। उचित काल जानने के लिए ज्योतिष की आवश्यकता पड़ी तथा उसका सम्यक ज्ञान नक्षत्र, वेध और ग्रहगणित से ही संभव था।

गणित की आवश्यकता विभिन्न क्षेत्रों में होती है, जैसे विज्ञान, इंजीनियरिंग, अर्थशास्त्र, और तकनीकी अनुप्रयोगों में इत्यादि। यह शास्त्र केवल संख्याओं तक सीमित नहीं है, अपितु यह सिद्धांतों, सूत्रों, और अवधारणाओं के माध्यम से विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान निकालने के लिए एक व्यवस्थित पद्धति प्रदान करता है।

गणित के कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं-

संख्याशास्त्र (Number Theory)यह संख्याओं और उनके गुणों का अध्ययन करता है, जैसे प्रधान संख्याएँ, पूर्णांक, और विभाजन आदि।

बीजगणित (Algebra)इसमें संख्याओं और प्रतीकों का प्रयोग करके समीकरणों का हल निकाला जाता है।

ज्यामिति (Geometry)यह रूपों, आकारों, और उनके गुणों का अध्ययन करता है, जैसे कि त्रिकोण, वृत्त, समतल, और ठोस आकार।

कलन (Calculus)यह शास्त्र परिवर्तन और गति के अध्ययन से संबंधित है। इसमें अवकलन (Differentiation) और समाकलन (Integration) की प्रक्रियाएँ शामिल हैं, जो निरंतर बदलती स्थितियों का अध्ययन करती हैं।

सांख्यिकी (Statistics)यह डेटा के संग्रह, विश्लेषण और व्याख्या के लिए विधियाँ प्रदान करता है।

संभाव्यता (Probability)यह घटना के घटित होने की संभावना का अध्ययन करता है।

गणित का इतिहास बहुत प्राचीन है और इसकी जड़ें विभिन्न सभ्यताओं में पाई जाती हैं, जैसे प्राचीन मिस्र, ग्रीस, भारत, और चीन । गणित ने सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

2.3.3 आर्यभट्ट

आर्यभट्ट का जन्म कुसुमपुर (पटना) में ४७६ ई० में हुआ था। इन्होंने अपने ग्रंथों में गणितीय सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रतिपादन किया है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ **'आर्यभटीयम्'** है। इस ग्रन्थ की रचना पद्धति वैज्ञानिक है तथा यह चार भागों में विभाजित है- जिनमें दो पाद गणित विषयक तथा खगोलविषयक हैं। इन्होंने अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और त्रिकोणमिति के ३३ सूत्र दिए हैं।इन्होंने संख्या लिखने की अनोखी रीति का निर्माण किया। जैसे- क से प्रारम्भ करके वर्ग अक्षरों को वर्ग स्थानों और अवर्ग अक्षरों को अवर्ग स्थानों में व्यवहार करना चाहिए। इसी प्रकार ङ और म मिलकर य होता है। वर्ग और अवर्ग स्थानों के अंत के पश्चात दोहरानी चाहिए। इकाई, सैकड़ा, दस

हजार व दस लाख आदि विषम स्थानों को वर्ग स्थान और दहाई, हजार, लाख आदि स्थानों को अवर्ग स्थान कहते हैं। जैसे-

क-१ ख-२ ग-३ घ-४

ङ-५ च-६ छ-७ ज-८

झ-९ ञ-१० ट-११ठ-१२

ड-१३ ढ-१४ ण-१५ त-१६

थ-१७ द-१८ ध-१९ न-२०

प-२१ फ-२२ ब-२३ भ-२४

म-२५ य-३० र-४० ल-५०

व-६० श-७० ष-८०

स-९० ह-१००

इसी प्रकार

अ = १

इ = १००

उ = $१००^{२}$ = १०,०००

ऋ = $१००^{३}$ = १०,००,०००

ऌ = $१००^{४}$ = १०,००,००,०००

पाई का सूक्ष्म मान – दो आयुत (२०,०००) विष्क्रम्भ व्यास वाले वृत्त की परिधि का आसन्नमान ६२,८३२ होता है।

$\frac{६२,८३२}{२०,००}$ = ३.१४१६ = π

वर्गमूल-

भागं हरेदववर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन।
वर्गादवर्गे शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मूलम्।।

अर्थात अंतिम वर्ग स्थान में से बड़ी से बड़ी जो वर्ग संख्या घट जाए, उसे घटा दो। सर्वदा वर्गमूल के दोगुने से अवस्थित को भाग दो। भाग करने से प्राप्त लब्धि के वर्ग स्थानों से घटाओ। अलग पंक्ति में रखी हुई संख्या वर्गमूल सूचित करती है।

घनमूल- अंतिम घन स्थान में से सबसे बड़ी संख्या घटाओ। उसके बाद द्वितीय अघन स्थान से आरम्भ करके जो संख्या बाईं ओर हो उसे घनमूल के वर्ग के तिगुने से भाग दो। इसके बाद प्रथम घन से आरम्भ करके बायीं ओर जो संख्या हो उसमें से त्रिगुणित घनमूल के गुणनफल को तथा अगले घन स्थान से लब्धि के घन को घटाओ।

बीजगणितीय प्रक्रियाएँ-जैसेदो वणिकों के पास कुछ गायें तथा कुछ नकद रुपया है। पहले के पास १०० रुपये तथा ६ गायें तथा दूसरे के पास ६० रुपये व ८ गायें हैं। यदि दोनों की धनराशियाँ, जिसमें गायों का मूल्य भी सम्मिलित है, बराबर हों तो दोनों के पास कुल कितनी संपत्ति है?

अर्थात १०० + ६ य = ६० + ८ य

२ य = ४०, य = २०, उत्तर = २२०

रेखागणितीय प्रक्रियाएँ- जैसे परिधि के छठे भाग की ज्या उसकी त्रिज्या के समान होती है। इसी प्रकार यदि वृत्त का व्यास बीस हजार हो तो उसकी परिधि ६२८३२ होती है।

आर्यभट्ट ने वर्गक्षेत्र, घनमूल, त्रिभुज का क्षेत्रफल, शंकु, गोल एवं कर्णों के संपात आदि के साधारण नियम दिये हैं।

2.3.4 वराहमिहिर

आचार्य वराहमिहिर प्रख्यात ज्योतिषशास्त्र एवं गणितशास्त्र के ज्ञाता थे। ज्योतिष की तीनों शाखाओं पर इनके ग्रन्थ हैं। इन्होंने स्वयं अपने काल का उल्लेख नहीं किया है पर अपने ग्रन्थ **'पञ्चसिद्धान्तिका'** में गणितारम्भ वर्ष शके ४२७ माना है। यदि 'पञ्चसिद्धान्तिका' ४२७ में बनाई हो तो इनका जन्म शके ४०७ से पूर्व होना चाहिए क्योंकि २० वर्ष से कम अवस्था में ऐसा ग्रन्थ बनाना असम्भव है। बृहज्जातक में इन्होंने अपने सम्बन्ध में कहा है-

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः काम्पिल्लके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार॥

अर्थात् काम्पिल्ल (कालपी) नगर में सूर्य से वर प्राप्त कर अपने पिता आदित्यदास से ज्योतिषशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की, अनन्तर उज्जैनी में जाकर रहने लगे और वहीं पर बृहज्जातक की रचना की। यह त्रिस्कन्ध ज्योतिषशास्त्र के रहस्यवेत्ता, नैसर्गिक कविता-लता के प्रेमाश्रय कहे गये हैं। आचार्य वराहमिहिर द्वारा अपने पिता की स्मृति में स्थापित 'कापित्थका गुरुकुल' ७०० वर्षों तक गणित का विख्यात केंद्र रहा है। गणित के इतिहास में यह 'उज्जैन गुरुकुल' के नाम से जाना जाता है। कापित्थका गुरुकुल का गणित के विकास में अति महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य एवं भास्कराचार्य इसी गुरुकुल के उद्भट गणितज्ञ रहे हैं।

आचार्य वराहमिहिर की मृत्युकाल के विषय में एक वाक्य प्रचलित है-

नवाधिकपञ्चशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः।

2.3.5 ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त का जन्म राजस्थान के भीनमाल नामक स्थान में ५९८ ई० में हुआ था। इन्होंने **"ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त"** और **"खण्डखाद्य"** की रचना की है। इन्होंने शून्यपरिकर्म, क्षेत्रमिति के उच्च नियम, बीजगणित तथा अनन्तरराशि के नियम समझाये।**"ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त"** में २१ अध्याय हैं जिनमें दो अध्याय गणित पर तथा शेष ज्योतिष सम्बन्धी हैं। इन अध्यायों में अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामिति के सूत्र हैं।

परिकर्मविंशतिमिमां संकलिताद्यां पृथग्विजानाति।
अष्टौ व व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः॥(ब्रा० स्फु० सि०)

अर्थात संकलित आदि गणित की २० क्रियाओं तथा ८ व्यवहारों को जो जानता है वही गणक है। वैदिक काल में गणक, ज्योतिषी को कहते थे किन्तु अब गणित स्वतंत्र सत्ता रखने लगा।

परिकर्म- संकलित, व्यवकलित, प्रत्युत्पन्न, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भागजाति, प्रभागजाति, भागानुबंध जाति, भागापवाह जाति, भागमाता जाति, त्रैराशिक, व्यस्तत्रैराशिक, पंचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, एकादशराशिक तथा भांडप्रतिभांड।

व्यवहार- मिश्रक, श्रेढी, क्षेत्र, खात, चिति, क्राकचिक, राशिक और छाया।

बीजगणित पर सर्वप्रथम **"ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त"** का कुट्टक अध्याय मिलता है उस समय कुट्टक-समीकरण (Indeterminate equation) के साधनको अत्यंत महत्वपूर्ण समझा जाता था। बीजगणित को कुट्टक कहा गया है। उदाहरण-

अवयक्तान्तरभक्तं व्यस्तं रूपान्तरं स्मेऽव्यक्तः। (ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त)

अर्थात् अचरों के अंतर को गुणांकों के अंतर से भाग देने पर अव्यक्त का नाम व्यक्त हो जाता है।

जैसे- कय + ख = गय = घ तो य = $\frac{\text{घ}-\text{ख}}{\text{क}-\text{ग}}$

इन्होंने समखात (Prism) सूची (Cone या Pyramid) के घनफल निकालने का नियम बताया।

इन्होंने गुणोत्तर श्रेणी के योग के नियम दिये। इस उदाहरण में अंत्यधन अंतिम पद के लिए गुण सार्व अनुपात के लिए तथा गु, गुणधन (Common ratio)के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

श्रेणी योग =

$$\frac{\text{आ} - \text{गु}^{\text{स}-१} \times \text{गु- आ}}{\text{गु} - १}$$

$$\frac{\text{आ} - \text{गु}^{\text{स}} - १}{\text{गु-१}}$$

यहाँ अंत्यधन आ गु-१ है।

यूक्लिड का प्रमेय (Euclid's theorem) यदि दो जीवाएँ परस्पर एक-दूसरे को काटती हों तो एक के अन्तः खंडों की गुणा दूसरे के अन्तः खंडों की गुणा के बराबर होती है।

पाइथागोरस प्रमेय यह प्रमेय शुल्वकाल में ही भारत में ज्ञात था परन्तु ब्रह्मगुप्त ने इसे विस्तृत रूप से वर्णित किया-

कर्णकृतेः कोटिकृतिं विशोध्य मूलं भुजो भुजस्य कृतिम्।
प्रोह्य पदं कोटि कोटिबाहुकृतियुतिपदं कर्णः।।

अर्थात- कर्ण^{२} - कोटि^{२} = भुज^{२}

कर्ण^{२} - भुज^{२} = कोटि^{२}

कोटि^{२} - भुज^{२} = कर्ण^{२}

ब्रह्मगुप्त ने चतुर्भुज के परिगत वृत की त्रिज्या निकालने का भी नियम बताया है।

2.3.6 महावीराचार्य

ब्रह्मगुप्त के उपरान्त दक्षिण के प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ महावीराचार्य ८५० ई० में हुए। इन्होंने गणित के अनेक नवीन सिद्धान्त निकाले। इनकी बनाई हुई **'गणितसार-संग्रह'** अंकगणित की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक है। इनके द्वारा बताये गये सिद्धान्त कुछ इस प्रकार से हैं-

लघुत्तम समापवर्त्य (Lowest Common Multiple) का नियम आविष्कृत किया जिसको उन्होंने निरुद्ध शब्द से द्योतित किया-

छेदापवर्तकानां लब्धानां चाहतौ निरुद्धः स्यात्।

अर्थात छेदों (Denominator) के अपवर्तकों अर्थात् समापवर्तकों तथा उनसे प्राप्त लब्धियों को परस्पर गुणा करने से निरुद्ध प्राप्त होता है। यूरोप में इस विधि पता १५वीं शती में चला।

ब्रह्मगुप्त और महावीर दोनों ने चतुर्भुज के क्षेत्रफल का यह निम्न नियम दिया था, जो कि केवल वृत्तांतर्गत चतुर्भुज के विषय में शुद्ध है-

√ स (स-अ) (स-ब) (स-च) (स-द)

भिन्नो, श्रेढियों तथा अंकगणितीय प्रश्नों का विशद और विस्तृत रूप गणितसारसंग्रह में मिलता है।

आयातवृत्त (दीर्घवृत्त) का क्षेत्रफल – दीर्घाक्ष में अर्धलध्वक्ष को जोड़ें तथा २ से गुणा करें। इस प्रकार दीर्घवृत्त की परिधि ज्ञात होती है। पुनः १/२ लध्वक्ष को परिधि से गुणा करने पर उसका क्षेत्रफल प्राप्त होता है लेकिन यह नियम स्थूल है।

2.3.7 भास्कराचार्य

भास्कराचार्य ज्योतिषशास्त्र एवं गणितशास्त्र के असाधारण विद्वान हुए हैं । भारत ही नहीं अपितु बाहर भी इनकी कीर्ति लगभग ७०० वर्षों से फैली हुई है । **'सिद्धान्तशिरोमणि'** और **'करणकुतूहल'** नामक इनके दो गणित ज्योतिष ग्रन्थ हैं । इन्होंने सिद्धान्त शिरोमणि के गोलाध्याय में लिखा है-

रसगुणपूर्णमही १०३६ समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः ।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणि रचितः ॥५८॥

इससे यह ज्ञात होता है कि इनका जन्म शके १०३६ में हुआ और इन्होंने ३६ वर्ष की अवस्था में **'सिद्धान्तशिरोमणि'** की रचना की **'करणकुतूहल'** में आरम्भ वर्ष ११०५ है अर्थात वह उसी समय लिखी गयी है । इनके पिता का नाम महेश्वर उपाध्याय था । इन्होंने एक स्थान पर लिखा है-

आसीन्महेश्वर इति प्रथितः पृथिव्यामाचार्यवर्यपदवीं विदुषां प्रपन्नः ।
लब्धावबोधकलिकां तत एव चक्रे तज्जेन बीजगणितं लघुभास्करेण ॥

इससे स्पष्ट है कि महेश्वर इनके पिता और गुरु दोनों ही थे । इनके द्वारा रचित लीलावती, बीजगणित, सिद्धान्तशिरोमणि, करणकुतूहल और सर्वतोभद्र ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं ।

ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त और पृथूदक स्वामी के भाष्य को मूल मानकर इन्होंने अपना सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ का निर्माण किया । तथा आर्यभट्ट, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि के मतों की समालोचना की है ।

लीलावतीग्रन्थ में उन्होंने अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति के सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया। लीलावती भास्कराचार्य की पुत्री का नाम था। इस ग्रन्थ के अनेक अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुके हैं। लीलावती में पूर्णांक और भिन्न, त्रैराशिक, ब्याज, व्यापार गणित, मिश्रण, श्रेणियाँ और श्रेढियाँ, क्रमचय (Permutations),मापिकी और थोड़ा सा बीजगणित। लीलावती की भाषा साहित्यिक है।

भास्कराचार्य की द्वितीय पुस्तक बीजगणित है जिसमें ५ प्रकरण हैं- करणियाँ, शून्य, गणित, सरल, समीकरण, वर्गसमीकरण तथा कुट्टक ।

१. ऋण राशियाँ बताने के लिए ऊपर बिंदी लगाना। यथा, -क = कं आदि।
२. अज्ञात राशि के लिए यावत्तावत् का प्रयोग करना।
३. अज्ञात राशियों के लिए रंगों के नामों का प्रयोग करना जैसे- कालक (का), नीलक (नी), पीतक (पी), रुपक (रु) आदि।
४. एकघात अनिर्णीत समीकरण, युगपद एकघात समीकरण तथा द्विघात समीकरणों का साधन।
५. अनिर्णीत वर्ग समीकरण की विधि बहुत ही प्रतिभापूर्ण व मौलिक है जैसे-
क $य^2$ + १ = $र^2$इसका नाम इन्होंने चक्रवाल विधि (Cyclic Method) रखा है।

खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव च्युतं शून्यतस्तद्विपर्यासमेति।

अर्थात शून्य को किसी राशि में जोड़ने अथवा शून्य में किसी राशि को जोड़ने अथवा शून्य को किसी राशि में से घटाने से राशि में कोई परिवर्तन नहीं होता।

० + अ = अ, अ + ० = अ, अ - ० = अ, लेकिन ० – अ ∞ अ बल्कि ० – अ = -अ

भास्कराचार्य के ग्रन्थ '**लीलावती**' पर जितनी भी टीकाएँ हुई, उन सबके टीकाकार भी गणित परम्परा के आचार्य माने जाने लगे, जैसे- गंगाधर (१४२०ई०) ने गणितमृतसागरी तथा अमृतसागरी, गणेश (१५०७ ई०) ने बुद्धिविलासिनी, सूर्यदास (१५०७ ई०) नेगणितामृतकूपिका,कृष्ण (१५८४ ई०) ने बीजपल्लव या कल्पलतावतार, रंगनाथ (१६४३ ई०) ने मितभाषिणी, रामकृष्ण ने बीजप्रबोध इत्यादि टीकाएँ लिखीं।

2.3.8 श्रीधर

श्रीधराचार्य बीजगणित के असाधारण आचार्य हुए। इन्होंने त्रिशतिका, पाटीगणित एवं बीजगणित (लुप्त) लिखकर गणित पद्धति को आगे बढ़ाया। इनका काल ७५० ई० के आस-पास माना जाता है। त्रिशतिका में ३०० श्लोक हैं जिनमें श्रेढ़ी व्यवहार, क्षेत्र व्यवहार, चिति व्यवहार, राशि व्यवहार व छाया व्यवहार का वर्णन है। श्रीधर ही अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने बीजगणित विषय का ज्यामितीय उपचार किया।

2.3.9 नारायण पण्डित

नारायण पंडित का समय १३५६ ई० माना जाता है। इनके पिता का नाम नृसिंह दैवज्ञ था। इन्होंने गणित शास्त्र के दो ग्रंथों की रचना की- गणितकौमुदी और बीजगणितावतंस । गणितकौमुदी को १३५६ ई० की रचना माना जाता है। इस ग्रन्थ में १४ अध्याय हैं। इसमें अंकगणित के आठ परिकर्म जो कि प्रायः सभी ग्रन्थों में मिलते हैं, इसके अतरिक्त श्रेढि का भी प्रयोग किया गया है। इन्होंने त्रिभुजात्मक अंकों (Triangular numbers) के योग की पद्धति का निर्माण किया। बीजगणित में बीजगणितीय समस्याओं के साथ-साथ लगभग मान (approximate values) और अवर्गात्मक संख्याओं के वर्गमूल निकालने की विधि प्रस्तुत की है।

2.3.10 माधव

आचार्य माधव का समय १४००ई० माना जाता है। इनका निवास स्थान केरल था। इन्होंने वेण्वारोह ग्रन्थ क रचना की। के. वी. शर्मा ने मलयाली टीका के साथ १९५६ में इसे संपादित किया। इनका प्रमुख योगदान गोलीयखगणित (Spherical astronomy) के क्षेत्र में है इसलिए ये गोलवित् के नाम से जाने जाते हैं। विद्वता के कारण इनके परिवार को बकुलविहारम् उपाधि से भूषित किया गया था। वेण्वारोह चन्द्रमा की स्पष्ट गतियों को प्रस्तुत करने वाला गणितीय ग्रन्थ है जिसमें त्रिकोणमिति की सूक्ष्मताएँ तथा पाई (π) सूक्ष्म मान का विचार किया गया है। नीलकंठ ने माधव को बार-बार उद्धृत किया है।

2.3.11नीलकंठ सोमयाजी

नीलकंठ सोमयाजी अथवा नीलकंठ सोमसुत्वन १४४३-१५४३ ई० के एक प्रमुख ज्योतिर्विद् थे परन्तु इनका गणित के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। यह दक्षिण मालाबार के त्रिक्कट्यूर स्थान के केल्लालूर परिवार के नम्बूदिरी ब्राह्मण थे। इन्होंने अप् को भट्ट, गर्ग गोत्रीय तथा आश्वलायन परम्परा का बताया है। इनके पिता का नाम जातदेव था। ये भगवान शिव के अनन्य भक्त थे। इन्होंने शिक्षा गुरु दामोदर से ली। इन्होंने आर्यभटीयभाष्य तथा तंत्रसंग्रह नाम का मूल ग्रन्थ लिखा। तंत्रसंग्रह में इन्होंने गणितीय प्रक्रियाओं, बीजगणितीय समस्याओं और ज्यामिति पर प्रकाश डाला। ज्योतिर्विज्ञान में इनके अन्य ग्रन्थ गोलसार, चंद्रच्छायागणित तथा चंद्रच्छायागणितटीका हैं।

2.3.12 पंडित जगन्नाथ

पंडित जगन्नाथ ने राजा जयसिंह के साथ काम किया। इनका समय १६५७-१७५० ई० है। ये बीस वर्ष की आयु में जयसिंह के पास आए और खगोल व गणित का अध्ययन किया। ये संस्कृत, फारसी और अरबी भाषा के विद्वान थे। इन्होंने यूक्लिड की ऐलीमेंट्स का फारसी से संस्कृत भाषा में अनुवाद किया। इनकी पुस्तक का नाम रेखागणित है। वर्तमान रेखागणित की हिन्दी शब्दावली इसी पुस्तक पर आधारित है। इनका दूसरा ग्रन्थ सिद्धान्त सम्राट है जो कि १७३१ टॉल्मी (Ptolemy) के अलमेजिस्ट (Almagest) का संस्कृत अनुवाद है।

2.3.13 बापूदेव शास्त्री

बापूदेव शास्त्री का जन्म महाराष्ट्र प्रांत के अहमदनगर जिले में गोदा नदी के किनारे टोंके गाँव में १८२१ ई० में हुआ। इन्होंने नागपुर में ढुण्ढिराज मिश्र से बीजगणित, लीलावतीतथा सिद्धान्तशिरोमणि का अध्ययन किया और अंत में काशी आकर संस्कृत कॉलेज में गणित के अध्यापक हुए। इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी प्राप्त हुई। इन्होंने रेखागणित प्रथमाध्याय, त्रिकोणमिति, प्राचीन ज्योतिषाचार्याशयवर्णन, अष्टादशविचित्रप्रश्नसंग्रह- सोत्तर, तत्त्वविवेकपरीक्षा, मानमन्दिरस्थयंत्रवर्णन और अंकगणित की रचना की। ये सब संस्कृत भाषा में हैं और प्रकाशित ह चुके हैं।

2.3.14 सुधाकर द्विवेदी

सुधाकर द्विवेदी का जन्म शक समवत् १७८२ (१८६०) चैत्र शुक्ल ४, सोमवार को हुआ। इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी मिली थी। गणितशास्त्र को दिया गया इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

१. दीर्घवृत्तलक्षणम् (शक १८००)- इसमें दीर्घवृत्त के लक्षण व नियम सोपपत्तिक विस्तारपूर्वक बताये गये हैं।
२. विचित्रप्रश्नसमंग-इसमें ग्रहण करने की विधि बतायी है।
३. ग्रहणकरण- इसमें ग्रहण करने की विधि बतायी है।
४. गोलीयरेखागणित- यह ज्यामिति का ग्रन्थ है। इसके अतरिक्त इन्होंने सिद्धान्तज्योतिष सम्बन्धी वास्तवचंद्रशृंगोन्नतिसाधन,द्युचरचार, पिण्डप्रभाकर, भाभ्रमरेखानिरुपण और गणकतरंगिणी ग्रन्थों की रचना की। इन्होंने कई ग्रन्थों पर संस्कृत भाषा में टीकाएँ लिखी।

2.3.15 श्रीनिवास रामानुजन

श्रीनिवास रामानुजन एक महान भारतीय गणितज्ञ थे। इन्हें आधुनिक काल के महानतम गणित विचारकों में गिना जाता है। इनका जन्म २२ दिसंबर १८८७ को दक्षिण भारत में स्थित कोयंबटूर के ईरोड नामके गाँव में हुआ था। इन्होंने बहुत कम आयु में ही गणित का कौशल प्राप्त कर लिया था। १२ वर्ष की आयु में इन्होंने त्रिकोणमिति में दक्षता प्राप्त कर लि थी। रामानुजन ने अपने ३२ वर्ष की अल्प आयु में ३९०० परिमाणों समीकरणों और सर्वसमिकाओं का संकलन किया है। उनके महत्वपूर्ण कार्यों में पाई (Pi) की अनंत श्रेणी सामिल थी। उन्होंने पाई के अंकों की गणना करने के लिए कई सूत्र प्रदान किए जो परम्परागत तरीकों से अलग थे।

रामानुजन के विविध कार्य क्षेत्र-

रामानुजन के कार्यों कों निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जाता है-

१. निश्चयात्मक अवकलन-सूत्र (Definite integrals)
२. मॉडुलर समीकरण (Modular equations)
३. रीमान्स-जीटा फलन (Riemann's Zeta Furcation)
४. अनंत श्रेणियाँ (Infinite Series)
५. अनंत श्रेणियों का योग (Summation of Series)
६. एनालिटिक संख्या-शास्त्र (Analytic number theory)
७. अस्मटोटिक सूत्र (Asymptotic formula)
८. विभक्तियाँ (Partitions)
९. संयोजन-शास्त्र (Combinatorics)

रामानुज संख्याएँ- 'रामानुज संख्याएँ' उस प्राकृतिक संख्या को कहते हैं जिसे दो अलग-अलग प्रकार से दो संख्याओं के घनों के योग द्वारा निरूपित किया जा सकता है।

$९^३ + १०^३ = १^३ + १२^३ = १७२९$

2.4 सारांश

प्रारम्भिक काल से ही गणित महत्वपूर्ण विषय रहा है।भारतीय वैदिक साहित्य में गणित के ज्ञान का पर्याप्त परिचय मिलता है। भारतवर्ष में आर्यभट्ट,वराहमिहिर, भास्कराचार्य श्रीनिवास रामानुजन सहित अनेक विद्वान हुए। जिन्होंने भारतीय गणित की परम्परा को आगे बढ़ाया।

गणित शास्त्र का प्रयोग सार्वभौम है। शिष्ट समाज से लेकर जंगलों में रहने वाली सभी जातियाँ अपने-अपने ढंग से कामकाज चलाने के लिए हिसाब लगाती हैं। गणित की प्रकृति के अनुसार गणित विषय गणना का माध्यम है। गणित अन्य विषयों का आधार है। गणित की प्रशंसा में महावीराचार्य का कथन है कि-लौकिक, वैदिक तथा अन्य सब प्रकार के सामयिक कृत्यों में संख्यान (गणना) का प्रयोग किया जाता है। गणना और गणित के शब्दार्थ मात्र से यह प्रतीत होता है कि गणना गिनने की क्रिया तथा गणित उसका फल है। गणित को विज्ञान की आधारशिला कहा जाता है। गणित ही सृष्टि रचना के मूल में है। संसार की प्रत्येक वस्तु किसी नियम से बद्ध है, उसमें कोई क्रम है। उस नियम और क्रम का ज्ञान गणित का विषय है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में गति है। गति का सम्बन्ध गणना से होता है, और गणना गणित का विषय है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह एवं पृथिवी की गति के ज्ञान से ही सूर्योदय और सूर्यास्त, सूर्य-ग्रहण, चन्द्रग्रहण, भू-परिक्रमा आदि का ज्ञान होता है। पूरा ज्योतिष शास्त्र गणित पर निर्भर है। स्थान और समय का निर्धारण गणित के आधार पर ही होता है।

2.5पारिभाषिक शब्दावली

- **बीजगणित**- गणित की वह शाखा जिसमें अमूर्त प्रतीकों या चिह्नों का प्रयोग करके समस्याओं का हल किया जाता है।
- **संख्या पद्धति-** कोई वस्तु कितनी है, यह जानने का प्रयास ही संख्या पद्धति के ज्ञान को ग्रहण करने का प्रयास है।
- **ज्यामिति-** गणित की वह शाखा जिसमें रेखाओं, आकृतियों और सतहों का अध्ययन किया जाता है।
- **अंकगणित-** गणित की वह शाखा जिसमें संख्याओं का हिसाब किया जाता है।
- **त्रिकोणमिति-** त्रिकोणमिति में त्रिभुजों की भुजाओं और कोणों के बीच के संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिए।

1. 'गणितसारसंग्रह' के रचयिता हैं।
   (क) भास्कराचार्य (ख) आर्यभट्ट
   (ग) महावीराचार्य (घ) रामानुजन
2. 'लीलावती' ग्रन्थ के रचयिता हैं।
(क) आर्यभट्ट (ख) वारहमिहिर
(ग) सुधाकर (घ) भास्कराचार्य
3. श्रीनिवास रामानुजन का जन्म हुआ था।

(क) जन्म २२ दिसंबर १८८७ (ख) जन्म २२ दिसंबर १८८८

(ग) जन्म २३ दिसंबर १८८७ (घ) जन्म २१ दिसंबर १८८०

4.आर्यभट्ट का जन्म कुसुमपुर (पटना) में हुआ था।

(क) ४४० ई० (ख) ४७६ ई०

(ग) ४५६ ई० (घ) ४६६ई०

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. श्रीनिवास रामानुजन एक महान भारतीय---------थे।

2.ब्रह्मगुप्त का जन्म राजस्थान के भीनमाल नामक स्थान में --------- ई० में हुआ था।

3. आचार्य माधव का समय १४००ई० माना जाता है। इनका निवास स्थान -------- था।

4.भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परम्परा में प्रारम्भ से ही गणित को समस्त शास्त्रों में---कहा जाता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिए।

1.गणित शब्द की व्युत्पत्ति गण् धातु से क्त प्रत्यय लगाकर की गई है। ( )

2.**"ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त"** में २१ अध्याय हैं जिनमें दो अध्याय गणित पर तथा शेष ज्योतिष सम्बन्धी हैं। इन अध्यायों में अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामिति के सूत्र हैं। ( )

3. ब्रह्मगुप्त के उपरान्त दक्षिण के प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ महावीराचार्य ८५१ ई० में हुए। ( )

4. 'गोलीयरेखागणित' यह ज्यामिति का ग्रन्थ है। ( )

2.6अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.ग, घ, क, ख,

2. गणितज्ञ, ५९८, केरल, शीर्षस्थ

3. सही, सही, गलत, सही

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेदों में विज्ञान, लेखक डॉ कपिलदेव द्विवेदी

2. वेदविज्ञानश्री:, लेखक डॉ उर्मिला श्रीवास्तव

3. संस्कृत वाङमय में विज्ञान का इतिहास, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT)

4. प्राचीन भारतीय गणित, लेखक डॉ व० ल० उपाध्याय

5. गणित का इतिहास, लेखक डॉ ब्रज मोहन

6.अद्भुत गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन, लेखक नरेन्द्र कुमार गोविल, भूदेव शर्मा)

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गणित शास्त्र का परिचय दीजिए।

2. भास्कराचार्य का परिचय दीजिए।

3. आर्यभट्ट का परिचय दीजिए।

4. भारतीय गणित के प्रमुख आचार्यों का परिचय संक्षिप्त में दीजिए।

इकाई 3 उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित (जैन, बौद्ध आदि)

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित (जैन, बौद्ध आदि)
3.3.1 उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित
3.3.2 जैन गणित का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य
3.3.3 बौद्ध गणित का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य
3.4 सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावन

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई 'उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित जैन, बौद्ध आदि' से सम्बन्धित है। भारतीय ज्ञान परम्परा में 'वेद' को सर्वोपरि माना जाता है। वेद विश्व वांगमय मेंप्राचीनतम ज्ञान के रत्न हैं। वेदों में धर्म, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, आचारशास्त्र, आयुर्वेद, दर्शन, संगीत आदि समस्त विषयों का पर्याप्त वर्णन मिलता है। प्रचलित संख्या पद्धति आधुनिक विश्व को भारतवर्ष की ही देन है। वेदों में गणितशास्त्र से सम्बद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। उनमे एक संख्या से लेकर परार्द्ध संख्या तक का उल्लेख है। उनमे १० संख्या का महत्व, उसके गुणन, स्थानमान तथा भाग आदि का वर्णन है। वेदों में गणित शब्द का उल्लेख नहीं मिलता लेकिन कुछ अन्य शब्द मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि गणना की विधि ज्ञात थी। गणित एक ऐसा विषय है जिसकी व्यापकता सार्वभौम है। गणित विज्ञान एवं तकनीकी का मेरुदण्ड है। इसीलिए वेदांग ज्योतिष में ऋषि लगध ने कहा है कि सभी वेदांग शास्त्रों के शीर्ष पर गणित उसी प्रकार सुशोभित है जैसे मोर के सिर पर शिखा तथा सर्प के फन पर मणि सुशोभित है। भारतीय गणित का शुभारम्भ 'ऋग्वेद' से माना जाता है।गणित के इतिहास को पाँच काल खण्डों में विभक्त किया गया है- १. आदिकाल (५०० ई.पू. तक) २. पूर्वमध्य काल (५०० ई.पू. से ४००ई. तक) ३. मध्यकाल अथवा स्वर्णकाल (४०० ई. से १२०० ई. तक) ४. उत्तरमध्य काल (१२०० ई. से १८०० ई. तक) ५. वर्तमान काल (१८०० ई. के पश्चात)।भारतीय गणित को आदिकाल से वर्तमान तक सुलभ एवं सुगम बनाने में गणितशास्त्र के आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।जैन गणितज्ञ महावीराचार्य ८५० ई० में हुए। इन्होंने गणित के अनेक नवीन सिद्धान्त निकाले। इनकी बनाई हुई 'गणितसार-संग्रह' अंकगणित की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक है।आगे चलकर गणित शास्त्र के आचार्यब्रह्मगुप्त हुये इनका जन्म राजस्थान के भीनमाल नामक स्थान में ५९८ ई० में हुआ था। इन्होंने "ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त" और "खण्डखाद्य" की रचना की है। इन्होंने शून्यपरिकर्म, क्षेत्रमिति के उच्च नियम, बीजगणित तथा अनन्तरराशि के नियम समझाये।

3.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित के बारे में जानेंगे।
- गणित को कितने काल खण्डों में विभक्त किया गया है? यह जानेंगे।
- जैन गणित का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य को जानेंगे।
- बौद्ध गणित का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य को जानेंगे।
- भारतवर्ष के महान गणितज्ञों के बारे में जानेंगे।
- भारतीय गणित के प्रति रुचि उत्पन्न होगी।

3.3 उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित (जैन, बौद्ध आदि)

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रारम्भ से ही गणित को महत्वपूर्ण विषय माना गया है। गणित ज्ञान और विज्ञान की सभी शाखाओं का आधार है।वेदांग ज्योतिष में गणित का महत्व बताते हुए कहा गया है कि-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।। वेदाङ्गज्योतिष (याजुष)४

अर्थात जिस प्रकार मयूरों की शिखाएँ और नागों की मणियाँ सर्वोच्च स्थान पर रहती है, ठीक उसी प्रकार सारे वेदांगों में गणित का स्थान सर्वोपरि है।गणितशास्त्र के मर्मज्ञमहावीराचार्य ने (लगभग ८५० ई०) अपने ग्रन्थ 'गणितसारसंग्रह' (अध्याय १,श्लोक ९-१९) में कहा है कि-

बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत् किंचिद् वस्तु तत् सर्वं गणितेन विना न हि।।

अर्थात् अधिक गुणगान से क्या लाभ। इस चराचर जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके मूल में गणित न हो। गणित ज्ञान और विज्ञान की सभी शाखाओं का आधार है।

वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान का स्रोत हैं। वेदों में गणितशास्त्र से सम्बद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। उनमे एक संख्या से लेकर परार्द्ध संख्या तक का उल्लेख है। उनमे १० संख्या का महत्व, उसके गुणन, स्थानमान तथा भाग आदि का वर्णन है। वेदों में गणित शब्द का उल्लेख नहीं मिलता लेकिन कुछ अन्य शब्द मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि गणना की विधि ज्ञात थी। यजुर्वेद (३०,२०) और तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.४.१५) में गणक (गणना करने वाला, ज्योतिषी) शब्द मिलता है। गणनासूचक गण, गणपति, गणाश्रि, गणिन्, गण्य आदि शब्द ऋग्वेद और यजुर्वेद में अनेक मंत्रों में आये हैं। ऋग्वेद में 'व्रातव्रातम्, गणंगणम्' शब्द गणना के आधार पर किए गए समूहों या वर्गों के लिए हैं। इसी प्रकार यजुर्वेद और अथर्ववेद में निधि, निधिपति, निधिपा शब्द कोष और कोषागार के अध्यक्ष के लिए हैं। ये कोष की गणना करते थे। यजुर्वेद में वित्तध शब्द भी कोषागार के अध्यक्ष के लिए आया है। यजुर्वेद में ज्योतिषी के लिए 'नक्षत्रदर्श' शब्द है और गणित विद्या जानने के कारण उसके ज्ञान की प्रशंसा की गयी है । छान्दोग्य उपनिषद् में सर्वप्रथम गणितशास्त्र का 'राशिविद्या' और ज्योतिष का 'नक्षत्रविद्या' नाम से उल्लेख है। वर्णन आता है कि सनत्कुमार के पूछने पर नारद जी ने बताया कि मैंने चारों वेद, इतिहास, पुराण, ब्रह्मविद्या आदि के साथ राशिविद्या और नक्षत्रविद्या का भी अध्ययन किया है। राशिविद्या शब्द अंकगणित के लिए है और नक्षत्रविद्या ज्योतिष के लिए है। इससे यह ज्ञात होता है कि अध्यात्म या पराविद्या के जिज्ञासु के लिए गणित और ज्योतिष का भी ज्ञान आवश्यक है।

भारतीय गणित का शुभारम्भ 'ऋग्वेद' से माना जाता है। गणित के इतिहास को पाँच काल खण्डों में विभक्त किया गया है-

१. आदिकाल (५०० ई.पू. तक)
   (क) वैदिक काल (१००० ई.पू. तक)
   (ख) उत्तरवैदिक काल (१००० ई.पू. से ५०० ई.पू. तक) उत्तर वैदिक काल को दो भागों में विभक्त किया गया है।

i. शुल्व एवं वेदांग ज्योतिष काल

ii. सूर्य प्रज्ञप्तिकाल

२. पूर्वमध्य काल (५०० ई.पू. से ४००ई. तक)

३. मध्यकाल अथवा स्वर्णकाल (४०० ई. से १२०० ई. तक)

४. उत्तरमध्य काल (१२०० ई. से १८०० ई. तक)

५. वर्तमान काल (१८०० ई. के पश्चात)

विश्व में लगभग सभी देशों में गणित का प्रारम्भ अंकों तथा गिनती से ही हुआ है, यही गिनती कुछ काल पश्चात अंकगणित में परिणित हो गई तथा दीर्घकाल बिताने पर गणित रूपी वृक्ष की अनेक शाखाएँ बीजगणित, त्रिकोणमिति एवं ज्यामिति आदि रूप में विकसित हुई।भारतीय परम्परा में गणित, नाट्यशास्त्र आदि का स्रोत यज्ञ रहा है। भिन्न-भिन्न देवताओं के पूजा समारोहों से ही प्राचीन ग्रीस में भी गणित और नाट्य आदि का विकास हुआ है। यज्ञ आदि हेतु वेदियों का निर्माण किया जाता था। यज्ञकाल के लिए उचित गणना की जाती थी, जैसे ज्योतिष सम्बन्धी गणना, गति, स्थिति आदि की आवश्यकता पड़ती थी। प्रायः गणित की आवश्यकता विभिन्न क्षेत्रों में होती है, जैसे विज्ञान, इंजीनियरिंग, अर्थशास्त्र, और तकनीकी अनुप्रयोगों में इत्यादि। यह शास्त्र केवल संख्याओं तक सीमित नहीं है, अपितु यह सिद्धांतों, सूत्रों, और अवधारणाओं के माध्यम से विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधाननिकालने के लिए एक व्यवस्थित पद्धति प्रदान करता है।

3.3.1 उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित

वेदों में उपलब्ध आख्यानों में रामायण, महाभारत एवं पुराणों की रचना हुई। दार्शनिक सूक्तों से दर्शनशास्त्र, धर्मसूत्रों से धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र तथा अर्थवादात्मक सूक्तों से काव्य साहित्य का उद्भव हुआ। वेदांगों से गणित-विज्ञान, खगोल विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्विज्ञान, रसायनविज्ञान, भौतिकी, शिल्पविज्ञान आदि का उत्तरवर्ती विकास हुआ।

उत्तरवैदिक काल (१००० ई. पू. से ५०० ई.पू. तक)

i. शुल्व एवं वेदांग ज्योतिष काल-शुल्व वह (रस्सी) होती थी, जो यज्ञ वेदी का निर्माण करने के लिए माप में काम आती थी। शुल्व काल की विश्व को सबसे बड़ी देन रेखागणित के ज्ञान की नींव डालना है। प्रारम्भ से ही भारतवर्ष धर्मपरायण देश रहा है। प्राचीन भारत के लोगों का विश्वास था कि मोक्ष प्राप्ति का सबसे बड़ा साधन यज्ञ है। यज्ञ भी अनेक प्रकार के होते हैं जैसे अश्वमेध यज्ञ, पुत्रेष्टि यज्ञ आदि। इन यज्ञों के लिए वेदियों के आकार प्रकार भी सुनिश्चित थे।शुल्व सूत्रों में रेखागणित के सूत्रों का विकास एवं विस्तार उपलब्ध होता है। इनमें तीन सूत्रकारों के नाम प्रमुख हैं- १. बोधायन, २. आपस्तम्ब और ३. कात्यायन।इनके अतरिक्त मैत्रायण, वाराह, मानव एवं बाधुल इस काल के प्रसिद्ध सूत्रकार हैं।

पाइथागोरस प्रमेय का ज्ञान- बोधायन के निम्नलिखित सूत्र में पाइथागोरस प्रमेय का ज्ञान अंतर्निहित है **"दीर्घचतुरश्रस्याक्ष्ण्या रज्जुः पाश्र्वमानी तिर्याङ्मानी च यत्पृथग्भूते कुरु तस्तदुभयं करोति।"**(बो० शुल्व सूत्र)

अर्थात् **दीर्घचतुरश्र** (आयत) की **तिर्याङ्मानी** (लम्ब) और **पाश्र्वमानी** (आधार) भुजायें जो दो वर्ग बनाती हैं उनके योग के बराबर अकेली **अक्ष्ण्यारज्जु** (कर्ण) वर्ग बनाती है। पेइथागोरस का समय ५४० ई०पू० है, जबकि बोधायन का समय लगभग १००० ई०पू० है।

बौधायन ने दो वर्गों के योग और अन्तर के बराबर वर्ग बनाने की विधि बताई है, और करणीगत संख्या का मान दशमलव के पाँच स्थानों तक निकालना भी बताया है। बौधायन ने अन्य करणीगत संख्याओं के मान भी दिये हैं। यज्ञों के लिए जिस प्रकार वेदी में माप हेतु रज्जु का प्रयोग किया गया और शुल्व सूत्रों के स्थापन हुई, ठीक उसी प्रकार यज्ञ के लिए समुचित काल हेतु ज्योतिष का भी विकास हुआ। अत: शुल्व काल को वेदांग ज्योतिष काल भी कहा जाता है। ज्योतिष के क्षेत्र में गणित का विकास काल-गणना की आवश्यकता को लेकर हुआ।

ii. सूर्य प्रज्ञप्तिकाल- सूर्यप्रज्ञप्ति तथा चंद्रप्रज्ञप्ति ५००ई० पू० के प्रसिद्ध जैन धार्मिक ग्रन्थ हैं। सूर्यप्रज्ञप्ति में 'दीर्घवृत' का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, अर्थात् दीर्घ (आयत) पर बना परिवृत जिसको परिमण्डल के नाम से जाना जाता था। 'परिमण्डल' शब्द दीर्घवृत के लिए प्रयुक्त किया है जिसके दो प्रकार बताये गये हैं- १. प्रतरपरिमण्डल, २. घन परिमण्डल।जैनाचार्यों का गणित और ज्योतिष में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन आचार्यों ने तैशाशिक व्यवहार तथा मिश्रानुपात, लेकन पद्धति, बीजगणितीय समीकरण, विविध श्रेणियाँ क्रमचय-संचय, समुच्चय सिद्धान्त, घातांक एवं लघुगणक के नियम आदि विषयों पर प्रकाश डाला है। बौद्ध साहित्य में भी गणित को पर्याप्त महत्व दिया गया है। इसमें गणित को गणना तथा संख्यान (उच्चगणित) को दो भागों में बाँटा गया है। संख्याओं का वर्णन तीन प्रकार से है-

१. संख्येय अर्थात गिनने योग्य।

२. असंख्येयअर्थात अगण्य योग्य।

३. अनन्तअर्थात असीम।

3.3.2 जैन गणित का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य

जैन साहित्य में गणित विषय का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। जैन साहित्य धर्म व दर्शन प्रधान है, तो भी उसमें गणित-शास्त्र का उपयोग व व्याख्यान पद-पद पर पाया जाता है। जैन धर्म में गणित विज्ञान एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। यह जैन परम्परा का हिस्सा है संख्यान (अंक और ज्योतिष) जैन मुनियों की साधन का महत्वपूर्ण अंग रहा है। जैन धर्म में ७२ विज्ञानों तथा कलाओं में अंकगणित को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। जैन वांगमय को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। उसे गणितानुयोग भी कहा जाता है। गणितीय सिद्धान्तों द्वारा सृष्टि-संरचना को स्पष्ट करना तथा कर्म-सिद्धान्त की व्याख्या करना जैन आचार्यों का प्रमुख दृष्टिकोण है। अतः मात्र करणानुयोग का ही नहीं, अपितु द्रव्यानुयोग के ग्रन्थों का भी अध्ययन गणित के परिपक्व ज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। गणित के महत्व को बताते हुए महावीराचार्य ने कहा है कि- "सांसारिक ग्रन्थों में गणितीय सामग्री प्रत्यक्ष रूप परोक्ष रूप में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। हमारे प्राचीन ज्ञान-भण्डार में आगम साहित्य का बहुत महत्व है। ऐसे ही एक महत्वपूर्ण वैदिक तथा धार्मिक आदि सभी कार्यों में गणित उपयोगी है"।

जैन गणितज्ञ महावीराचार्य और गणितसार-संग्रह-

प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ महावीराचार्य ८५० ई० में हुए। इन्होंने गणित के अनेक नवीन सिद्धान्त निकाले। इनकी बनाई हुई **'गणितसार-संग्रह'** अंकगणित की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक है।

संस्कृत भाषा में लिखी गणितसार-संग्रह में महावीराचार्य ने गणित का विलक्षण तरीके से विवेचन किया है। यह जैन परम्परा का सर्व प्रथम गणित विषयक ग्रन्थ की श्रेणी में आता है। इसमें गणित के

नियमों के साथ-साथ गणित सम्बन्धी प्रश्न भी दिये गये हैं। जो अत्यंत मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धक होते हैं। गणितसार-संग्रह में नौ अधिकार (अध्याय) हैं।

इनके द्वारा बताये गये सिद्धान्त कुछ इस प्रकार से हैं-

लघुत्तम समापवर्त्य (Lowest Common Multiple) का नियम आविष्कृत किया जिसको उन्होंने निरुद्ध शब्द से द्योतित किया- **छेदापवर्तकानां लब्धानां चाहतौ निरुद्धः स्यात्।**

अर्थात् छेदों (Denominator) के अपवर्तकों अर्थात् समापवर्तकों तथा उनसे प्राप्त लब्धियों को परस्पर गुणा करने से निरुद्ध प्राप्त होता है। यूरोप में इस विधि का पता १५वीं शती में चला।

ब्रह्मगुप्त और महावीर दोनों ने चतुर्भुज के क्षेत्रफल का यह निम्न नियम दिया था, जो कि केवल वृत्तांतर्गत चतुर्भुज के विषय में शुद्ध है-

√ स (स-अ) (स-ब) (स-च) (स-द)

भिन्नो, श्रेढियों तथा अंकगणितीय प्रश्नों का विशद और विस्तृत रूप गणितसारसंग्रह में मिलता है।

आयातवृत्त (दीर्घवृत्त) का क्षेत्रफल – दीर्घाक्ष में अर्धलध्वक्ष को जोड़ें तथा २ से गुणा करें। इस प्रकार दीर्घवृत्त की परिधि ज्ञात होती है। पुनः १/२ लध्वक्ष को परिधि से गुणा करने पर उसका क्षेत्रफल प्राप्त होता है लेकिन यह नियम स्थूल है।

यदि जैन लोग इस युग के अपने धार्मिक ग्रन्थों को संजोए न रखते तो आज गणित का तत्कालीन इतिहास पूर्ण रूप से अन्धकार-विलीन हो गया होता। स्थानांगसूत्र, भगवतीसूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्र इस युग के प्रमुख ग्रन्थ हैं। इस युग के प्रमुख आविष्कार तथा महत्वपूर्ण कृतियाँ ये हैं-

१. दशमिक अंक-लेखन प्रणाली।
२. शून्य का आविष्कार।
३. बीजगणित का आविष्कार।
४. अंकगणित का विकास-वक्षाली-गणित।
५. ज्योतिष का विकास और सूर्यसिद्धान्त की रचना।

परिकर्म्म व्यवहारो रज्जु रासी क्लासवन्ने य।
जावन्तावति वग्गो घनो ततह वग्गवग्गो विकप्पोत।। (स्थानांग सूत्र,७४७)

अर्थात् ३५० ई०पू० भारतवासी परिकर्म्म (मूलभूत क्रियायें), व्यवहार (व्यवहार गणित Practical Arithmetic), रज्जु (रेखागणित), राशि (त्रैराशिक नियम), कलासवर्ण (भिन्न क्रिया), यावत्तावत (सरल समीकरण), वर्ग (वर्ग समीकरण), घन (घन समीकरण) वर्गवर्ग (चतुर्घात समीकरण), विकल्प (क्रमचय तथा संचय) जानते थे।

दशमिक अंकलेखन प्रणाली और शून्य-

आचार्य पिंगल के छन्दशास्त्र में शून्य के सांकेतिक चिह्न का प्रयोग किया गया था। उसमे छन्द के प्रस्तार करने हेतु लिखा गया है कि **'रुपे शून्यम्'** इसका अर्थ है कि विषम संख्या में से एक घटाने पर शून्य स्थापित करिये। **'द्वि शून्ये'** अर्थात शून्य स्थान में दो बार आवृत्ति कीजिए। इससे यह पता चलता है कि २०० ई० पू० शून्य का कोई चिह्न अवश्य रहा होगा। अतः दशमिक अंकलेखन

प्रणाली तथा शून्य का आविष्कार अगभग २०० ई० पू० का है। भारतीयों का सबसे बड़ा आविष्कार शून्य सहित दशमिक संख्या पद्धति तथा दशमिक अंकलेखन प्रणाली है। संसार में बुद्धि और सभ्यता के विकास में सहायक सबसे महत्वपूर्ण गणितीय आविष्कार यही है। १ से ९ तक के अंकों तथा शून्य के द्वारा बड़ी से बड़ी संख्या बड़ी सरलता तथा कुशलता से लिखी जा सकती है। यही कारण है कि विश्व भर ने इस प्रणाली को अपना लिया है।

3.3.3 बौद्ध गणित का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य

बौद्ध काल में दुनियाँ अपने ज्ञान के चरम पर थी। तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला नामक महानतम विश्वविद्यालयों में विश्वभर के लोग ज्योतिष, गणित, खगोल और धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थों का अध्ययन करने आते थे। बौद्ध कालीन गणित का अपना विशिष्ट महत्व रहा है। बौद्ध साहित्य भी अनिश्चयात्मक और असीम संख्याओं के प्रति जागरूकता प्रदर्शित करता है। बौद्ध गणित का विभाजन गणना अर्थात सरल गणित या सांख्यन अर्थात उच्चतर गणित में हुआ है।

प्राचीन बौद्ध साहित्य में गणित के भेद-

१. मुद्रा (अंगुलियों पर गिनना)

२. गणना (सामान्य गणित, मौखिक गणना)

३. संख्यान (उच्च गणित)

दीर्घनिकाय, विनयपिटक, दिव्यावदान और मिलिन्दपंहो ग्रन्थों में इन तीनों का उल्लेख मिलता है। गणित के अर्थ में 'संख्यान' शब्द का प्रयोग अनेक ग्रन्थों में मिलता है। प्राचीन गणित में ज्योतिष भी समिलित था। क्षेत्रगणित या ज्यामिति (Geometry) का उल्लेख वेदांग के रूप प्रचलित 'कल्पसूत्र' और शुल्बसूत्रों में मिलता है। बाद में ज्योतिष स्वतन्त्र विषय हो गया और क्षेत्रगणित या ज्यामिति गणित का अंग हो गया। आगे चलकर अज्ञात राशि से सम्बन्ध रखने वाला बीजगणित (Algebra) कहलाया। यह पृथक करण सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त ने किया। उन्होंने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त ग्रन्थ में बीजगणित से सम्बद्ध अध्याय को 'कुट्टकाध्याय' कहा है।

आचार्य ब्रह्मगुप्त—

ब्रह्मगुप्त का जन्म राजस्थान के भीनमाल नामक स्थान में ५९८ ई० में हुआ था। इन्होंने **"ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त"** और **"खण्डखाद्य"** की रचना की है। इन्होंने शून्यपरिकर्म, क्षेत्रमिति के उच्च नियम, बीजगणित तथा अनन्तरराशि के नियम समझाये।**"ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त"** में २१ अध्याय हैं जिनमें दो अध्याय गणित पर तथा शेष ज्योतिष सम्बन्धी हैं। इन अध्यायों में अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामिति के सूत्र हैं।

परिकर्मविंशतिमिमां संकलिताद्यां पृथग्विजानाति।
अष्टौ व व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः।।(ब्रा० स्फु० सि०)

अर्थात् संकलित आदि गणित की २० क्रियाओं तथा ८ व्यवहारों को जो जानता है वही गणक है। वैदिक काल में गणक, ज्योतिषी को कहते थे किन्तु अब गणित स्वतंत्र सत्ता रखने लगा।

परिकर्म- संकलित, व्यवकलित, प्रत्युत्पन्न, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भागजाति, प्रभागजाति, भागानुबंध जाति, भागापवाह जाति, भागमाता जाति, त्रैराशिक, व्यस्तत्रैराशिक, पंचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, एकादशराशिक तथा भांडप्रतिभांड।

व्यवहार- मिश्रक, श्रेढी, क्षेत्र, खात, चिति, क्राकचिक, राशिक और छाया।

बीजगणित पर सर्वप्रथम **"ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त"** का कुट्टक अध्याय मिलता है उस समय कुट्टक-समीकरण (Indeterminate equation) के साधनको अत्यंत महत्वपूर्ण समझा जाता था। बीजगणित को कुट्टक कहा गया है। उदाहरण-

अवयक्तान्तरभक्तं व्यस्तं रूपान्तरं स्मेऽव्यक्तः। (ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त)

अर्थात् अचरों के अंतर को गुणांकों के अंतर से भाग देने पर अव्यक्त का नाम व्यक्त हो जाता है।

जैसे- कय + ख = गय = घ तो य = $\frac{\text{घ}-\text{ख}}{\text{क}-\text{ग}}$

इन्होंने समखात (Prism) सूची (Cone या Pyramid) के घनफल निकालने का नियम बताया।

इन्होंने गुणोत्तर श्रेणी के योग के नियम दिये। इस उदाहरण में अंत्यधन अंतिम पद के लिए गुण सार्व अनुपात के लिए तथा गु, गुणधन (Common ratio) के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

श्रेणी योग =

$$\frac{\text{आ} - \text{गु}^{\text{स}-१} \times \text{गु} - \text{आ}}{\text{गु} - १}$$

$$\frac{\text{आ} - \text{गु}^{\text{स}} - १}{\text{गु}-१}$$

यहाँ अंत्यधन आ गु-१ है।

यूक्लिड का प्रमेय (Euclid's theorem) यदि दो जीवाएँ परस्पर एक-दूसरे को काटती हों तो एक के अन्तः खंडों की गुणा दूसरे के अन्तः खंडों की गुणा के बराबर होती है।

पाइथागोरस प्रमेय यह प्रमेय शुल्वकाल में ही भारत में ज्ञात था परन्तु ब्रह्मगुप्त ने इसे विस्तृत रूप से वर्णित किया-

कर्णकृतेः कोटिकृतिं विशोध्य मूलं भुजो भुजस्य कृतिम्।
प्रोह्य पदं कोटि कोटिबाहुकृतियुतिपदं कर्णः।।

अर्थात-कर्ण^२ - कोटि^{२} = भुज^२

कर्ण^२ - भुज^२ = कोटि^{२}

कोटि^{२} - भुज^२ = कर्ण^२

ब्रह्मगुप्त ने चतुर्भुज के परिगत वृत की त्रिज्या निकालने का भी नियम बताया है।

भारतीय अंक अपने आधुनिक रूपमें७वीं और ११वीं सदी के मध्य विकसित हो चुके थे। साथ ही विभिन्न गणितीय क्रियाओं को दर्शाने वाले संकेतों जैसे- धन, ऋण, वर्गमूल आदि का भी विकास हुआ। भारत ने अंकों के अलावा शून्य की भी खोज की शून्य से पहले भी विश्व में अनेक प्रकार की अंक प्रणाली थी। शून्य आविष्कार के पश्चात भी यह प्रणालियाँ प्रचलित थी। पहले लोग ९ के पश्चात ११ लिख देते थे या मान लेते थे। परन्तु विद्वानों के अनुसार उत्तर वैदिक काल में शून्य के आविष्कार के पश्चात गणित में एक नया परिवर्तन हुआ।

अंकगणित- अंकगणित का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। इसकी जानकारी वैदिक ग्रंथों से प्राप्त होती है। वैदिक एवं सूत्र ग्रंथों के बाद रामायण में भी अंकगणित की जानकारी प्राप्त होती है। जिसमें शत, सहस्र, कोटि, शंख, महाशंख, वृन्द आदि शब्द मिलते हैं। गणित के सामान्य प्रश्न पाटी (तख्ती, पट्ट

या फलक) पर या मिट्टी में अंक लिखकर किए जाते थे, अतः अंकगणित का नाम 'पाटीगणित' या 'धूलिकर्म' पड़ गया। अंकगणित में संख्याएँ व्यक्त होती हैं, अतः उसे 'व्यक्तगणित कहा जाता है, और संखयाएँ अव्यक्त होने के कारण बीजगणित को 'अव्यक्तगणित' भी कहा जाता है।

अंकगणित के आठपरिकर्म (Fundamental Operations)

१. संकलित (जोड़), २. व्यवकलित (घटाना), ३. गुणन (गुणा करना), ४. भागहार (भाग देना), ५. वर्ग (Square),६. वर्गमूल (Square-root), ७. घन (Cube), ८. घनमूल (Cube-root)

रेखागणित- वैदिक काल में गणित का परिचय कल्प नामक वेदांग में सुल्व सूत्रों के रूप में ३००० ई० पू० मिलता है। वेदी मापन में प्रयोग होने वाली रस्सी को सुल्व कहा जाता है। पाइथागोरस के नाम से जो प्रमेय वर्तमान समय में प्रचलित है, उस प्रमेय की रचना शुल्व सूत्रों में 'बौद्धायन शुल्व सूत्र में हो चुकी थी। शुल्व सूत्रों के रचिताओं में बौद्धायन, आपस्तम्भ, कात्यायन, मानव, मैत्रायण आदि के नाम जाने जाते हैं।

ज्यामिति के क्षेत्र में आर्यभट्ट, भास्कर प्रथम, ब्रह्मगुप्त, महावीर का विशेष योगदान रहा है। आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ में मुख्यतः त्रिभुज, चतुर्भुज, वृत्त के क्षेत्रफल, ठोसों के आयतन के सूत्र लिखे हैं। आचार्य भास्कर ने 'लीलावती' के 'क्षेत्र व्यवहार' नामक अध्याय में समकोण त्रिभुज व चतुर्भुज के क्षेत्रफल, वृत्त-क्षेत्रफल, गोलों के तल व आयतन आदि पर विस्तार से विवेचना की है।

बीजगणित- भास्कराचार्य के अनुसार बीजगणित एवं अंकगणित में संरचना और सिद्धान्त के विचार से अनेक समानताएँ हैं। इन दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि अंकगणित में व्यक्त (ज्ञात) राशि की बात की जाती है जबकि बीजगणित में अव्यक्त (अज्ञात) राशि की बात की जाती है। बीजगणित में अंकों की सहायता के बिना संकेताक्षरों या वर्णों से गणित की क्रिया की जाती है।

भास्कराचार्य के अनुसार अंकगणित से जिन प्रश्नों को हल करने में कठिनाई होती है उन प्रश्नों को बीजगणित से हल किया जा सकता है। अंकगणित की अपेक्षा प्रतीकों का प्रयोग कर, कम श्रम से अत्यन्त व्यापक फल प्राप्त करना बीजगणित की उपलब्धि है। इसीलिए बीजगणित को भाषा की 'आशुलिपि' (short hand) कहते हैं।

3.4 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई में आपने 'उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित जैन, बौद्ध आदि' का अध्ययन किया। आपने जाना कि भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रारम्भ से ही गणित को महत्वपूर्ण विषय माना जाता रहा है। वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान का स्रोत हैं। वेदों में गणितशास्त्र से सम्बद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। उनमे एक संख्या से लेकर परार्द्ध संख्या तक का उल्लेख है। उनमे १० संख्या का महत्व, उसके गुणन, स्थानमान तथा भाग आदि का वर्णन है। वेदों में गणित शब्द का उल्लेख नहीं मिलता लेकिन कुछ अन्य शब्द मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि गणना की विधि ज्ञात थी। जैन साहित्य यद्यपि धर्म व दर्शन प्रधान है। तथापि उसमें गणित शास्त्र का उपयोग व व्याख्यान पद-पद पर पाया जाता है। जैन गणित में महावीराचार्य का 'गणितसार संग्रह' प्रसिद्ध है। यदि जैन लोग इस युग के अपने धार्मिक ग्रन्थों को संजोए न रखते तो आज गणित का तत्कालीन इतिहास पूर्ण रूप से अन्धकार-विलीन हो गया होता। स्थानांगसूत्र, भगवतीसूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्र इस युग के प्रमुख

ग्रन्थ हैं। इस युग के प्रमुख आविष्कार तथा महत्वपूर्ण कृतियाँ ये हैं- दशमिक अंक-लेखन प्रणाली, शून्य का आविष्कार, बीजगणित का आविष्कार, अंकगणित का विकास- वक्षाली-गणित, ज्योतिष का विकास और सूर्यसिद्धान्त की रचना। बौद्ध काल में दुनियाँ अपने ज्ञान के चरम पर थी। तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला नामक महानतम विश्वविद्यालयों में विश्वभर के लोग ज्योतिष, गणित, खगोल और धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थों का अध्ययन करने आते थे। बौद्ध कालीन गणित का अपना विशिष्ट महत्व है। बौद्ध साहित्य भी अनिश्चयात्मक और असीम संख्याओं के प्रति जागरूकता प्रदर्शित करता है। बौद्ध गणित का विभाजन गणना अर्थात सरल गणित या 'सांख्यन' अर्थात उच्चतर गणित में हुआ है। संख्याएँ तीन प्रकार की मानी गई हैं। 'संख्येय' अर्थात गिनने योग्य, 'असंख्येय' अर्थात अगण्य योग्य, 'अनन्त' अर्थात असीम। भारत ने अंकों के अलावा शून्य की भी खोज की शून्य से पहले भी विश्व में अनेक प्रकार की अंक प्रणाली थी। शून्य आविष्कार के पश्चात भी यह प्रणालियाँ प्रचलित थी।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

प्रणाली - पद्धति
विभाजन - बाँटना, विभाग करना
रूपान्तर - रूप का बदलना
समखात - समान
व्यक्त - ज्ञात
अव्यक्त - अज्ञात
परोक्ष - जो आँखों के सामने न हो, आँखों से ओझल
चाप - एक वृत्त की परिधि का एक भाग

अभ्यासप्रश्न—

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. भारतीय गणित का शुभारम्भ किससे माना जाता है?
   (क) ऋग्वेद (ख) यजुर्वेद
   (ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद
2. 'शुल्व' का अर्थ होता है।
   (क) माप (ख) आधार
   (ग) वेदी (घ) रस्सी
3. 'विनयपिटक' ग्रन्थ है।
   (क) जैन (ख) बौद्ध
   (ग) अद्वैत (घ) इनमे से कोई नहीं
4. गणितसार-संग्रह में महावीराचार्य ने किसका विलक्षण तरीके से विवेचन किया है?
   (क) समाजशास्त्र का (ख) न्याय का
   (ग) गणित का (घ) रसायन शास्त्र का

5. 'पाटीगणित' कहा जाता है।

(क) बीज गणित को (ख) अंकगणित को

(ग) रेखागणित (घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1.शुल्व वह (रस्सी) होती थी, जो यज्ञ वेदी का निर्माण करने के लिए ---------- में काम आती थी।

2. वेद समस्त ---------- का स्रोत हैं।

3. जैन धर्म में ---------- विज्ञानों तथा कलाओं में अंकगणित को सर्वाधित महत्व दिया गया है।

4. बौद्ध गणित का विभाजन गणना अर्थात सरल गणित या सांख्यन अर्थात---------- गणित में हुआ है।

5. शुल्व काल की विश्व को सबसे बड़ी देन ---------- के ज्ञान की नींव डालना है।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1. छान्दोग्य उपनिषद् में सर्वप्रथम गणितशास्त्र का 'राशिविद्या' और ज्योतिष का 'नक्षत्रविद्या' नाम से उल्लेख है। ( )

2. जैन धर्म में गणित विज्ञान एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। ( )

3. बौद्ध काल में तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला नामक महानतम विश्वविद्यालयों में विश्वभर के लोग ज्योतिष, गणित, खगोल और धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थों का अध्ययन करने आते थे। ( )

4. 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' आर्यभट्ट की प्रमुख रचना है। ( )

5.वैदिक एवं सूत्र ग्रंथों के बाद रामायण में भी अंकगणित की जानकारी प्राप्त होती है। ( )

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, घ, ख, ग, ख

2. माप, ज्ञानिविज्ञान, ७२, उच्चतर, रेखागणित

3. सही, सही, सही, गलत, सही

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेदों में विज्ञान, लेखक डॉ कपिलदेव द्विवेदी

2. वैदिक ज्ञान-विज्ञान विशेषांक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय भारत सरकार

3. संस्कृत वाङमय में विज्ञान का इतिहास, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT)

4. प्राचीन भारतीय गणित, लेखक डॉ व० ल० उपाध्याय

5. गणित का इतिहास, लेखक डॉ ब्रज मोहन

6. वेदविज्ञानश्री: (वैदिक वांगमय में विज्ञान), लेखिका डॉ उर्मिला श्रीवास्तव

7. गणितसार-संग्रह, लेखक महावीराचार्य, संपादक लक्ष्मीचन्द्र जैन

8. गणित का शिक्षणशास्त्र (भाग १) उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तरवैदिक कालीन भारतीय गणित के बारे में बताईए।
2. जैन गणित को स्पष्ट कीजिए।
3. बौद्ध गणित को स्पष्ट कीजिए।
4. आचार्य ब्रह्मगुप्त के गणित के नियमों को संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिए।

खण्ड- चार (Section-D)
सृष्टि विज्ञान

इकाई.1 सृष्टि की वैदिक अवधारणा

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 सृष्टि की वैदिक अवधारणा
    1.3.1 वैदिक सृष्टि की विवेचना
    1.3.2 वैदिकवाङ्मय में सृष्टि की परिकल्पना
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रमाण-पत्र पाठ्यक्र के अन्तर्गत वैदिक विज्ञान एवं गणित से सम्बन्धित यह चतुर्थ खण्ड (सृष्टि विज्ञान) की यह प्रथम इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने विज्ञान एवं गणित के सिद्धान्तों का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप सृष्टि की वैदिक अवधारणा के विषय में जानेंगे।

संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सर्वोपरि है । भारत मे धर्म व्यवस्था वेदों से ही है । और वेद धर्म निरूपण मैं स्वतंत्र प्रमाण हैं, स्मृति इत्यादि उसीका अनुसरण करते है। वेद शब्द 'विद्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से बनता है। इस धातु के बहुत-से अर्थ हैं जैसे 'विद ज्ञाने', 'विद सत्तायाम्', 'विद विचारणे', 'विद्लृ लाभे, 'विद चेतनाख्याननिवासेषु' जिनसे सत्यासत्य, पापपुण्य, धर्माधर्म, तथा विधिनिषेध का विवेक समुद्भूत हो, जिनके द्वारा सब सुखों का लाभ होता है और जिनमें सकलविद्याएँ बीजरुप में विद्यमान रहती हैं- वे ग्रन्थ वेद कहलाते हैं। महर्षि मनु कहते कहते हैं-**"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"** वेद धर्म का मूल है । **"सर्वज्ञानमयो हि सः"** अर्थात् वेद सकलज्ञान से भरपूर है। **" विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्था यैस्ते वेदाः"** अर्थात् धर्म, अर्थ, काम , मोक्ष इन पुरुषार्थ जिससे है वह वेद है । एक अन्य प्रचलित व्याख्या है के - **"अपौरुषेयं वाक्यं वेद"** अर्थात् जो वाक्य किसी पुरुष से नही कहा है यानी अपौरुषेय है वैसा वाक्य वेद है। वैदिक विज्ञान, राष्ट्रधर्म, समाज-व्यवस्था, पारिवारिक-जीवन, वर्णाश्रम-धर्म, सत्य, प्रेम, अहिंसा, त्याग आदि को दर्पण की भाँति दिखाता है। वेद संसाररूपी सागर से पार उतरने के लिए नौकारूप हैं। वेद में मनुष्यजीवन की सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान है। अज्ञानान्धकार में पड़े हुए मनुष्यों के लिए वे प्रकाशस्तम्भ हैं, भूले भटके लोगों को वे सन्मार्ग दिखाते हैं। आचार्य सायण के अनुसार **"इष्टप्राप्त्यनिष्ट-परिहारयोरलौकिकम् उपायं यो ग्रन्थो वेदयति, स वेदः"** अर्थात् इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के निवारण का उपाय जो बतलाएं वे ग्रन्थराशि वेद कहलाते हैं।

वैदिक वाङ्मय में सृष्टि के विषय पर कई स्थानों पर विचार किया गया है। उपनिषदों में इस विषय पर विस्तार से विचार किया गया है। पुराण, महाभारत, मनुस्मृति, दर्शन, ज्योतिषादि ग्रन्थों में भी सृष्टि की अवधारणा का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विज्ञान का मानना यह है कि सृष्टि की उत्पत्ति Bing-bang (भयंकर विस्फोट) के साथ ही प्रारमभ हुई और परिवर्तन के कई चरणों से गुजरती हुई वर्तमान स्थिति में पहुँची है। ठपह ठंदह के साथ ही आकाश और समय का कार्य प्रारमभ हुआ। सृष्टि उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार रहा- आकाश, ज्वलनशील वायु, अग्नि, जल और निहारिका का मण्डल। निहारिका मण्डल में ही सौर मण्डलों ने स्थान पाया। पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से छिटक कर अलग होने के बाद धीरे-धीरे परिवर्तित होकर वर्तमान रूप में हुई। श्वास लेने योग्य वायु के बनने, पानी के पीने योग्य होने पर पानी के अन्दर सर्वप्रथम जलचरों को जीवन मिला। फिर क्रमशः जल-स्थलचर, स्थलचर और आकाशचर प्राणियों की उत्पत्ति हुई। सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व क्या था? इस विषय में विज्ञान का कहना है कि Bing-bang के बाद ही सृष्टि नियम विकसित हुए हैं। सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? इससे पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि सृष्टि की उत्पत्ति का कार्य कब प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि का प्रारम्भ कब हुआ यह एक अत्यन्त महत्पूर्ण विषय है। वेद

सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान के आदि स्रोत हैं। सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन ऋग्वेद के अदिति सूक्त विश्वकर्मा सूक्त, पुरुष सूक्त, प्रजापति सूक्त, नासदीय सूक्त, ऋत् सूक्त तथा अथर्ववेद के कालसूक्त आदि सूक्तों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी सृष्टि विषयक अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते है। इस इकाई में आप वेदों में सृष्टि विषयक परिकल्पना एवं वैदिक अवधारणाओं के विषय में विस्तार से पढेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- वेद के अर्थ को बताने में समर्थ होंगे।
- विभिन्न सूक्तों में वर्णित सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।
- शास्त्रपरम्परा के अनुसार सृष्टि की परिल्पना का विवेचन करने में समर्थ होंगे।
- सृष्टि की वैदिक परिकल्पना की व्याख्या कर सकेंगे।
- पुराणों में सृष्टि की परिकल्पना का वर्णन कर सकेंगे
- सृष्टि के अर्थ को बताने में समर्थ होंगे।
- सृष्टि की उत्पत्ति का समय बता सकेंगे।

1.3 सृष्टि की वैदिक अवधारणा

सृष्टि का शाब्दिक अर्थ है निर्माण रचना अथवा उत्पत्ति। अर्थात् किसी वस्तु की उत्पत्ति अथवा निर्माण सृष्टि कहलाती है। जगत् की सृष्टि एक महत्वपूर्ण विषय है। सृष्टि की अवधारणा के विषय में ज्ञान प्राप्त करने पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि इस चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ। इस विषय में सूचना का सन्दर्भ वेदों का नेत्र स्वरूप ज्योतिषशास्त्र है। ज्योतिषशास्त्र सृष्ट्यादि से लेकर प्रलय पर्यन्त काल की गणना की गई है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कालमानाध्याय में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। अर्थात् ब्रह्मा का कल्प तुल्य दिन पूर्ण होने पर प्रलय होती है। तदनन्तर एक कल्प तुल्य रात्रि में वह विश्राम करते है। द्वितीय अहोरात्र प्रारम्भ होने पर वह संसार का निर्माण कार्य प्रारम्भ करते है।

इस प्रकार दो कल्प तुल्य ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है। एक कल्प में सन्धि सहित 14 मनु होते है। प्रत्येक मनु में 71 महायुग होते हैं। एक महायुग का मान 12000 दिव्य वर्ष होता है। (दिव्य वर्ष देवताओं से सम्बन्धित वर्ष होता है जिसमें 360 देवताओं के दिन होते है। देवताओं के एक दिन में 360 सौरदिन होते हैं। सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल एक सौर दिन कहलाता है तथा 360 सौर दिन का एक सौरवर्ष जो देवताओं का एक दिन दिन अथवा दिव्यदिन है।)

एक महायुग में कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग नामक चारयुग सन्धि सहित होते है। चार हजार दिव्य वर्ष का एक कृगयुग कहा है। इस युग की जितने दिव्य वर्ष की अर्थात् 400 वर्ष की सन्ध्या होती है और उतने ही वर्षों की अर्थात् 400 वर्षों का सन्ध्यांश का समय होता है अर्थात कृतयुग का कुल मान 4800 दिव्यवर्ष है। त्रेता युग का मान 3000 दिव्यवर्ष तथा 300 वर्ष की संध्या 300 वर्ष संध्यांश कुल मान 3600 दिव्यवर्ष है। द्वापर युग का मान 2000 दिव्यवर्ष, 200 दिव्यवर्ष

सन्धि एवं 200 दिव्यवर्ष संध्याश कुल मान 2400 दिव्य वर्ष तथा कलयुग का मान 1000 दिव्यवर्ष, सन्धि-संध्यांश 200 वर्ष कुल मान 1200 वर्ष है। इस प्रकार कुल मान 4800+3600+2400+1200=12000 दिव्यवर्ष एक महायुग का मान होता है। अर्थात -

सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल	=	एक सौर दिन
360 सौर दिन	=	देवताओं का एक दिन (दिव्यदिन)
360 दिव्यदिन	=	1 दिव्य वर्ष।
12000 दिव्य वर्ष	=	1 महायुग
71 महायुग	=	1 मनु
ससन्धि 14 मनु	=	1 कल्प = ब्रह्मा का दिन
2 कल्प	=	ब्रह्मा का एक अहोरात्र।

देव युगों को 1000 से गुण करने पर जो काल परिणाम निकलता है, वह ब्रह्म का एक दिन और उतने ही वर्षों की एक रात समझना चाहिए। यह ध्यान रहे कि एक देव वर्ष 360 मानव वर्षों के बराबर होता है। जो लोग उस एक हजार दिव्य युगों के परमात्मा के पवित्र दिन को और उतने की युगों की परमात्मा की रात्रि समझते हैं, वे ही वास्तव में दिन-रात = सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय काल के विज्ञान के वेत्ता लोग हैं। इस आधार की सृष्टि की आयु = 12000 × 1000 देव वर्ष = 12000000 देव वर्ष 12000000×360 = 4320000000 मानव सौरवर्ष। अतः 12000000 देव वर्ष = 4320000000 मानव वर्ष पहले जो बारह हजार दिव्य वर्षों का एक दैव युग कहा है, इससे 71 (इकहत्तर) गुणित अर्थात् 12000×71 = 852000 दिव्य वर्षों का अथवा 852000×360= 306720000 वर्षों का एक मन्वन्तर का काल परिणाम गिना गया है। इस प्रकार वह महान् परमात्मा असंख्य मन्वन्तरों को, सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय को बार-बार करता रहता है, अर्थात् सृष्टी प्रवाह से अनादि है। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 4320000000 सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि की रचना का कार्य प्रारम्भ हुआ।

सृष्टि की रचना का प्रारम्भ कब हुआ ? इस विषय पर विचार करने के पश्चात इस विषय पर विचार करना आवश्यक है कि सृष्टि में मानव की उत्पत्ति कब हुई, क्योंकि मानव के उत्पन्न होने पर ही तो वेद का ज्ञान उसे प्राप्त हुआ है। इससे पूर्व की स्थिति अर्थात् सृष्टि उत्पन्न होने के प्रारम्भ से मानव के उत्पन्न होने तक के समय पर भी विचार करना परमावश्यक है। वास्तव में मनुष्य ने तो अपने उत्पन्न होने के बाद ही समय की गणना प्रारमभ की है। सृष्टि के उस समय की गणना वह कैसे करता, जब बन ही रही थी? वह कैसे जानता कि सृष्टि उत्पन्न होने की क्रिया के प्रारमभ होने से उसके पूर्ण होने तक सृष्टि निर्माण में कितना समय व्यतीत हुआ है? सूर्यसिद्धान्त में इस विषय पर विचार किया गया है। समस्त वैदिक वांड्मय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं। वैदिक वांड्मय में परब्रह्म को ही प्रजापति, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ, विराट पुरूष आदि के नाम से सम्बोधित किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के आर्ष ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के कालमानाध्याय में वर्णन सृष्टि काल के विषय इस प्रकार से वर्णन आया है -

ग्रहक्ष-देव-दैत्यादि सृजतोक्षस्य चराचरस्य।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शघ्ना वेधसो गताः।

अर्थात् ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर (जघैर्म जीव-जन्तु) अचर (स्थावर वृक्ष पर्वतादि) की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से शत गुणित 474 दिव्य वर्ष अर्थात् 474×100 = 47400 दिव्य वर्ष बीत गए। एक दिव्यवर्ष होते है अर्थात 47400 × 360 = 17064000 सौर वर्ष। तथा 4320000000-17064000 = 4302936000 सौरवर्ष। उक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि सूर्यसिद्धान्त के काल से 4320000000 सौर वर्ष पूर्व सृष्टि की रचना प्रारम्भ हुई तथा 4302936000 सौरवर्ष पूर्व सृष्टि की सम्पूर्ण गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ। अर्थात् ग्रह, नक्षत्र ने चलना प्रारम्भ किया तथा पृथ्वी पर चराचर का प्रारम्भ हुआ।

1.3.1 वैदिक सृष्टि की विवेचना

वैदिक वांड्मय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं। वैदिक सृष्टि का विवेचन प्राय: विभिन्न सूक्तों के माध्यम से हमें दृष्टिगोचर होता है।जिसका वर्णन हम यहा करने जा रहे है।

1. अदिति सूक्त—

अदिति शब्द का अर्थ है- पूर्णता, रचनात्मकता, जो बन्धन रहित हो, तथा जो सीमा से रहित हो। अदिति सूक्त ऋग्वेदीय दशम मण्डल का 72 वाँ सूक्त है। इस सूक्त की दृष्ट्री अदिति दाक्षायणी है। यह प्राचेतस दक्ष प्रजापति तथा आसिकनी की कन्या तथा कश्यप प्रजापति की पत्नी थी। इस सूक्त में अदिति को विश्व सृष्टि की मूर्ति के रूप में प्रतिपादित किया गया है। मन्त्र में कहा गया है कि अदिति ही द्यौ है, अदिति अन्तरिक्ष है, अदिति ही सब भूतों की माता और पिता है। वही पुत्र है, पञ्चजन भूत और भविष्य सब अदिति ही अदिति है। यथा—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्ज्जातमदितिर्जनित्वम्।।

इस मन्त्र में अदिति शब्द अनेक पदों से व्यवहृत होता है। सूक्त के 5 वें मन्त्र में दक्ष को सूर्य कहा गया है औरसूक्त में अदिति को 'प्रकृति' कहा गया है। और इसी प्रकृति से सब पदार्थों की उत्पत्ति कही गई है। ठीक इस सूक्त की भाँति सांख्यदर्शन में भी सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण प्रकृति को कहा है। सूक्त में दिव्य पदार्थों की सृष्टि प्रक्रिया में परब्रह्म परमेश्वर को उपादान कारण बनाया तथा अव्यक्त प्रकृति को निमित्त कारण। यही महान् ब्रह्माण्ड वा प्रकृति का स्वामी परमात्मा है और यही परमात्मा इन समस्त लोकों को लौहकार के सदृश अग्नि में डालता और संतप्त करता है। सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ रूप परमात्मा अपने अग्निमय तेजस रूप से सबको तप्त करता है। अतएव वहीं से अनेक सूर्य तप्त रूप में उत्पन्न होते हैं, तदनन्तर सृष्टि की प्रागवस्था में सूर्यादि के प्रथम निर्माण वा प्रेरणाकाल में अव्यक्त प्रकृति से सत् अर्थात् व्यक्त जगत् उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् व्यापक दिशाएँ प्रकट हुईं। तदनन्तर उसी से ऊपर की ओर फैलने वाले किरणों वाला इसी प्रकृति अर्थात् अदिति से ऊर्ध्व आकाश में गति करने वाले सूर्य- चन्द्रादि प्रकट हुए, अदिति से ही व्यापन युक्त गुण वाले पञ्च तत्त्वों (आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथिवी) की उत्पत्ति हुई। उस अखण्ड प्रकृति से ही दग्ध करने वाले अग्नि और बलोत्पादक वायु की उत्पत्ति हुई है। सूर्य रूप अग्निमय पिण्ड से खण्ड न होने वाली दृढ यह पृथिवी उत्पन्न हुई। अखण्ड प्रकृति से अग्नि और वायु की उत्पत्ति बताई गई है और एक अन्य सन्दर्भ में इस ऋचा के अनुवाद में कहा गया है कि अदिति दक्ष की माता है अर्थात् अदिति से

ही दक्ष की उत्पत्ति हुई है और यह अदिति उस दक्ष से परे है अर्थात् अखण्ड रूप में विद्यमान है। सूक्त के ही अन्य मन्त्र में कहा गया है कि अदिति सूर्य की दुहिता के समान है और (अदिति को मन्त्र में पृथिवी भी कहा गया है) वह दृढ पृथिवी अग्नि रूप से उत्पन्न हुई है। उसके पश्चात् सुख-ऐश्वर्य में रमण करने वाले, अमृत अविनाशी जीवन से बंधे हुए अनेक जीवगण उत्पन्न हुए।

व्यापक अखण्ड प्रकृति से आठ तत्त्व उत्पन्न हुए, जो बहुत से लोकों की रक्षा करते हैं। अर्थात् उत्पादनोन्मुख प्रकृति से महत्, अहंकार, पञ्च तन्मात्र अर्थात् सूक्ष्म भूत वह व्यापक अखण्ड प्रकृति सात ग्रहों के रूप में इन ग्रहों को प्राप्त हुई। उसने सूर्य को इन सातों से दूर फेंका। इनमें आठवाँ मार्तण्ड सूर्य है, उसको दूर ऊपर फेंका जो उदित होता है। सातों पुत्रों के साथ वह अविनाशिनी शक्ति पूर्वकाल में आती है और तत्पश्चात् उत्पन्न होने तथा फिर मृत्यु के लिए तुझसे ही हे प्रकृते ! मृत जड़ तत्त्व के बने अण्ड वा जीवित देह उत्पन्न होते हैं।

अति लघूत्तरीय प्रश्न—

1- अदिति सूक्त ऋग्वेदीय दशम मण्डल का कौन सा सूक्त है?
2- अदिति सूक्त में किसे विश्व सृष्टि की मूर्ति के रूप में प्रतिपादित किया गया है?
3- किस प्रकृति से अग्नि और वायु की उत्पत्ति बताई गई है?
4- व्यापक अखण्ड प्रकृति से कितने तत्त्व उत्पन्न हुए?
5- दृढ पृथ्वी किस रूप से उत्पन्न हुई है?

2. विश्वकर्मा सूक्त—

विश्वकर्मा सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का 81वां तथा 82 वां सूक्त है। सूक्त में कहा गया है कि विश्वकर्मा ने समस्त जगत् को यज्ञीय हविष्य के रूप में अग्नि को समर्पित कर दिया। तदनन्तर विश्वकर्मा स्वयमेव अग्नि में प्रविष्ट हो गया। वही दृश्यादृश्य जगत् का निर्माणकर्त्ता था। अतः स्पष्ट हो जाता है कि विश्वकर्मा ने द्विविध शरीर धारण किया था। एक शरीर को अग्नि में याज्ञिक हवि के रूप समर्पित किया और दूसरे शरीर से जगत् की संरचना की। तृतीय मन्त्र में कहा गया है कि विश्वकर्मा की आँखें, मुख, बाहु तथा चरण चारों और है। अपनी भुजाओं तथा पदों के प्रेरण से वह आकाश तथा पृथ्वी को उत्पन्न करते है। 82 वें सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि शरीर के उत्पादयिता तथा अनुपम धीर विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथ्वी की रचना की। द्यावापृथ्वी के प्राचीन तथा अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ़ किया। द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि, विश्वकर्मा बृहत् हैं तथा वो सब जानते हैं तथा सब कुछ देखते हैं। 82 वें सूक्त में विश्वकर्मा का सर्वोच्चशक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। इस सूक्त के अनुसार विश्वकर्मा अपनी संकल्पात्मक बुद्धि के सामर्थ्य से समस्त जगत् को धारण करने वाला है। उस बुद्धिमान ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया और तदनन्तर पूर्व से उत्तर परिणाम को प्राप्त होते हुए द्यौ और पृथिवी को जन्म दिया। इन दोनों के जब पर्यन्त भाग, बाहर के सीमा भाग स्थिर हो गए तो पुनः उस बुद्धिमान ने द्यौ और पृथिवी का विस्तार किया अर्थात् उसमें अनेक विकृतियाँ की। सूक्त में विश्वकर्मा की स्तुति बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की गई है। विश्वकर्मा को सृष्टि के संहारकर्त्ता और सृष्टि के स्रष्टा उभी रूपों में हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विश्वकर्मा का तादात्म्य प्रजापति के साथ स्थापित किया गया है।

उपर्युक्त कथन से यह भी स्पष्ट होता है कि अन्य विकृतियों से पूर्व हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई और उस गर्भाण्ड से द्यौ और पृथिवी लोकों की उत्पत्ति होती है। इन दोनों लोकों को स्थिर करने के अनन्तर वह बुद्धिमान अन्य विकृतियाँ करके उन लोकों को विस्तृत करता है।

लघूत्तरीय प्रश्न—

1- विश्वकर्मा के दो प्रकार के शरीर ने क्या कार्य किया ?
2- विश्वकर्मा ने सर्वथम किस को उत्पन्न किया ?
3- विश्वकर्मा सूक्त किस वेद के किस मण्डल का कौन सा सूक्त है।
4- ब्राह्मण ग्रन्थों में विश्वकर्मा का तादात्म्य किस के साथ स्थापित किया गया है।
5- विश्वकर्मा आकाश तथा पृथ्वी को कैसे उत्पन्न करते है।

3. पुरुष सूक्त —

पुरुष सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का 90वॉ सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि नारायण तथा देवता पुरुष है। इस सूक्त में 16 मन्त्रें के माध्यम से जगत की सृष्टि एवं सृष्ट का विकास का कारण विराटपुरुष बताया गया है। वैदिक ऋषि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृष्टिक्रम को यज्ञ के रुप में स्वीकार करते हैं। उनके मतानुसार सूक्त में वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रूपों में प्रकट होता है , तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। पुरुष के भव्य स्वरूप का वर्णन सूक्त के प्रारम्भिक चार मन्त्रों में किया गया है। यहाँ मन्त्रों में बताया गया है। कि विराट् पुरुष परमेश्वर हजारों सिरों वाला, हजारों आँखो वाला और हजारों पैरों वाला है। वह भूमि के चारों और से व्याप्त करके दस अंगुल प्रमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित है। अर्थात् वह परम पुरुष ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किए हुए है। यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरुष ही है। जो कुछ हो चुका है, भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यत् कालीन जगत् भी पुरुष ही है और वह पुरुष देवताओं का अथवा अमरत्व का स्वामी है। पुरुष अन्न अर्थात् प्राणियों के भोग्य पदार्थों के कारण बढ़ता है अर्थात् इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को प्राप्त करता है। इतनी इसकी महिमा है अर्थात् भूत-भविष्यत् वर्तमान कालत्रयवर्ती यह समग्र जगत् इसकी महिमा मात्र है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् यह समग्र जगत् इसका केवल पाद (चतुर्थांश) है। इसके तीन पाद अर्थात् तृतीयांश अविनाशी रुप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रुप में अवस्थित रहते हैं। संसार से ऊपर तीन पादों वाला यह विराट् पुरुष इस जगत् से ऊपर उठा हुआ है अर्थात् विश्व के गुण दोषों से रहित है। इसका एक पाद इस भौतिक जगत् के रुप में बार-बार होता है, अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होते रहते हैं।

अग्रिम सूक्तों में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसी आदि पुरुष महाविष्णु से विराट् हुआ। उस विराट् का अधिपुरुष वही है। वह अधिपुरुष उत्पन्न होकर अत्यन्त दीप्त प्रकाश वाला हुआ। उसने उत्पन्न होने के पश्चात् भूमि तथा शरीरादि उत्पन्न किये। उस पुरुष के शरीर में ही देवताओं ने हविष्य की भावना करके यज्ञ का विस्तार किया। उस यज्ञ में बसंत ऋतु घृत, ग्रीष्म ऋतु ईंधन और शरद ऋतु हवि हुई। उस सर्वहुत यज्ञ से प्रशस्त पोषक पदार्थ घृत आदि उत्पन्न हुआ। उस प्रजापति पुरुष ने वायु में उड़ने वाले पक्षी ग्राम में रहने वाले, वन में रहने वाले आदि पशुओं को उत्पन्न किया। उस सर्वहुत यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुए। उसी से छन्द उत्पन्न हुए , उसी से यजुर्वेद प्रकट हुआ। उसी यज्ञ पुरुष द्वारा घोड़े उत्पन्न हुए। जिनके ऊपर-नीचे दोनों ओर दांत

हैं, ऐसे गर्दभ आदि पशु भी उत्पन्न हुए। उसी से गौएं तथा भेड़-बकरियां भी उत्पन्न हुईं। सृष्टि के पूर्व प्रकट हुए उस यज्ञ साधनभूत पुरुष को कुशाओं द्वारा प्रोक्षण करके उसी पुरुष के द्वारा देवता, साध्यगण तथा ऋषिगण आदि ने उस मानस यज्ञ का यजन किया। इस पुरुष के मुख से ब्राह्मण हुए, बाहुओं से क्षत्रिय हुए। इस पुरुष के जो दोनों ऊरु हैं उनसे वैश्य और पैरों से शूद्र प्रकट हुए। उनके मन से चन्द्रमा हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए और मुख से अग्निदेव हुए। उस यज्ञ पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, शिर से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी और कानों से दिशाएं उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार उस पुरुष में ही ये सब लोक कल्पित हुए। जिस पुरुष पशु का यज्ञ में बंधन करके देवताओं ने यज्ञ किया, उस यज्ञ में सात छंद इसकी 7 परिधियां बनाई गई और इक्कीस (12 महीने, पांच ऋतुएं, एक आदित्य तथा तीन लोक) समिधाएं बनीं। देवगण यज्ञ के द्वारा उस यज्ञ पुरुष का यजन करते हैं। इन धर्मों का अस्तित्व प्रथम कल्पों में भी था। जिस स्वर्ग में पूर्व के साध्यगण देवगण रहते थे, उसी में उनके उपासक भी उपस्थित होते हैं।

रिक्त स्थान की पूर्ति —

1- पुरुष सूक्त के ऋषि तथा देवता---------- पुरुष है।

2- पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों ------ वाला, हजारों -------वाला और हजारों-------वाला है।

3- विराट पुरुष तीन पाद अर्थात् तृतीयांश ---------रुप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रुप में अवस्थित रहते हैं।

4- यज्ञ में बसंत ऋतु घृत, ग्रीष्म ऋतु ईंधन और---------- हवि हुई।

5- उनके मन से ---हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए आऔर मुख से अग्निदेव हुए।

4. प्रजापति सूक्त—

प्रजापति सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का 121 वां सूक्त है। सूक्त के ऋषि हिरण्यगर्भ प्रजापति है। सी भी मान्यता है। कि इस सूक्त का ऋषि प्रजापति का पुत्र हिरण्यगर्भ है। सूक्त के देवता प्रजापति है। जिन्हें सम्पूर्ण सूक्त में क संज्ञा से व्यहृत किया गया है। प्रजापति का शाब्दिक अर्थ- प्रजाओं का स्वामी होता है। सृष्टिकर्ता देव के रुप में प्रजा का अर्थ सम्पूर्ण तथा पति का अर्थ सृष्टा होगा। अतः प्रजापति में सृष्टि तथा सृष्टा दोनों ही अन्तर्भूत हैं। अतएव सूक्त की अन्तिम ऋचा में भी प्रजापति नाम उद्धृत है।

हिरण्यगर्भ सूक्त में दश ऋचाएँ हैं। हिरण्यगर्भ शब्द सूक्त की प्रथम ऋचा का प्रथम पद है। आचार्य सायण 'हिरण्यगर्भ' पद का अर्थ प्रथत अर्थ किया है - 'सुवर्णमय अण्डे को गर्भ में धारण करने वाला प्रजापति' द्वितीय अर्थ किया है - 'जिसके उदर में स्वर्णमय अण्डा गर्भ के समान स्थित है। वह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ कहा जाता है।' सूक्त की नौ ऋचाओं के चतुर्थ चरण में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' यह वाक्य है। अर्थात् सुख स्वरुप अथवा 'क' संज्ञक गुण सम्पन्न उस हिरण्यगर्भ का हम हवि द्वारा पूजन करते हैं। आचार्य सायण ने कस्मै शब्द के अनेक अर्थ इस प्रकार किए हैं - यथा- अनिति स्वरुप होने से प्रजापति के लिए, सृष्टि के लिए कामना से युत्तफ़, इच्छार्थ 'कम् धातु से 'ड' प्रत्यय के योग से निष्पन्न सुख अर्थ वाला। अतः सुखस्वरुप होने से प्रजापति 'क' है।

सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के प्रथम तीन चरणों में उस देवता या ऋषि के गुणों तथा उसके द्वारा किया गये कार्यों का वर्णन किया गया है यथा- सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ,

उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और चुलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्माओं को बल का देने वाला है, अमृतत्व और गृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्रों को, जिसका कहते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से देखता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रुप गर्भ को धारण करती हुई तथा अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में आई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु उत्पन्न हुआ। वह सृष्टि -उत्पत्ति रुप यज्ञ को उत्पन्न करने वाले और सृष्टि -उत्पत्ति में दक्ष प्रजापति को धारण करने वाले जलों को अपनी महिमा से देखता है, और वही सभी देवताओं के मध्य में उनका स्वामी अद्वितीय देव है। वह पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है और सत्य नियमों को धारण करते हुये उसने द्युलोक को उत्पन्न किया, उसने आनन्द प्रदान करने वाले महान् जलों को उत्पन्न किया। उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन विद्यमान सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों को और उन सारे भूतकालीन पदार्थों को व्याप्त करने वाला नहीं है। क संज्ञक गुण सम्पन्न उस हिरण्यगर्भ का हम हवि द्वारा पूजन करते हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- प्रजापति सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का है -

(क) 128वां सूक्त (ख) 121वां सूक्त

(ग) 125 वां सूक्त (घ) 122वां सूक्त

2- सूक्त की अन्तिम ऋचा में नाम उद्धृत है -

(क) प्रजापति (ख) सूर्य

(ग) इन्द्र (घ) नारद

3- सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व उत्पन्न हुआ -

(क) प्रजापति (ख) 121वां सूक्त

(ग) इन्द्र (घ) हिरण्यगर्भ

4- आचार्य सायण ने 'हिरण्यगर्भ' पद का अर्थ किया है -

(क) 'सुवर्णमय अण्डे को सिर पर धारण करने वाला

(ख) 'सुवर्णमय अण्डे को गर्भ में धारण करने वाला

(ग) ब्रह्म को धारण करने वाला

(घ) सोने के अण्डे को वायु में धारण करने वाला

5- किस को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है।

(क) प्रजापति (ख) सूर्य

(ग) इन्द्र (घ) हिरण्यगर्भ

5. नासदीय सूक्त —

ऋग्वेद के मण्डल 10 सूक्त 129 को नासदीय-सूक्त कहते हैं। नासदीय सूक्त के रचयिता ऋषि प्रजापति परमेष्ठी हैं। इस सूक्त के देवता भाववृत्त है। यह सूक्त मुख्य रुप से इस तथ्य पर आधारित है कि ब्रह्मांड की रचना कैसे हुई। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति होने से पूर्व आकाश की अन्धकाररुप स्थिति का वर्णन है। परमात्मा के सम्मुख सृष्टि का उपादान कारण द्रव्यभाव से वर्तमान था, आत्माएं भी साधारण और मुत्तफ़ अवस्था की बहुत थीं आदि ऐसे अनेक विषयों का वर्णन इस सूक्त में है। नासदीय का अर्थ है कि सृष्टि की रचना से पूर्व जगत् की स्थिति शून्यमय नितान्त अभावरुप नहीं थी, कुछ अवश्य था परन्तु जो था वह अप्रकट व प्रकाशित था। सूक्त में कुल 7 मन्त्र हैं। मन्त्रें में कहा गया है कि उस समय अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से पहले प्रलय दशा में असत् अर्थात् अभावात्मक तत्त्व नहीं था। सत = भाव तत्त्व भी नहीं था, रजः = स्वर्गलोक मृत्युलोक और पाताल लोक नहीं थे, अन्तरिक्ष नहीं था और उससे परे जो कुछ है वह भी नहीं था, वह आवरण करने वाला तत्त्व कहाँ था और किसके संरक्षण में था। उस समय कठिनाई से प्रवेश करने योग्य गहरा क्या था, अर्थात् वे सब नहीं थे। उस प्रलय कालिक समय में मृत्यु नहीं थी और अमृत = मृत्यु का अभाव भी नहीं था। रात्री और दिन का ज्ञान भी नहीं था उस समय वह ब्रह्म तत्व ही केवल प्राण युत्तफ़, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रुप में विद्यमान था, उस माया सहित ब्रह्म से कुछ भी नहीं था और उस से परे भी कुछ नहीं था। सृष्टिके उत्पन्न होनेसे पहले अर्थात् प्रलय अवस्था में यह जगत् अन्धकार से आच्छादित था और यह जगत् तमस रुप मूल कारण में विद्यमान था, अज्ञात यह सम्पूर्ण जगत् जल रुप में था। अर्थात् उस समय कार्य और कारण दोंनों मिले हुए थे यह जगत् है वह व्यापक एवं निम्न स्तरीय अभाव रुप अज्ञान से आच्छादित था इसीलिए कारण के साथ कार्य एकरुप होकर यह जगत् ईश्वर के संकल्प और तप की महिमा से उत्पन्न हुआ। सृष्टि की उत्पत्ति होने के समय सब से पहले काम अर्थात् सृष्टि रचना करने की इच्छा शत्तिफ़ उत्पन्न हुयी, जो परमेश्वर के मन मे सबसे पहला बीज रुप कारण हुआ। भौतिक रुप से विद्यमान जगत् के बन्धन-कामरुप कारण को क्रान्तदर्शी ऋषियो ने अपने ज्ञान द्वारा भाव से विलक्षण अभाव मे खोज डाला। अविद्या, काम-संकल्प और सृष्टि बीज-कारण को सूर्य-किरणों के समान बहुत व्यापकता उनमें विद्यमान थी। इस प्रकार उत्पन्न जगत् में कुछ पदार्थ बीज रुप कर्म को धारण करने वाले जीव रुप में थे और कुछ तत्त्व आकाशादि महान रुप में प्रकृति रुप थे। कौन इस बात को वास्तविक रुप से जानता है और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि किस उपादान कारण से और किस निमित्त कारण से सब ओर से उत्पन्न हुयी। देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होने से बाद के हैं अतः ये देवगण भी अपने से पहले की बात के विषय में नहीं बता सकते इसलिए कौन मनुष्य जानता है जिस कारण यह सारा संसार उत्पन्न हुआ यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार के उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुयी इस का मुख्या कारण है ईश्वर के द्वारा इसे धारण करना। इसके अतिरित्तफ़ अन्य कोई धारण नहीं कर सकता। इस सृष्टि का जो स्वामी ईश्वर है, अपने प्रकाश या आनंद स्वरुप में प्रतिष्ठित है। वह आनंद स्वरुप परमात्मा ही इस विषय को जानता है उस

के अतिरिक्तफ़ (इस सृष्टि उत्पत्ति तत्व को) कोई नहीं जानता है। इस सूक्त मे कहा गया है कि यथा-सत-असत, चेतन तत्त्व जो अपनी धारण शक्तिफ़ द्वारा उस अवस्था में भी स्थित था, काम-ईक्षण जिसके द्वारा विविध प्रकार की सृष्टि प्रकट हुई है। अनादि पदार्थ जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुए एवं इसके पश्चात् भोक्तफ़ा जीव आए एवं वही चेतन तत्त्व इस सृष्टि को उत्पन्न करके स्वयं ही इसका धारक बन गया। नासदीय सूक्त सत् तथा असत् दोनों सत्ताओं का निषेध करता है। सत् से अभिप्राय है कि यह नामरुपात्मक जगत् अपने अस्तित्व में नहीं था अथवा अस्तित्व से युक्तफ़ अर्थात् प्रत्यक्ष रुप में वर्णनीय नहीं था और असत् से अभिप्राय है कि यह नामरुपात्नक जगत् तो नहीं था, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता के कुछ भी नहीं था, अगर कुछ नहीं था तो पुनः इस सृष्टि की रचना कैसे सम्भव हुई। कथन का भाव है कि मूलतत्त्व - परब्रह्म जिसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, किन्तु वह उस समय भी विद्यमान था। असत् जगत् के मूलकारण का वाचक है और मूलकारण तत्त्व एकमात्र परब्रह्म है तथा सत् कार्यरुप जगत् का वाचक है।

सत्य/असत्य प्रश्न

1- ऋग्वेद के मण्डल 10 सूक्त 129 को नासदीय-सूक्त कहते हैं। सत्य/असत्य

2- इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति होने से पूर्व पृथ्वी की अन्धकाररुप स्थिति का वर्णन है। सत्य/असत्य

3- नासदीय का अर्थ है कि सृष्टि की रचना से पूर्व जगत् की स्थिति शून्यमय नितान्त अभावरुप नहीं थी, कुछ अवश्य था परन्तु जो था वह अप्रकट व प्रकाशित था। सत्य/असत्य

4- नासदीय सूक्त सत् तथा असत् दोनों सत्ताओं को स्वीकार करता है। सत्य/असत्य

5- असत् से अभिप्राय है कि यह नामरुपात्नक जगत् तो नहीं था। सत्य/असत्य

6. ऋत्त सूक्त—

ऋत्त सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का 190 वॉं सूक्त है। ऋग्वेदीय दशम मण्डल के लघु सूक्तफ़ों में ऋत सूक्त का विशिष्ट स्थान है। इस सूक्त में सृष्टि-प्रक्रिया को बड़ी सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया गया है आचार्य यास्क के अनुसार ऋत का अर्थ उदक, सत्य, यज्ञ एवं रेतत् है। सूक्त का ऋषि मधुच्छन्दर का पुत्र अघमर्षण है और इसी कारण सूक्त को अघमर्षण सूक्त भी कहा गया है। और सूक्त का देवता भाववृत्तम है। इस सूक्त के तीन मन्त्र हैं और तीनों मन्त्र अत्यन्त लोकप्रिय हैं। सूक्त में सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन सरल एवं स्पष्ट शब्दों में व्यक्तफ़ किया गया है।

सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि तप से ऋत अर्थात् प्राकृतिक प्रवाह अर्थात् द्रव्य और सत्य अर्थात् नित्य तत्त्व सत्ता की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर ऋत और सत्य से रात्रि उत्पन्न होती है। उस तप से यह जल से युक्त महान् समुद्र और सूक्ष्म जलों से व्याप्त आकाश प्रकट हुआ। अर्थात् उस से कणों के सागर में गति को धारण करने वाले मूल तत्त्व के विस्तार का उदय हुआ। मंत्र का भावार्थ है कि उस समय काल की शुन्य स्थिति थी, तप ने प्राकृतिक प्रवाह और सत्य स्वरुप प्रकृति को चारों ओर से प्रज्वलित किया। उसी से प्रलय रुपी रात्रि का अविर्भाव हुआ। अर्थात् प्रकृति के कणों में संक्षोभ हुआ। सूक्त के द्वितीय मन्त्र में जल से आपूरित समुद्र की उत्पत्ति का वर्णन है और इस अर्णय समुद्ध अर्थात् जलापूरित समुद्र से संवत्सर प्रकट होता है। संवत्सर के प्रकट होने के पश्चात् अहोरात्र की सृष्टि हुई अर्थात् दिन और रात्रि प्रकट हुए। संवत्सर रुप ईश्वर दिन तथा रात्रि को बनाने वाले हैं। निमेषादि से युक्त वह काल समस्त संसार के स्वामी हैं। सूक्त में रात्रि की उत्पत्ति दो बार बताई गई है- प्रथम

गन्त्र में ऋत और सत्य से केवल रात्रि की उत्पत्ति का वर्णन है तथा द्वितीय मन्त्र में रात्रि के साथ-साथ दिन की उत्पत्ति का भी वर्णन प्राप्त होता है। तृतीय मंत्र में उल्लेख है कि उस कालरुप ईश्वर द्वारा सूर्य, चन्द्रमा द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोक अर्थात् प्रकाश्य तथा अप्रकाश्य समस्त पदार्थों को पूर्व काल के अनुसार बनाया। इस प्रकार ऋत सूक्त में सृष्टि प्रकिया का कम शब्दों में अतीव सारगर्भित वर्णन किया गया है।

7. कालसूक्त —

अथर्ववेद के उन्नीसवे अध्याय का 53वां तथा 54वां सूक्त काल सूक्त है। सूक्त के देवता काल हैं। इस सूक्त के ऋषि ने काल को परब्रह्म माना है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में काल के स्वरुप का वर्णन करते हुए कहा है कि -

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चका भुवनानि विश्वा।।

वह काल रुपी अश्व शुक्ल, नील पीत, रत्तफ़, हरित, कपिश, चित्र वर्ण सात प्रकार की किरणों वाला सूर्य के समान प्रकाशमान है (अर्थात् सूर्य की भी यह सात किरणें सात घोड़े हैं), सहस्रं नेत्रें वाला है तथा कभी वृद्धावस्था को प्राप्त न होने वाला है। द्वितीय मन्त्र में ही काल को सात पहियों वाला अर्थात् तीन काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) और चार दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) वाला कहा गया है। कहा है कि वह ही प्रथम दिव्य पदार्थ है जिससे सभी सत्ताएँ उत्पन्न होती हैं। अर्थात् सब भुवनों को प्रकट करता है। काल ने ही स्वयं आकाश और पृथिवी को उत्पन्न किया और परमेश्वर के नियम से भूत और भविष्य भी उस काल के ही भीतर है। यह जगत् उस काल से ही उत्पन्न होकर प्रतिष्ठित है।

बड़े ही रहस्यमय ढंग से काल की महिमा को सूर्य और पृथिवी के छिपने और छुपाने के उदाहरण द्वारा समझाया गया है कि काल के प्रभाव से ही परमात्मा प्रलय के पीछे सब पदार्थों को और नियमों को उत्पन्न करता है और प्रलय के समय में लय कर देता है जिस प्रकार सूर्य जब पृथिवी के सन्मुख आता है तो दिखाई देता है, किन्तु जब पृथिवी की आड़ में होता है तो अदृश्य हो जाता है अर्थात् छिप जाता है। संसार का उपकार करने के लिए अर्थात् जगत् सृष्टि के लिए वायु, पृथिवी, आकाश आदि परमाणु काल के कारण ही संयोग पाकर साकार होते हैं अर्थात् यही परमाणु सृष्टि उत्पत्ति के कारण हैं और इनका संयोग काल के द्वारा ही सम्भव है। काल सूक्त के 53वें सूक्त के चतुर्थ मन्त्र और 54वें सूक्त के तृतीय मन्त्र में काल को सृष्टि का पिता और पुत्र कहा है, जो पिता के समान नित्य वर्तमान काल होने से पहिले और पुत्र के समान पीछे भी विद्यमान रहता है। अर्थात् काल रुपी पुत्र द्वारा ही बीता हुआ भूतकाल और होने वाला भविष्यत्काल पहिले उत्पन्न किया। काल के ही प्रभाव से सब आगे- पीछे की सृष्टि और वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार काल की गति बड़ी ही कल्पनातीत है। अतः सूक्त में बड़े ही रहस्यमयढंग से काल की तुलना सूर्य से अर्थात् सूर्य की सात किरणों-रुपी घोड़े से की गई है। अन्ततः काल ही चराचर प्राणियों को उत्पन्न करने वाला है और भूत, भविष्य, वर्तमान तीन प्रकार के कालों का आधार है और पृथिवी, स्वर्गादि विविध लोकों को सूजन करने वाला है।

1.3.2 वैदिकवाङ्मय में सृष्टि की परिकल्पना

सृष्टि परिकल्पना को लेकर सर्वप्रथम यह विचार उत्पन्न होता है कि यह दृश्य जगत् कहाँ से आया? इसको लाने वाला कौन है? इसका निर्माणकर्ता कौन है? इत्यादि अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसका समाधान क्या है? यह सृष्टि-क्रम अनन्त है और इसकी जिज्ञासाएँ भी अनन्त है। इस विषय से सम्बन्धित जिज्ञासाएँ वेदों में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होती है। विश्वकर्मा सूक्त में जिज्ञासा व्यक्त करतक हुए कहा गया है कि वह कौन सा वन है तथा वन का कौन सा वृक्ष है जिसने आकाश तथा पृथ्वी को बनाया। इसी प्रकार ट्टग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि की जिज्ञासा का वर्णन इस प्रकार आया है। यथा -

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जने ना अथा को वेद यत आवभूव।।
इयं विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
या अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।

अर्थात् यह विविध सृष्टि किससे उत्पन्न हई, किसलिए हुई, इस प्रकृत तत्त्व को वस्तुतः कौन जानता है? अथवा इसके विषय में कौन कह सकता है? यह सृष्टि किास उपादान कारण से हुई है? किस निमित्त कारण से हुई है? देवता भी इस सृष्टि के अनन्तर उत्पन्न हुए। यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुइ उसे कौन जानता है? यह विविध प्रकार की सृष्टियां कहां से हुई? किसने सृष्टि की तथा किसने नहीं ? वेदों में सृष्टि की अवधारणा के निम्न सिद्धान्त प्राप्त होते है।

विराट पुरूष से सृष्टि की उत्पत्ति —

ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में 16 मन्त्रों में जगत की सृष्टि कारण विराटपुरूष बताया गया है। सूत्तफ़ में वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रूपों में प्रकट होता है और तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। यह पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों सिरों वाला, हजारों आँखों वाला और हजारों पैरों वाला है। वह भूमि के चारों और से व्याप्त करके दस अंगुल प्रमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित है। अर्थात् वह परम पुरुष ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किए हुए है। यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरुष ही है। जो कुछ हो चुका है, भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यत् कालीन जगत् भी पुरूष ही है और वह पुरुष देवताओं का अथवा अमरत्व का स्वामी है। पुरुष अन्न अर्थात् प्राणियों के भोग्य पदार्थों के कारण बढ़ता है अर्थात् इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को प्राप्त करता है।ष्इतनी इसकी महिमा है अर्थात् भूत-भविष्यत् वर्तमान कालत्रयवर्ती यह समग्र जगत् इसकी महिमा मात्र है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् यह समग्र जगत् इसका केवल पाद (चतुर्थांश) है। इसके तीन पाद अर्थात् तृतीयांश अविनाशी रूप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रूप में अवस्थित रहते हैं। संसार से ऊपर तीन पादों वाला यह विराट् पुरुष इस जगत् से ऊपर उठा हुआ इस पुरुष के मुख से ब्राह्मण हुए, बाहुओं से क्षत्रिय हुए। इस पुरुष के जो दोनों उरु हैं उनसे वैश्य और पैरों से शूद्र प्रकट हुए। उनके मन से चन्द्रमा हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए और मुख से अग्निदेव हुए। उस यज्ञ पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, शिर से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी और कानों से दिशाएं उत्पन्न हुई। इसी प्रकार उस पुरुष में ही ये सब लोक कल्पित हुए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. एक कल्प में सन्धि सहित कितने मनु होते है ?
2. एक देव वर्ष कितने मानव वर्षों के बराबर होता है ?
3. एक महायुग में कितने युग सन्धि सहित होते है ?
4. कितने सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ ?
5. ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर-अचर की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से कितने दिव्य वर्ष बीत गए?

विश्वकर्मा से सृष्ट्युत्पत्ति —

ऋग्वेद के विश्वकर्मा सूक्त में विश्वकर्मा को सृष्ट्युत्पत्ति का कारण बतायया बया है। विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथवी की रचना की। द्यावापृथवी के प्राचीन तथा अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ़ किया। द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि, विश्वकर्मा बृहत् हैं तथा वो सब जानते हैं तथा सब कुछ देखते है। 82 वें सूक्त में विश्वकर्मा का सर्वोच्चशक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। इस सूक्त के अनुसार विश्वकर्मा अपनी संकल्पात्मक बुद्धि के सामर्थ्य से समस्त जगत् को धारण करने वाला है। उस बुद्धिमान ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया और तदनन्तर पूर्व से उत्तर परिणाम को प्राप्त होते हुए द्यौ और पृथिवी को जन्म दिया। इन दोनों के जब पर्यन्त भाग, बाहर के सीमा भाग स्थि हो गए तो पुनः उस बुद्धिमान ने द्यो और पृथिवी का विस्तार किया।

हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से से सृष्ट्युत्पत्ति—

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और चुलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्माओं को बल का देने वाला है, अमृतत्व और गृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्रों को, जिसका कहते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से देऽता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रूप गर्भ को धारण करती हुई तथा अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में आई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु उत्पन्न हुआ।

ब्रह्मा से विश्व की उत्पत्ति—

वेदों के अनुसार ब्रह्म सृष्टि के रचयिता है। ऋग्वेद के सूत्तफ़ों में वर्णन किया गया है कि सृष्टि के आदि में न सत् था और असत् था, न आकाश था, न वायुमण्डल था और न दिन-रात थे। केवल ब्रह्म की ही सत्ता थी। ब्रह्म को किसी ने उत्पन्न नहीं किया, वह स्वयं उद्भूत (स्वयं उत्पन्न) है। ब्रह्मा अनादि है। ब्रह्मा में स्वयं संल्प शत्तिफ़ होती है। ब्रह्मा ने सृष्टि के सृजन का संकल्प किया। उनका यह

स ल्प ही जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था। उस महाज्योति परमतत्त्व से ऋतं और सत्य की उत्पत्ति हुई। यथा-

ऋतं च सत्यं चाभिद्धात्तपसोध्यजायत।

ततो रा=यजायत ततः समुद्रो{र्णवः।।

अर्थात् उस जाज्वल्यमान परमतेज से ऋतं (ज्ञान) तथा सत्यं की उत्पत्ति हुई। उन परमाणुओं के स्थूल होने पर पदार्थ की रचना हुई। दिनरात्रि की रचना हुई तथा जल से परिपूर्ण समुद्र की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ। ब्रह्म से सृष्टयुत्पत्ति की संकल्पना का वर्णन अन्य उपनिषदों, पुराणों तथा दर्शन शास्त्रादि में भी प्राप्त होता है।

लघूत्तरीय प्रश्न

1.ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण किसे बताया गया है।

2.विराट पुरूष के किन अंगों से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए।

3-विश्वकर्मा ने सर्वथम किस को उत्पन्न किया

4-हिरण्यगर्भ आत्माओं किसे बल का देने वाला है।

5-ब्रह्मा का संकल्प कैसा था।

पौराणिक सृष्टि परिकल्पना —

भारतीय चिन्तन परम्परा में पुराणो का विशिष्ट स्थान है। प्रायः सभी पुराणों में सृष्टि की अवधारणा का वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु पुराण में पराशर जी कहते हैं कि फ् इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण विष्णु हैं। उन्हीं में यह जगत् स्थित है। विष्णु ही इसकी स्थिति और लयकर्ता तथा विष्णु ही जगत् हैं। वह परब्रह्म, विकार-रहित, शुद्ध, अविनाशी परमात्मा, सर्वथा एकरस, भगवान वासुदेव हैं। वे सर्वत्र हैं एवं समस्त विश्व उन्हीं में विद्यमान है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव इन त्रिरूपों में विष्णु भगवान् जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। एक रूप में प्रतीत होते हैं किन्तु अनेक रूपों वाले हैं। विकाररहित, शुद्धस्वरूप, नित्य, स्थूलसूक्ष्म, अव्यत्तफ़ (कारण), व्यत्तफ़ (कार्य) रूप हैं, किन्तु वास्तव में अत्यन्त निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं।

पुराण के अनुसार जगत् के प्रलय के पूर्व कुछ भी नहीं था। सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति नित्यमाया रहित, शान्तनिर्मल, नित्यनिर्मल आनन्दसागर अर्थात आनन्द से पूर्णतः परिपूर्ण तथा नितान्त स्वच्छ थी जिसकी मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष सदा इच्छा किया करते हैं। वह ज्योतिर्ब्रह्म सर्वज्ञ है, ज्ञान स्वरूप वाला है तथा वही सृष्टि का मूल कारण है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी वर्णित है कि विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला है। महत्तत्त्व आदि रूप वाला सृजन की ओर उन्मुऽ होता हुआ अपनी ही कला द्वारा हृदय में नित्य सूक्ष्म को एकचित करके सृजन करने वाला परब्रह्म है। वही प्रकृति-ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि समस्त को प्रकट करने वाला है। वह परमब्रह्म स्वेच्छामय सनातन भगवान् सबका बीज स्वरूप है- सबका आधार और परापर है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अध्ययन से भी यही प्रतीत होता है कि सृष्टि की पूर्व अवस्था में जब विश्व शुन्यता से पूर्व जीव-जन्तुओं से रहित-निर्जल-घोर-वायु रहित अन्धकार से आवृत्त था उस समय निर्धातु शस्यों से वर्जित - बिना तृणों वाला ही था।

विष्णुपुराण के सदृश ही गरूड़पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीड़ा कहा है। नर, नारायण, वासुदेव, निरंजन परमात्मा तथा परब्रह्म भी भगवान विष्णु ही है। इस जगत् जनिलयादि के कारण भी वे ही हैं। वही व्यत्तफ़ और अव्यत्तफ़ स्वरूप वाले हैं तथा पुरुष और काल रूप से अवस्थित है। व्यक्त विष्णु स्वरूप है तथा पुरूष तथा काल इन्हीं का अव्यक्त रूप है।

मत्स्यपुराण के अनुसार भी महाप्रलय व्यतीत होने के अनन्तर समस्त जगत् की स्थिति अन्धकार में घने तम से आच्छन्न थी, यथा- अन्धकार में सोए हुए चर वा अचर वस्तु की भाँति न तो पता लगने योग्य, न पहचानने योग्य और न ही कहीं कोई वस्तु जानने योग्य थी। निराकार, इन्द्रियों से परे, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म, महान् से अत्यधिक महत्ता और अविनाशी अर्थात् अविनाश सत्ता वाले, जगत् में नारायण नाम से प्रसिद्ध, इस महाप्रलय के अनन्तर संसार में पुण्य कर्म के प्रभाव से घने तम का विनाश करते हुए चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वयं प्रादुर्भूत हुए।

नारदीय पुराण द्वारा भी समस्त जगत् उसी नारायण में व्याप्त है। नारायण ही परम-तत्त्व अथवा परमब्रह्म का स्वरूप है। नारायण अविनाशी अनन्त एवं सर्वव्यापी है। महाविष्णु, नारायण का अपर अभिधान है।

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित श्री मद्भागवत पुराण वैष्णव पुराणों में एक अद्वितीय महनीयता से मण्डित है। श्री मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दों में अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन करता है। इस पुराण के द्वितीय स्कन्ध के नवम अध्याय का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि परमतत्त्व भगवान् ब्रह्मा को चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश करते हुए कहते हैं कि सर्वत्र 'अहम्श् अर्थात् मैं ही हूँ। उस परमतत्त्व का कथन है कि फ् सृष्टि की पूर्वकालीन अवस्था में मेरे अतिरित्तफ़ सत् अर्थात् कार्यात्मक स्थूल तथा असत् अर्थात् कारणात्मक सूक्ष्म कुछ भी न था। स्थूल और सूक्ष्म को अज्ञान कहने वाला कारण भी नहीं था। इन सब सत-असत् का कारणभूत प्रधान भी मुझमें ही अन्तर्मुऽ होकर लीन था। जहाँ यह सृष्टि नहीं है अर्थात् जब प्रलय में सब लीन हो जाते है तो केवल मेरी सत्ता होती है तथा में समस्त चराचरों का सृजन करता हू।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. विष्णु पुराण के अनुसार इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण कौन हैं -

(क) ब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

2. ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता कौन है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

3. गरूड़ पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को किसकी की पुरातनी क्रीड़ा कहा है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

4. मत्स्य पुराण के अनुसार चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वरूप कौन प्रादुर्भूत हुए-

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) नारायण

5. मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दों में किस तत्त्व का प्रतिपादन करता है -

(क) द्वैत (ख) अद्वैत

(ग) विशिष्टाद्वैत (घ) महाद्वौत

दर्शनशास्त्र में सृष्टि की परिकल्पना —

भारत में श्दर्शनश् उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्व का ज्ञान हो सके। श्तत्व दर्शनश् या श्दर्शनश् का अर्थ है तत्व का ज्ञान। मानव के दुखों की निवृति के लिए या तत्व ज्ञान कराने के लिए ही भारत में दर्शन का जन्म हुआ है भारतीयर्शन आस्तिक तथा नास्तिक दो भागों में विभक्त है। वेदोंकी सत्ता को स्वीकार करने वाले दर्शन आस्तिक दर्शन तथा वेदों के अस्तित्व को स्वीकार ना करने वाले दर्शन नास्तिक दर्शन कहलाते है। यह न्याय, वैशेशिक, साख्य, योग, मीमांसा तथा वेद ये छः दर्शन आस्तिक दर्शन की श्रेणी में, चार्वाक बौध तथा जैन नास्तिक दर्शन कहलाते है। प्रायः सभी दर्शनों में सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में वर्णन किया गया है। यहां केवल आस्तिक दर्शन में सृष्ट्यिुत्पत्ति के विषय में विचार किया जा रहा है।

न्याय-वैशेषिक का जगत् विचार —

न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को अपनाता है। सांख्य को छोड़कर भारत के प्रत्येक दर्शन में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को शिरोधार्य किया गया है। परन्तु वैशेषिक के सृष्टि सिद्धान्त की कुछ विशेषताएँ है, जो इसे अन्य सृष्टि सिद्धान्तों से अनूठा बना देती है। वैशेषिक के मतानुसार विश्व का निर्माण परमाणुओं से हुआ है। परमाणु चार प्रकार के हैं पृथ्वी के परमाणु, जल के परमाणु, वायु के परमाणु और अग्नि के परमाणु। चूँकि विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। इसलिए वैशेषिक का सृष्टि-सम्बन्धी मत परमाणुवाद का सिद्धान्त कहा जाता है। परमाणु शाश्वत होते हैं। इनकी न सृष्टि होती है और न नाश होता है। निर्माण का अर्थ है, विभिन्न अवयवों का संयुत्तफ़ हो जाना, विनाश का अर्थ है विभिन्न अवयवों का बिऽर जाना। परमाणु निरवयव है, इसलिए निर्माण और विनाश से परे है।

सांख्य दर्शन में जगत विचार —

सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरूष और प्रकृति से हुआ है। पुरूष में स्वयं आत्मा का भाव है जबकि प्रकृति पदार्थ और सृजनात्मक शत्तिफ़ की जननी है। विश्व की आत्मायें संख्यातीत है जिसमें चेतना तो है पर गुणों का अभाव है। वही प्रकृति मात्र तीन गुणो के समन्वय से बनी है। इस त्रिगुण सिद्धान्त के अनुसार सत्व, राजस्व तथा तमस की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन में सृष्ट्युत्पत्ति का सूत्र निम्नलिखित है-

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान,
महतौहंकारौहंकारात् पंचतन्मात्रण्युभयमिनिन्द्रियं
तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरूष इति पंचविंशतिर्गणः।।

प्रकृति मूल रूप से सत्व,रज तथा तमस की साम्यावस्था को कहते है। तीनो आवेश परस्पर एक दूसरे को निःशेष (दमनजतंसप्रम) कर रहे होते है। परमात्मा का तेज परमाणु (त्रित) की साम्यावस्था को

भंग करता है और असाम्यावस्था आरंभ होती है। रचना-कार्य में यह प्रथम परिवर्तन है। इस अवस्था को महत् कहते है। यह प्रकृति का प्रथम परिणाम है। मन और बुध्दि इसी महत् से बनते हैं। इसमें परमाणु की तीन शक्तिफ़या बर्हिमुऽ होने से आस-पास के परमाणुओ को आकर्षित करने लगती है। अब परमाणु के समूह बनने लगते है। तीन प्रकार के समूह देखे जाते है। एक वे है जिनसे रजस् गुण शेष रह जाता है। यह तेजस अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इलेक्टोन कहते है। दूसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें सत्व गुण प्रधान होता है वह वैकारिक अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक प्रोटोन कहते है। तीसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें तमस् गुण प्रधान होता है इसे वर्तमान विज्ञान की भाषा में न्यूटोन कहते है। यह भूतादि अहंकार है। इन अहंकारों को वैदिक भाषा में आपः कहा जाता है। ये(अहंकार) प्रकृति का दूसरा परिणाम है। तदनन्तर इन अहंकारों से पाँच तन्मात्रएँ (रूप, रस) रस,गंध, स्पर्श और शब्द) पाँच महाभूत बनते है अर्थात् तीनों अहंकार जब एक समूह में आते है, तो वे परिमण्डल कहाते है। परिमण्डलों के समूह पाँच प्रकार के हैं। इनको महाभूत कहते हैं। इन पत्त्वमहाभूतों से समस्त चराचर सृष्टि का निर्माण होता है।

योग दर्शन में जगत् सम्बन्धी विचार —

योग-दर्शन में ईश्वर को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है। विश्व की सृष्टि प्रकृति के विकास के फलस्वरूपही हुई है। यद्यपि ईश्वर विश्व का सृष्टा नहीं है, फिर भी वह विश्व की सृष्टि में सहायक होता है। विश्व की सृष्टि पुरुष और प्रकृति के संयोजन से ही आरम्भ होती है। पुरुष और प्रकृति दोनों एक-दूसरे से भिन्न एवं विरूद्ध कोटी के हैं। दोनों को संयुत्तफ़ करने के लिए ही योग-दर्शन में ईश्वर की मीमांसा हुई है। अतः ईश्वर विश्व का निमित्त कारण है, जबकि प्रकृति विश्व का उपादान कारण है। इस बात को विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्र ने प्रमाणिकता दी है।

मीमांसा-दर्शन में जगत विचार—

उत्तरमीमांसा (वेदांत) अज्ञान से सृष्टि और आत्मज्ञान से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है। अन्य दर्शनों में द्वयणुकादि क्रम से महाभूत पर्यन्त महासृष्टि और महाभूत से परमाणु पर्यन्त विनाश को महाप्रलय कहा है। अर्थात् संपूर्ण भाव कार्य द्वयणुकादि क्रम से उत्पन्न होते हैं और स्थूल से परमाणु पर्यंत जाकर नष्ट हो जाते हैं। पंच महाभूतों में पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु नित्य हैं। आकाश स्वयं ही नित्य है, किंतु पूर्व मीमांसा के अनुसार दो प्रकार की सृष्टि और तीन प्रकार के प्रलय होते हैं, जिनमें महासृष्टि और ब्रह्माण्ड सृष्टि शब्द से दो सृष्टि कही गई है। ऐसे ही प्रलय, महाप्रलय और ब्रह्माण्ड प्रलय शब्द से तीन प्रलय कहे गए हैं। उनमें ब्रह्माण्ड सृष्टि और ब्रह्माण्ड प्रलय आजकल के समान ही माना गया है। उदाहरणार्थ किसी स्थल विशेष का भूकंप आदि से विनाश हो जाता है और कहीं पर नवीन वस्तु की सृष्टि हो जाती है। महासृष्टि में परमाणुओं से द्वयणुकादि द्वारा पंचमहाभूत पर्यन्त नवग्रहादिकों की सृष्टि होती है। मत्स्यपुराणादि में भी ब्रह्माण्ड प्रलय के अंतर्गत विद्यमान पदार्थों की स्थिति का विवरण प्राप्त होता है, किंतु पूर्व मीमांसा महासृष्टि और महाप्रलय को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार सभी पदार्थों के नाश में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। अतः मीमांसा दर्शन ब्रह्माण्ड सृष्टि और ब्रह्माण्ड प्रलय को ही मानता है।

वेदान्त दर्शन में जगत् विचार —

वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है। माया से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु उत्पन्न होती है, वायु से अग्नि उत्पन्न होती है तथा अग्नि से जल उत्पन्न होता है। इस प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से सूक्ष्म भूतों का निर्माण होता है। पाँच स्थूल भूतों का निर्माण, पाँच सूक्ष्म भूतों का पाँच प्रकार के संयोग होने के फलस्वरूप होता है। जिस सूक्ष्म भूत को स्थूल भूत में परिवर्तित होना है, उनका आधा भाग (1/2) तथा अन्य चार सूक्ष्म तत्त्वों के आठवें हिस्से (1/8) के संयोजन से पाँच स्थूल भूतों का निर्माण होता है। पाँच सूक्ष्म भूतों से पाँच स्थूल भूतों का अविर्भाव का क्रम इस प्रकार होता है

स्थूल आकाश = 1/2- आकाश , 1/8- वायु, 1/8- अग्नि ,1/8- जल, 1/8- पृथ्वी।

स्थूल वायु= 1/2 वायु,1/8 आकाश ,1/8 अग्नि ,1/8 जल ,1/8 पृथ्वी।

स्थूल अग्नि = 1/2 अग्नि ,1/8 आकाश ,1/8 वायु , 1/8 जल , 1/8 पृथ्वी।

स्थूल जल = 1/2 जल ,1/8 आकाश ,1/8 वायु ,1/8 अग्नि , 1/8 पृथ्वी।

स्थूल पृथ्वी = 1/2 पृथ्वी ,1/8 अकाश ,1/8 वायु ,1/8 अग्नि ,1/8 जल।

इस क्रिया को पंचीकरण कहा जाता है। प्रलय का क्रम सृष्टि के क्रम से प्रतिकूल है। प्रलय के समय पृथ्वी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में तथा आकाश का ईश्वर की माया में लय हो जाना है।

रिक्त स्थान की पूर्ति—

1- न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ----------के सिद्धान्त को अपनाता है।

2- सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम ---------- हुआ है।

3- योग-दर्शन में ---------को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है।

4. मीमांसा ----------से सृष्टि और-------से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है।

5. वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति में सर्वप्रथम ईश्वर से ------सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है।

1.4 सारांश

भारतीय चिन्तन परम्परा में वेद सभी विद्याओं के मूलाधार है। वैदिक वाड्मय में सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में सर्वप्रथम वर्णन ऋग्वेद में आया है। ऋग्वेद के अदिति सूत्त, विश्वकर्मा सूक्त, पुरुष सूक्त, प्रजापति सूक्त, नासदीस सूक्त, ऋत्त सूक्त तथा अथर्ववेद के कालसूक्त आदि सूक्तों में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अदिति सूक्त में सर्वप्रथम सृष्ट्युिक्पत्ति का वर्णन आया है। तदनन्तर विश्वकर्मा स्वयमेव अग्नि में प्रविष्ट हो गया। विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथवी की रचना की। पुरुष सूक्त में वर्णन आया है कि वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रुपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रुपों में प्रकट होता है और तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। पुरुष के भव्य स्वरुप का वर्णन सूक्त के प्रारम्भिक चार मन्त्रें में किया गया है। सूक्तों में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसी आदि पुरुष महाविष्णु से विराट् हुआ। उस विराट् का अधिपुरुष वही है। प्रजापति सूक्त सूक्त का ऋषि प्रजापति का पुत्र हिरण्यगर्भ है जिसका अर्थ है 'सुवर्णमय अण्डे को गर्भ में धारण करने वाला प्रजापति' हिरण्यगर्भ सूक्त में दश ऋचाएँ हैं। सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और द्युलोक को धारण किया। नासदीय सूक्त के अनुसार सृष्टि

की उत्पत्ति होने से पूर्व आकाश की अन्धकाररूप स्थिति का वर्णन है। ऋत सूक्त के अनुसार तप से ऋत अर्थात् प्राकृतिक प्रवाह अर्थात् द्रव्य और सत्य अर्थात् नित्य तत्त्व सत्ता की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर ऋत और सत्य से रात्रि उत्पन्न होती है। तप से यह जल से युक्त महान् समुद्र और सूक्ष्म जलों से व्याप्त आकाश प्रकट हुआ। जलापूरित समुद्र से संवत्सर प्रकट होता है। संवत्सर के प्रकट होने के पश्चात् अहोरात्र की सृष्टि हुई अर्थात् दिन और रात्रि प्रकट हुए। उस कालरुप ईश्वर द्वारा सूर्य, चन्द्रमा द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोक अर्थात् प्रकाश्य तथा अप्रकाश्य समस्त पदार्थों को पूर्व काल के अनुसार बनाया। इस प्रकार ऋत सूक्त में सृष्टि प्रकिया का कम शब्दों में अतीव सारगर्भित वर्णन किया गया है। अथर्ववेद के काल सूक्त में भी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में काल के स्वरूप का वर्णन करते हैं जो बड़े ही रहस्यमय ढंग से काल की तुलना सूर्य से अर्थात् सूर्य की सात किरणों-रुपी घोड़ों से की गई है। सूक्त के अनुसार अन्ततः काल ही चराचर प्राणियों को उत्पन्न करने वाला है और भूत, भविष्य, वर्तमान तीन प्रकार के कालों का आधार है और पृथिवी, स्वर्गादि विविध लोकों को सृजन करने वाला है।

किसी वस्तु की उत्पत्ति अथवा निर्माण सृष्टि कहलाती है। चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। सूर्यसिद्धान्त के सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं तथा ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर-अचर की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से 47400 दिव्य वर्ष बीत गए। वेदों में सृष्टि की अवधारणा के चार सिद्धान्त प्राप्त होते हैं - विराट पुरूष से सृष्टि की उत्पत्ति, विश्वकर्मा से सृष्ट्युत्पत्ति, हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से से सृष्ट्युत्पत्ति तथा ब्रह्मा से विश्व की उत्पत्ति। पुराणों में भी सृष्टि की अवधारणा का वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु पुराण के अनुसार इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण विष्णु हैं। पप्र पुराण के अनुसार सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला परमब्रह्म स्वेच्छामय सनातन भगवान् सबका बीज स्वरूप है गरूड़ पुराण में जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीड़ा कहा है। मत्स्य पुराण के अनुसार जगत् के स्रष्टा नारायण है। नारदीय पुराण के अनुसार समस्त जगत् नारायण में व्याप्त है। दर्शन शास्त्र में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन प्रायः सभी आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनशास्त्र में किया गया है। न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को अपनाता है। असके अनुसार विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरूष और प्रकृति से हुआ है। वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है। अत: इस प्रकार इस इकाई में आपने अदिति सूत्त, विश्वकर्मा सूक्त, पुरुष सूक्त, प्रजापति सूक्त, नासदीस सूक्त, ऋत्त सूक्त तथा अथर्ववेद के कालसूक्त आदि सूक्तों में वर्णित सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में एवं वेदों पुराणों तथा दर्शनशास्त्र में सृष्टि की परिकल्पना के विषय में विस्तार से अध्ययन किया।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

लयकर्ता - अंत करने वाला

अविनाशी - जिसका कभी अंत ना हो

अव्यत्तफ़ - वाणी के द्वारा जिसका वर्णन न किया जा सके।
निर्जल - जल से रहित
निरंजन - दुर्गुण एवं दोष से रहित, निगुर्ण ब्रह्म
सृष्टिवाद - सृष्टि से सम्बन्धित सिद्धान्त
अविनाशी - जिसका कभी अन्त ना हो
हविष्य - यज्ञ के समय अग्नि में डाले जाने वाले पदार्थों का मिश्रण।
संहारकर्त्ता - नाश करने वाला
गर्भाण्ड - गर्भ में स्थित अण्डा
परिधियां - सीमाएं
समिधाएं - यज्ञ के लिए जलाई जाने वाली लकड़ी
द्युलोक - आकाश
अहोरात्र - दिन तथा रात्रि

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न—1

अति लघूत्तरीय प्रश्न -
1-72वाँ
2-अदिति को
3-अण्ड
4-आठ
5-अग्नि

लघूत्तरीय प्रश्न—

1-विश्वकर्मा ने द्विविध शरीर धारण किया था। एक शरीर को अग्नि में याज्ञिक हवि के रूप में समर्पित किया और दूसरे शरीर से जगत् की संरचना की।
2-विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया
3-विश्वकर्मा सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का 81वां तथा 82 वां सूक्त है।
4-ग्रन्थों में विश्वकर्मा का तादात्म्य प्रजापति के साथ स्थापित किया गया है।
5-विश्वकर्मा अपनी भुजाओं तथा पदों के प्रेरण से आकाश तथा पृथ्वी को उत्पन्न करते हैं।

रिक्त स्थान की पूर्ति —

1-नारायण
2-सिरों, आँखों, पैरों
3-अविनाशी
4-शरद ऋतु
5-चन्द्रमा

बहुविकल्पीय प्रश्न —

1- (ख)

2. (क)

3. (घ)

4. (ख)

5. (क)

सत्य/असत्य प्रश्न

1-सत्य

2-असत्य

3-सत्य

4-असत्य

5-सत्य

बोध प्रश्न—2

अतिलघूत्तरीय प्रश्न—

1- 14

2- 2- 360

3- 3- चार

4- 4- 4320000000

5- 5- 47400

लघूत्तरीय प्रश्न —

1. ट्टग्वेद के पुरूष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण विराटपुरूष बताया गया है।
2. विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण तथा भुजाओं सं क्षत्रिय उत्पन्न हुए।
3. विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया
4. हिरण्यगर्भ आत्माओं को बल का देने वाला है,
5. ब्रह्मा का संकल्प जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था।

बहुविकल्पीय प्रश्न —

1- (ख) 2. (क) 3. (ख) 4. (घ) 5. (ख)

रिक्त स्थान की पूर्ति —

1-सृष्टिवाद

2-पुरूष और प्रकृति से

3-ईश्वर

4-अज्ञानए आत्मज्ञान

5-पाँच

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1-ऋग्वेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2-अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016
3- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन ज्वाहरनगर दिल्ली, 1990
4- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006
5- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008
6. सूर्यसिद्धान्तः -आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री,चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004
7- भारतीय दर्शन की रूपरेखा - प्रो- हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1983
8-भारतीय दर्शन, डा- राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली -6, 1986

1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1-सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019
2-वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर,
3-वेद व विज्ञान, स्वामीप्रत्यगात्मानन्दस्वामी,अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन
4-सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019
5-वेद-विज्ञानचिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1-हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार सृष्टि की अवधारणा का वर्णन विस्तार से कीजिए।
2-विश्वकर्मा सूक्त सृष्टि की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
3-पुरुष सूक्त में वर्णित सृष्टि की अवधारणा का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4-नासदीय सूक्त के अनुसार सृष्टि की अवधारणा को विस्तार पूर्वक स्पष्ट कीजिए।
5-प्रजापति सूक्त के अनुसार सृष्टि की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
6-सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति के काल पर निबंध लिखिए।
7-वेदों में वर्णित सृष्टि परिकल्पना का विस्तार से वर्णन कीजिए।
8-पुराणों के अनुसार सृष्टि की परिकल्पना की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
9-सांख्य तथा योग दर्शन के अनुसार सृष्टि की अवधारणा सविस्तार स्पष्ट कीजिए।
10-वेदान्त दर्शन में वर्णित सृष्टि की परिकल्पना का वर्णन कीजिए।

इकाई-2 सृष्टि संरचना एवं स्वरूप

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सृष्टि संरचना एवं स्वरूप
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

सृष्टि विज्ञान से सम्बन्धित यह चतुर्थ खण्ड कि द्वितीय इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने सृष्टि की अवधारणा का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में सृष्टि संरचना एवं स्वरूप का वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

वैदिक साहित्य में सृष्टि के विषय पर बहुत स्थानों पर विस्तार से विचार किया गया है। लौकिक साहित्य के ग्रन्थों में भी सृष्टि संरचना के स्वरूप का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। सृष्टि उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार रहा- आकाश, ज्वलनशील वायु, अग्नि, जल और का मण्डल। नीहारिका मण्डल में ही सौर मण्डलों ने स्थान पाया। पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से छिटक कर अलग होने के बाद धीरे-धीरे परिवर्तित होकर वर्तमान स्वरूप में हुई। सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व क्या था ? सृष्टि की संरचना कैसे हुई? इससे पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि सृष्टि की संरचना का कार्य कब प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि संरचना का प्रारम्भ कब हुआ। इस इकाई में आप सृष्टि संरचना के काल तथा वेदों, वेदाङ्गादि साहित्य में वर्णित सृष्टि की संरचनाके विषय में अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- सृष्टि संरचना के स्वरूप की व्याख्या कर सकेंगे।
- पुराणों में सृष्टि संरचना का वर्णन कर सकेंगे
- सृष्टि संरचना को बताने में समर्थ होंगे।
- सृष्टि की संरचना का समय बता सकेंगे।
- लौकिक साहित्य के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का विवेचन करने में समर्थ होंगे।

2.3 सृष्टि संरचना एवं स्वरूप

सृष्टि संरचना के विषय में ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि इस चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ। यह वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध हो गया है कि ब्रह्मांड की रचना के समय पृथ्वी भी अस्तित्व में आई। वैदिक विज्ञान के अनुसार सृष्टि का रचयिता "परब्रह्म" ईश्वर है। सृष्टि पूर्व ऋग्वेद के नासदीय सूत्र (१०/१२९/१ व २) के अनुसार "न सदासीन्नो ,सदासीत्त दानी। न सीद्रजो नो व्योमा परोयत ॥ "आनंदी सूत स्वधया तदेकं। तस्माद्वायान्न परःकिन्चनासि ॥" अर्थात् प्रारंभ में न सत् था न असत, न परम व्योम व व्योम से परे लोकादि, सिर्फ वह एक अकेला ही स्वयं की शक्ति से गति शून्य होकर स्थित था, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं था। तथा- "अशब्दम स्पर्शमरूपमव्ययम, तथा रसम नित्यं गन्ध्वच्च यात." (कठोपनिषद -१/३/१५) अर्थात् वह ईश्वर अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, नित्य व अनादि है। भार रहित व गति रहित, स्वयम्भू है, कारणों का कारण, कारण-ब्रह्म है। उसे ऋषियों ने आत्मानुभूति से जाना व वेदों में गाया। इस विषय में गहन सूचना का सन्दर्भ वेदों के चक्षु स्वरूप ज्योतिषशास्त्र है। ज्योतिषशास्त्र में सृष्ट्यादि से लेकर प्रलय पर्यन्त काल की गणना की गई है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कालमानाध्याय में कहा गया है

कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। अर्थात् ब्रह्मा का कल्प तुल्य दिन पूर्ण होने पर प्रलय होती है। तदनन्तर एक कल्प तुल्य रात्रि में वह विश्राम करते है। द्वितीय अहोरात्र प्रारम्भ होने पर वह संसार का निर्माण कार्य प्रारम्भ करते हैं।

इस प्रकार दो कल्प तुल्य ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है। एक कल्प में सन्धि सहित 14 मनु होते हैं। प्रत्येक मनु में 71 महायुग होते हैं। एक महायुग का मान 12000 दिव्य वर्ष होता है। दिव्य वर्ष देवताओं से सम्बन्धित वर्ष होता है जिसमें 360, देवताओं के दिन होते हैं। देवताओं के एक दिन में 360 सौरदिन होते हैं। सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल एक सौर दिन कहलाता है तथा 360 सौर दिन का एक सौरवर्ष जो देवताओं का एक दिन दिन अथवा दिव्यदिन है।

एक महायुग में कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग नामक चारयुग सन्धि सहित होते हैं। चार हजार दिव्य वर्ष का एक कृतयुग कहा है। इस युग की जितने दिव्य वर्ष की अर्थात् 400 वर्ष की सन्ध्या होती है और उतने ही वर्षों की अर्थात् 400 वर्षों का सन्ध्यांश का समय होता है अर्थात् कृतयुग का कुल मान 4800 दिव्यवर्ष है। त्रेता युग का मान 3000 दिव्यवर्ष तथा 300 वर्ष की संध्या 300 वर्ष सन्ध्यांश कुल मान 3600 दिव्यवर्ष है। द्वापर युग का मान 2000 दिव्यवर्ष, 200 दिव्यवर्ष सन्धि एवं 200 दिव्यवर्ष संध्यांश कुल मान 2400 दिव्य वर्ष तथा कलियुग का मान 1000 दिव्यवर्ष, सन्धि-संध्यांश 200 वर्ष कुल मान 1200 वर्ष है। इस प्रकार कुल मान 4800+3600+2400+1200=12000 दिव्यवर्ष एक महायुग का मान होता है।

देव युगों को 1000 से गुण करने पर जो काल परिणाम निकलता है, वह ब्रह्मा का एक दिन और उतने ही वर्षों की एक रात समझना चाहिए। यह ध्यान रहे कि एक देव वर्ष 360 मानव वर्षों के बराबर होता है। जो लोग उस एक हजार दिव्य युगों के परमात्मा के पवित्र दिन को और उतने की युगों की परमात्मा की रात्रि समझते हैं, वे ही वास्तव में दिन-रात = सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय काल के विज्ञान के वेत्ता लोग हैं। इस आधार की सृष्टि की आयु = 12000 ×1000 देव वर्ष = 12000000 देव वर्ष 12000000×360 = 4320000000 मानव सौरवर्ष। अतः 12000000 देव वर्ष = 4320000000 मानव वर्ष पहले जो बारह हजार दिव्य वर्षों का एक दैव युग कहा है, इससे 71 (इकहत्तर) गुणित अर्थात् 12000×71 = 852000 दिव्य वर्षों का अथवा 852000×360= 306720000 वर्षों का एक मन्वन्तर का काल परिणाम गिना गया है। इस प्रकार वह महान् परमात्मा असंख्य मन्वन्तरों को, सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय को बार-बार करता रहता है, अर्थात् सृष्टि संरचना प्रवाह से अनादि है। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 4320000000 सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि की रचना का कार्य प्रारम्भ हुआ।

सृष्टि की रचना का प्रारम्भ कब हुआ ? इस विषय पर विचार करने के पश्चात इस विषय पर विचार करना आवश्यक है कि सृष्टि में मानव की उत्पत्ति कब हुई। सूर्यसिद्धान्त में इस विषय पर विचार किया गया है। समस्त वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं। वैदिक वाङ्मय में परब्रह्म को ही प्रजापति, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ, विराट पुरुष आदि के नाम से सम्बोधित किया गया है। वेदाङ्ग-ज्योतिषशास्त्र के आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के कालमानाध्याय में वर्णन सृष्टि काल के विषय इस प्रकार से वर्णन आया है – '**ग्रहर्क्ष-देव-दैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्। कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः**'। अर्थात् ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि

चर (जंगम जीव-जन्तु) अचर (स्थावर वृक्ष पर्वतादि) की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से शत गुणित 474 दिव्य वर्ष अर्थात् 474×100 = 47400 दिव्य वर्ष बीत गए। एक दिव्यवर्ष में होते हैं अर्थात 47400 × 360 = 17064000 सौर वर्ष। तथा 4320000000-17064000 = 4302936000 सौरवर्ष। उक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि सूर्यसिद्धान्त के काल से 4320000000 सौर वर्ष पूर्व सृष्टि की रचना प्रारम्भ हुई तथा 4302936000 सौरवर्ष पूर्व सृष्टि की सम्पूर्ण गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ। अर्थात ग्रह, नक्षत्रों ने चलना प्रारम्भ किया तथा पृथ्वी पर चराचर का प्रारम्भ हुआ।

वैदिक साहित्य के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का उद्देश्य—

सृष्टि संरचना के स्वरूप को लेकर सर्वप्रथम यह विचार उत्पन्न होता है कि यह दृश्यमान जगत् कहाँ से आया ? इसको लाने वाला कौन है ? इसका निर्माणकर्ता कौन है ? इत्यादि अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसका समाधान क्या है? यह सृष्टि संरचना का स्वरूप -क्रम अनन्त है और इसकी जिज्ञासाएँ भी अनन्त हैं। इस विषय से सम्बन्धित जिज्ञासाएँ वेदों में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होती हैं। विश्वकर्मा सूक्त में "किंस्विद्वनङ्कऽउसवृक्षआस यतोद्यावापृथिवीनिष्टतक्षुः" जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा गया है कि वह कौन सा वन है तथा वन का कौन सा वृक्ष है जहाँ से आकाश तथा पृथ्वी को बनाया। इसी प्रकार ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि संरचना के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है। यथा –

नासदासीन्नो सदासात्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नंभः किमासीद् गहनंगभीरम् ॥१॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
अनीद वातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर किं च नास ॥२॥
तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकं॥३॥
कामस्तदग्रे समवर्ततधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

अर्थात् सृष्टि की संरचना से पहले उस समय वह ब्रह्म तत्व ही केवल प्राण युक्त, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रूप में विराजमान था, उस माया सहित ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं था और उससे परे भी कुछ तत्व नहीं था। शतपथ ब्राह्मण (6/11/1/6) में सृष्टि संरचना के संदर्भ में वर्णन प्राप्त होता है कि पूर्व काल में सलिल ही था उन जलों ने प्रजा की कामना से तप किया तब उनमें हिरण्मयाण्ड उत्पन्न हुआ, तथा उससे प्रजापति उत्पन्न हुए। सभूरिति व्याहरत् सेयं पृथिव्यभवद्भुव इति तदिदमन्तरिक्षमभवत् स्वरिति सासौ द्यौरभवत् । अर्थात् प्रजापति ने भू शब्द के उच्चारण के द्वारा भू लोक भुवः शब्द से अन्तरिक्ष लोक तथा स्वः शब्द के द्वारा दिव लोक अर्थात् स्वर्गादि लोकों कि संरचना की। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में 16 मन्त्रों में सृष्टि संरचना के स्वरूप का कारण विराट पुरुष को बताया गया है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वतोवृत्वात्त्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥
पुरुष एवेदं सर्वं यत् भूतम् यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेना तिरोहति॥
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना ऽ अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनशाखीय वेददीप भाष्यकार आचार्य महीधर कहते हैं-

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो हस्त उत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां नमति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः॥

अर्थात् अकेले ही बिना किसी के सहयोग से विश्वकर्मा देव ने द्युलोक एवं भूलोक को बाहुरूपी धर्म और अधर्म के द्वारा तथा पतनशील पञ्चभूतों के उपादान कारण के द्वारा समस्त जीवों की रचना करते हैं वह विश्वकर्मा सब तरफ से चक्षु-मुख भुजा एवं पद वाले हैं। ऋग्वेद के 81 एवं 82वें विश्वकर्मा सूक्त में विश्वकर्मा को सृष्टि संरचना के स्वरूप का कल्पयिता माना गया है। विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथ्वी की रचना की। द्यावापृथ्वी के प्राचीन तथा अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ किया। द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि, विश्वकर्मा बृहत् हैं तथा वो सब जानते हैं तथा सब कुछ देखते है। 82वे सूक्त में विश्वकर्मा का सर्वोच्चशक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से सृष्टिसंरचना का स्वरूप इस प्रकार किया गया है।—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकासीत्।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवायहविषा विधेम॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मर्त्युः कस्मै देवायहविषा विधेम॥

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और द्युलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्म बल और भौतिक शारीरिक बल देने वाला है, अमृतत्व और मृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्र भी जिसकी महती महिमा का यशो गान करते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से देखता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रूप गर्भ को धारण करती हुई तथा

अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में संरचित हुई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु की संरचना हुई।

ब्रह्मा से सृष्टिसंरचना का स्वरूप ।—

वेदों के अनुसार ब्रह्म सृष्टि के रचयिता हैं। ऋग्वेद के सूक्तों में वर्णन किया गया है कि सृष्टि के आदि में न सत् था और न असत् था, न आकाश था, न वायुमण्डल था और न दिन-रात थे। केवल ब्रह्म की ही सत्ता थी। ब्रह्म को किसी ने उत्पन्न नहीं किया, वह स्वयं उद्भूत (स्वयं उत्पन्न) है। ब्रह्म अनादि है। ब्रह्म में स्वयं संकल्प शक्ति होती है। ब्रह्म ने सृष्टि के सृजन का संकल्प किया। उनका यह संकल्प ही जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक् व्याप्त था। उस महाज्योति परमतत्त्व से ऋत और सत्य की उत्पत्ति हुई। यथा-**ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः।।** अर्थात् उस जाज्वल्यमान परमतेज से ऋतं (ज्ञान) तथा सत्य की संरचना हुई। उन परमाणुओं के स्थूल होने पर पदार्थ की संरचना हुई। दिनरात्रि की रचना हुई तथा जल से परिपूर्ण समुद्र की सृष्टि संरचना हुई। इस प्रकार सृष्टि संरचना के स्वरूप का प्रारम्भ हुआ। ब्रह्म से की संकल्पना का वर्णन अन्य उपनिषदों, पुराणों तथा दर्शन शास्त्रादि में भी प्राप्त होता है।

लघूत्तरीय प्रश्न —

1.ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण किसे बताया गया है।

2.विराट पुरुष के किन अंगों से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए।

3.विश्वकर्मा ने सर्वथम किस को उत्पन्न किया

4.हिरण्यगर्भ कौन-सा बल देने वाला है,

5.ब्रह्म का संकल्प कैसा था।

पौराणिक सृष्टि प्रक्रिया—

सृष्टि संरचना में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। प्रायः सभी पुराणों में सृष्टि संरचना का स्वरूप वर्णन प्राप्त होता है।–

1. मत्स्य पुराण के अनुसार भी महाप्रलय व्यतीत होने के अनन्तर समस्त जगत् की स्थिति अन्धकार में घने तम से आच्छन्न थी, यथा - अन्धकार में सोए हुए चर वा अचर वस्तु की भाँति न तो पता लगने योग्य, न पहचानने योग्य और न ही कहीं कोई वस्तु जानने योग्य थी। निराकार, इन्द्रियों से परे, सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म, महान् से अत्यधिक महत्ता और अविनाशी अर्थात् अविनाश सत्ता वाले, जगत् में नारायण नाम से प्रसिद्ध, इस महाप्रलय के अनन्तर संसार में पुण्य कर्म के प्रभाव से घने तम का विनाश करते हुए चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वयं प्रादुर्भूत हुए।

2. विष्णु पुराणमें पराशर जी कहते हैं कि इस सृष्टि संरचना का मूल कारण विष्णु हैं।

3. पद्मपुराण के अनुसार जगत् के प्रलयके पूर्व कुछ भी नहीं था। सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति नित्यमाया रहित, शान्तनिर्मल, नित्यनिर्मल आनन्दसागर अर्थात् आनन्द से पूर्णतः परिपूर्ण तथा नितान्त स्वच्छ थी जिसकी मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष सदा इच्छा किया करते हैं। वह ज्योतिर्ब्रह्म सर्वज्ञ है, ज्ञान स्वरूप वाला है तथा वही सृष्टिका मूल कारण है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी वर्णित है कि विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला

है। महत्तत्त्व आदि रूप वाला सृजन की ओर उन्मुख होता हुआ अपनी ही कला द्वारा हृदय में नित्य सूक्ष्म को एकचित्त करके सृजन करने वाला परब्रह्म है।

4. विष्णु पुराणके सदृश ही गरुड पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीडा कहा है। नर, नारायण, वासुदेव, निरंजन परमात्मा तथा परब्रह्म भी भगवान विष्णु ही है। इस जगत् के जन्म, पालन और प्रलयादि के कारण भी वे ही हैं। वही व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाले हैं तथा पुरुष और काल रूप से अवस्थित है। व्यक्त विष्णु स्वरूप है तथा पुरुष तथा काल इन्हीं का अव्यक्त रूप है।

5. नारदीय पुराण द्वारा भी समस्त जगत् उसी नारायण में व्याप्त है। नारायण ही परम-तत्त्व अथवा परमब्रह्म का स्वरूप है। नारायण अविनाशी अनन्त एवं सर्वव्यापी है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित श्री मद्भागवत पुराण वैष्णव पुराणों में एक अद्वितीय महनीयता से मण्डित है श्रीमद् भागवत के अनुसार उस परम पुरुष परमात्मा ने काल रूपी निमित्त कारण को लेकर क्रीडा के लिए अपने को ही विश्वरूप में सृजन किया है। इसके पूर्व विष्णु माया ने इस विश्व का संहार कर दिया था और विश्व की तन्मात्रा ब्रह्म के स्वरूप में लीन हो गई थी उसी को उन अव्यक्त मूर्ति वाले नारायण ने काल को निमित्त बनाकर पुनः प्रकाशित कर दिया। यह विश्व जैसा इस समय है वैसा ही इसके पहले था और आगे भी ऐसा ही रहेगा इसमें प्राकृत अर्थात प्रकृति से उत्पन्न होने वाला 6 और विकृति से उत्पन्न मनुष्य आदि जीव कुल नौ प्रकार की सृष्टि होती है। दसवीं सृष्टि में वह परम पुरुष स्वयं रहता है। काल द्रव्य और गुण इन तीनों से तीन प्रकार का प्रलय भी होता है। ऊपर जो 9 प्रकार की सृष्टि बतला कर आए हैं उनमें से पहली सृष्टि उस परम पुरुष द्वारा गुणोंकी विद्यमान महत्तत्त्व लक्षणात्मकसे होती है दूसरी सृष्टि अहंकारसे होती है जिससे द्रव्य ज्ञान और क्रियाकी उत्पत्ति हुआ करती है तीसरी सृष्टि में वायु आदि सूक्ष्मभूत उत्पन्न होते हैं। यह सृष्टि द्रव्यशक्तिमती है, और इनमें पंचमहाभूत जायमान होते हैं । इसी प्रकार चतुर्थ सृष्टि में ज्ञान क्रियात्मक इंद्रियों की उत्पत्ति होती है। पंचम सृष्टि वैकारिक, ज्ञान शक्ति संपन्न और इंद्रियों के अधिष्ठाता देवताओंकी उत्पत्ति होती है। छठी सृष्टि से अंधकार उठता है जो अज्ञान का जन्मदाता है। यह छह प्रकार की प्राकृत सृष्टिओं का वर्णन किया। अब वैकृतसृष्टि वर्णन करते हैं, ऊपर जो सृष्टि बताई गई हैं वह सब भगवानकी रजोगुण लीला रूप वाली है। सातवीं मुख्य सृष्टि छह प्रकार के वृक्षों की उत्पत्ति होती है, जैसे- वनस्पति अर्थात् बिना फूल के फल देने वाले वृक्ष जैसे गूलर आदि औषधि, बोए जाने पर पके फल देकर समाप्त हो जाने वाले धान आदि, लता किसी के सहारे ऊपर चढ़ने वाली। सार-सार त्वक् अर्थात् जिनके छिलके में ही तत्व रहता है जैसे- बांस-बेत आदि। वीरुध यह भी लता के समान होती है किंतु इसे ऊपर चढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती है, जैसे- जूही आदि । और द्रुम जो फूलने के बाद फले जैसे आम अमरूद आदि । ये छहों प्रकार के वृक्ष पृथ्वी के भीतर से अपना आहार ऊपर को खींचते हैं इनमें चेतना शक्ति नहीं दिखती इनके भीतर स्पर्श शक्ति प्रबल होती है। और देश काल की अवस्थाके अनुसार इनमें विविध प्रकार के परिणाम भी लक्षित होते हैं। आठवीं सृष्टिसे तिर्यग्- पक्षी योनि के जीवों की उत्पत्ति होती है जिनके कुल 28 भेद होते हैं। जैसे अविद अर्थात् स्तनादि ज्ञान शून्य । भूरि तमस अर्थात् केवल अपने आदर की जानकारी रखने वाले। घ्राणज्ञ अर्थात् नाकसे सूंघ कर समझने वाले। हृदि अवेदि अर्थात् विशेष अनुसंधान करने में असमर्थ। गो, बकरी, भैंस, हिरण, गवय और रुरु अर्थात् मृग विशेष। भेड़ा भेड़ी

और यह 9 प्रकार के पशु दो खुर वाले होते हैं गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर और चमरी यह 6 पशु एक खुर वाले हैं। अब 5 नख वाले पशुओंके नाम जानें कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलाव, खरहा, शल्लक- सेही सिंह, बंदर, हाथी, कछुआ और मगर आदि जन्तु तथा कंक अर्थात् कड़ाकुल, गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भालू, मोर, हंस, सारस, चकवा,कौवा और उल्लू आदि पशु पंछी पंचनख वाले हैं। ऊपर गिनाए मगर आदि जंतु और कंक आदि पक्षी सब मिलाकर 28 प्रकार के तिर्यग् योनि के जंतु होते हैं। उल्टे सोने वाले मनुष्यों की नवीं सृष्टि मानी गई है यह मनुष्य अधिक रजोगुणात्मक तथा कर्मशील हैं और दुख को भी सुख मानते हैं यह तीनों ही सृष्टियाँ वैकृत हैं। देवताओं की सृष्टि भी वैकृत सृष्टि के ही अंतर्गत है किंतु सनत्कुमार आदि की सृष्टि उभयात्मक प्राकृत तथा वैकृतात्मक है क्योंकि यह देवता और मनुष्य दोनों ही नाम से प्रसिद्ध हैं। देव सृष्टि आठ प्रकार की है। जैसे- देव, पितर, असुर, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष,राक्षस,चारण, भूत, प्रेत, पिशाच, सिद्ध, विद्याधर और किंपुरुष आदि ब्रह्माजी की सृष्टि के यह 10 भेद हैं। यह वर्णन श्रीमद्भागवतके तृतीयस्कन्ध के दशमाध्यायमें प्राप्त होता है। ब्रह्मा ने सनक, सनंदन, सनातन और सनत कुमार इन 4 ऋषियों को उत्पन्न किया यह सभी पूर्ण ब्रह्मचारी थे। उन्हें उत्पन्न करने के बाद ब्रह्माने उन सब से सृष्टि संरचना हेतु कहा लेकिन उनकी अनिच्छा प्रकट हुई तब ब्रह्माजीने अपनी अवहेलना समझ कर मन को यद्यपि शांत किया लेकिन क्रोध आने के कारण उनके भ्रू के मध्य भागसे नील लोहित के रूप में देवताओं के पूर्वज अर्थात् भगवान शिव प्रकट हुए। जन्म लेते ही बच्चों की तरह उद्वेग के साथ रोनेके कारण उनका नाम रुद्र कहा। हृदय, इंद्रियां, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा तथा तप। इनके रहने के स्थान बने। रुद्र के सिवाय इनके 11 नाम हैं मन्यु, मनु, महिनस,महान,शिव,क्रतुध्वज,उग्ररेता,भव,काल,वामदेव और धृतव्रत। तथा इनकी संगिनी धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत्सर्पि,इला, अंबिका, इरावती, सुधा, दीक्षा, और रुद्राणी यह 11 रुद्र शक्तियां हुईं। ब्रह्मा के बताए नाम, स्थान और स्त्रियों को अंगीकार करके बहुत सी प्रजाओं की सृष्टिके लिए ब्रह्माने आज्ञा दी हे रुद्र आप प्रजापति हो सृष्टि संरचना करो। ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर रुद्र भगवानने अपने समान बलवान आकृतिमान नील लोहित तत्वको लिए हुए तीक्ष्ण स्वभाव की संतानों को उत्पन्न किया। ब्रह्माजी फिर सृष्टि करने का विचार करने लगे और उनके शरीरसे 10 पुत्र उत्पन्न हुए। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद इनमें ब्रह्माजी की गोदसे नारद अंगूठेसे दक्ष प्रजापति श्वास से वशिष्ठ त्वचासे भृगु हाथ से क्रतु नाभि से पुलह कानोंसे पुलस्त्य ऋषि मुखसे अंगिरा नेत्रों से अत्रि और मन से मरीचि उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी के दाहिने स्तनसे धर्म उत्पन्न हुआ जिसमें नारायण का निवास रहता है उनकी पीठसे अधर्म की उत्पत्ति हुई और अधर्मसे संसारको भयभीत करने वाली मृत्युका जन्म हुआ। ब्रह्माजी के हृदयसे कामदेव भौहोंसे क्रोध निचले ओठ से लोभ मुख से वाणी लिंग से समुद्र और गुदा से पापों के केंद्र राक्षस उत्पन्न हुए। उन चतुरानन की छाया से कर्दम प्रजापति उत्पन्न हुए जो देवहूतिके पति थे उनके मन और उनकी देह से समस्त विश्व उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी के पूर्व मुख से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, तथा शस्त्र होता के द्वारा किए जाने वाले कार्य, अध्वर्यु के कर्तव्य कर्म, स्तुति योग्य ऋचाओं का समुदाय, उद्गाता के गाने योग्य मंत्रों तथा प्रायश्चितात्मक ब्रह्म कर्म उत्पन्न हुए उनके दक्षिण मुखसे आयुर्वेद अर्थात् चिकित्सा शास्त्र धनुर्वेद अर्थात आयुधविद्या, गांधर्वविद्या और स्थापत्य- विश्वकर्मा का शास्त्र उत्पन्न हुआ।

इतिहास महाभारत पंचम वेद माना जाता है। उसे और पुराणोंको ब्रह्माजी ने अपनी चारों मुखों से उत्पन्न किया। इसी प्रकार उनके पूर्व मुखसे षोडशी और उक्थ, दक्षिण मुखसे पुरीषी अर्थात् नयन तथा अग्निष्टोम, पश्चिम मुख्य से आप्तोर्याम तथा अतिरात्र और उत्तर मुख से वाजपेय तथा गोसव नाम के यज्ञ विशेष उत्पन्न हुए। इसी प्रकार ब्रह्मा जी ने अपने पूर्व आदि में पहुंचे क्रमशः पूर्वादि चारों मुख से विद्या अर्थात शुचिता, दान, दया, तप एवं सत्य धर्म के इन चार चरणों तथा ब्रम्हचर्य का गार्हस्थ्य वानप्रस्थ और सन्यास वृत्तियों समेत इन चार आश्रमों को उत्पन्न किया इसके बाद उन्होंने अपने पूर्व आदि मुखों से चार प्रकार का ब्रम्हचर्य जैसे सावित्र उपनयन के दिनों से 3 दिन तक गायत्री अध्ययन के लिए 3 दिन का अनुष्ठान प्राजापत्य अर्थात् 1 वर्ष तक वेदाध्ययन पूर्वक रखा जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत ब्राह्म अर्थात् वेदाध्ययन काल तक किया जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत और **वृहद्** आजन्म पालन किया जाने वाला। ब्रम्हचर्य व्रत और चार प्रकार की गृहस्थी वृत्ति हैं **वार्ता** अर्थात् शास्त्रोक्त कृषि आदि जीविका के कार्य **संचय** अर्थात् यज्ञादि कराने का कार्य **शालीन** अर्थात् अयाचितवृत्ति **शिलोञ्छ** अर्थात् फसल कटने के बाद खेत में गिरे हुए दानों को चुनना यह वृत्तियाँ उत्पन्न हुई। इसी प्रकार वानप्रस्थ वृत्ति में चार भेद हैं, **वैखानस** अर्थात् बिना जोती-बोई भूमि से उपजे अन्न पर जीवन निर्वाह करने वाले, **बालखिल्य** अर्थात् नवीन अन्न प्राप्त होने पर पूर्व संचित अन्न को त्याग देने वाले। **औदुंबर** अर्थात् सवेरे जिस दिशा पर दृष्टि पड़े उधर ही से अन्न या फल मूल लाकर जीवन यापन करने वाले। **फेनप** अर्थात् अपने आप गिरे हुए फल आदि पर जीविका चलाने वाले। इसी प्रकार चार सन्यास वृत्तियां भी ब्रह्मा जी के चारों मुख से उत्पन्न हुई हैं- जैसे **कुटीचक** अर्थात् कुटी बनाकर एक स्थल पर रहना तथा आश्रम कर्म को प्रधान मानकर तदनुसार आचरण करने वाले। **बह्वोद** अर्थात् कर्म की अपेक्षा ज्ञान को प्रधान मानने वाले। **हंस** अर्थात् ज्ञान के अभ्यास में तत्पर। और **परमहंस** (निष्क्रिय) अर्थात् तत्व ज्ञान प्राप्त किए हुए जीवनमुक्त ज्ञानी। इसी तरह ब्रह्मा जी के मुख से **आन्वीक्षिकी-** आध्यात्मिक शास्त्र अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाली आत्मविद्या। **त्रयी** अर्थात् स्वर्ग आदि फल देने और धर्म अर्थ तथा काम को पूर्ण करने वाली कर्म विद्या। **वार्ता** अर्थात् जीविका-व्यापारादि संपादन करने वाली विद्या। **दंडनीति** शासन कार्य को बताने वाली विद्या, तथा चार महाव्याहृतियाँ भूः भुवः स्वः महः आदि उत्पन्न हुई, इसी प्रकार ब्रह्मा जी के हृदय रूपी आकाश से प्रणव अर्थात् ॐकार उनके रोमों से उष्णिक्, त्वचा से गायत्री, मांस से त्रिष्टुप्, स्नायु से अनुष्टुप्, अस्थियों से जगती, मज्जा से पंक्ति, और प्राणों से बृहती नाम के छंद की संरचना हुई। इसी रीति से ब्रह्मा के जीव से ककार से मकार पर्यन्त स्पर्श संज्ञक वर्ण, देह से स्वर वर्ण अकारादि, उनकी इंद्रियों से श ष स ह उष्म संज्ञक वर्ण और उनके बल से य र ल व यह अंतस्थ व्यंजन उत्पन्न हुए, उन प्रजापति के विहार से निषाद, ऋषभ, गांधार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम आदि सात संगीत स्वर उत्पन्न हुए, उस व्यक्त और अव्यक्त ब्रह्मा की शब्द मूर्ति का यह क्रम बताया। वैखरी रूप से व्यक्त और प्रणव रूप से अव्यक्त उन ब्रह्मा जी को उस परिपूर्ण तथा सर्वशक्तिमान ब्रह्म का बोध बना रहता है, उन्होंने जिन महा शक्तिमान मरीचि वशिष्ठ आदि ऋषियों की सृष्टिकी थी वह सृष्टि का विस्तार नहीं कर सके उन्होंने सोचा कि यद्यपि मैं नित्य सृष्टिके विस्तार की चेष्टा करता रहता हूं, फिर भी संतोषजनक विस्तार नहीं होता यह प्रजा तो नहीं बढ़ रही है इसमें देव बाधा है देव के विषय में वे इस प्रकार सोच ही रहे थे—

कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ।ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥
यस्तु तत्र पुमान्सोऽभूत् मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् । स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥
तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ।स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ।आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥
आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमाम् ।दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥

उसी समय ब्रह्माजी का शरीर दो भागोंमें विभक्त हो गया और उन दोनों भागोंमें से एक स्त्री और एक पुरुष इनका जोड़ा उत्पन्न हो गया, उनमें पुरुष स्वयंभू मनु और स्त्री उनकी रानी शतरूपा हुई। अब इनके द्वारा प्रजा बढ़ने लगी स्वयंभू मनुने शतरूपा से 5 संतान उत्पन्न की जिनमें दो पुत्र और 3 कन्याएं थी, पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद पुत्रियां आकूति देवहूति और प्रसूति स्वयंभू मनुने आकूति का मरीचि प्रजापति देवहूति का कर्दम प्रजापति और प्रसूति का दक्ष प्रजापति के साथ विवाह कर दिया जिनकी उत्पन्न की हुई संतानों से सारे संसार की संरचना हुई।

परम पुरुष की आधीनता में रहने वाले काल से गुणों में भेद उत्पन्न हुआ उनके स्वभाव से परिणाम एक रूप का त्याग कर रूपांतर प्राप्त करना और जीव के अदृश्य कर्मों से महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुई महत् तत्व के विकार से और रजो गुण तथा सतोगुण की वृद्धि होती है और उससे तमोगुण प्रधान द्रव्य क्रियात्मक सृष्टि होती है उसी वस्तु को अहंकार कहते हैं उस अहंकार के तीन भेद हैं विकारी का तेजस राजस तमस उन तीनों में तीन प्रकार की शक्तियां अंतर्हित रहती हैं जैसे द्रव्य शक्ति क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति द्रव्य शक्ति पृथ्वी जल आदि पांच महा भूतों का संचालन करती है क्रिया शक्ति इंद्रियों पर प्रभुत्व रखती है और ज्ञान शक्ति प्राणियों को देवताओं की ओर ले जाती है। उनमें से तामस अहंकार के विकार से आकाश की सृष्टि हुई आकाश का मात्रा गुण शब्द है वही शब्द द्रष्टा और दृश्य का लक्षण बताता है। आगे चलकर आकाश के विकार से स्पर्श गुण युक्त वायु की उत्पत्ति हुई। आकाश के सहयोग से वायु में शब्द वही प्राण और तेज युक्त बल के लक्षणों से लक्षित होने लगा फिर वायु के विकार और काल कर्म तथा स्वभाव से रूपवान् तथा शब्द और स्पर्श को नियुक्त तेज की उत्पत्ति हुई तेज के विकार से जल की उत्पत्ति हुई। वह जल आकाश आदि के संयोग से रूप स्पर्श और शब्द गुण संपन्न हुआ। उस जल के विकार से गंधवती पृथ्वी उत्पन्न हुई आकाश आदि के संसर्ग से इसमें रस स्पर्श और रूप यह गुण आए वही कार्य विकार वाले सात्विक अहंकार से मन तथा 10 विकार वाले देवता उत्पन्न हुए जैसे दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनी कुमार यह पांचो क्रमशः कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका के स्वामी है। अग्नि इंद्र उपेंद्र मित्र तथा प्रजापति यह पांच क्रमशः वाणी हाथ-पांव गुदा और शिश्न के स्वामी हैं। तेज के विकार से दस इंद्रियां उत्पन्न हुई क्योंकि ज्ञान शक्ति अर्थात् बुद्धि और क्रिया शक्ति अर्थात् प्राण यह दोनों तेजस अहंकार के ही कार्य हैं इसी से ज्ञान क्रिया की विशेष रूप इंद्रियां भी तेजस अहंकार से सम रचित है ये इंद्रियां हैं जैसे कान, त्वचा, चक्षु, जीह्वा, घ्राण, वाक्, हाथ, पैर, गुदा और लिंग। भाव में अलग अलग रहकर शरीर की रचना नहीं कर सके तब भगवान की शक्ति से प्रेरित होकर सत् और असद् इन दोनों प्रधान गुणों के भाव एक में मिलकर समष्टि और व्यष्टि रूप दो प्रकार के शरीर बने तब हजारों वर्ष बाद जल में पड़े हुए अचेतन अण्ड को काल कर्म तथा स्वभाव की प्रधानता देकर परमात्मा ने जीवित किया उसके

बाद स्वयं परमात्मा उस अण्डे को फोड़कर बाहर निकला। उसके हजारों शिर, हजारों पैर, हजारों हाथ, हजारों आंखें, हजारों मुख और हजारों मस्तक से उसके बाद विद्वानों ने उसी के अंगों से सब लोकों की कल्पना की जांघ से नीचे पैर तक के अंगों से अतल से लेकर पाताल तक के सात लोकों तथा जांघ से ऊपर के अवयवों से पृथ्वी आदि सात लोकों की उत्पत्ति मानी गई, उस परम पुरुष के मुख से ब्राह्मण बाहू दंड से क्षत्रिय दोनों ऊरुओं से वैश्य और दोनों पांव से शुद्र उत्पन्न हुए उस परमात्मा के दोनों पांव से भूलोक, नाभि से भुवः लोक, हृदय से स्वर् लोक, वक्षः स्थल से महर् लोक, की रचना हुई उसकी ग्रीवा से जनोलोक, दोनों स्तनों से तपो लोक और मस्तकों से सत्य लोक की रचना हुई, उन लोगों की अपेक्षा ब्रह्म लोक अर्थात् वैकुंठ सनातन है इसका कभी भी विनाश नहीं होता उस परम पुरुष की कमर में अतल लोक, दोनों उरुओं में वितल लोक, दोनों घुटनों से सुतल लोक और जानुओं से तलाताल लोक की सृष्टि हुई। दोनों गुल्फों में महातल लोक, एड़ियों और पैरों में रसातल लोक और तलुओं में पाताल लोक समझना चाहिए। दुसरी अवधारणा में पैरों में भूलोक, नाभि में भुवः लोक और मस्तक में स्वर्ग लोक की कल्पना संरचित हुई। उस विराट् रूप धारी महापुरुषके मुखसे वचन और अग्नि त्वचा आदि अवयवों से गायत्री आदि छंद और सात धातु तथा उनकी जिह्वा से हव्य अर्थात देवताओं का अन्य कब लिया कब दिया पितरों के उपयुक्त अमृत देवता तथा पितरोंको अर्पण करके शेष बचा अन्य और सभी रसों की उत्पत्ति हुई उनकी घ्राण इंद्रिय से जगत के समस्त प्राणियों के प्राण सामान्य तथा विशेष प्रकार के गंध और दोनों अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए। उनके नेत्रोंसे रूप तेज और सूर्य उत्पन्न हुए उनके कान दसों दिशाएं नक्षत्र आकाश और शब्द के जनक हुए। उनका शरीर सभी वस्तुओं के सारांश और सौंदर्य का केंद्र बना उनकी त्वचा स्पर्श वायु और सभी यज्ञोंका उत्पत्ति स्थान हुई उनके रोम तथा वृक्ष जाति के जनक हुए। जिनसे की यज्ञ के कार्य संपन्न होते हैं उनके केस मेघ के उनकी दाढ़ी मूछ बिजली के हाथ पैर के नाखून शिला और लोकों के जनक हुए। उनके हाथ सबका कल्याण करने वाले लोकपाल जन्मदाता हुए भगवान के विक्रम अर्थात् चलना फिरना से भूर भुवा स्वाहा तीन लोक क्षेम अर्थात् पाए धन की रक्षा और शरण अर्थात् पैसे बचाने वाले का आश्रय हुआ उन नारायण के चरण सभी कामनाओं और वर्कर आधार हुए विराम भगवान का उपस्थ जल वीर्य सृष्टि में एक प्रजापति तथा संतान प्राप्ति के लिए किए जाने वाले सम्भोग से उत्पन्न आनंद का कारण हुआ उनकी गुदा यम मित्र मल त्याग हिंसा कल्याण और नरक का उत्पत्ति स्थान हुआ उन भगवान का पृष्ठ भाग पर आ जाए अधर्म और तमोगुण का आश्रय हुआ उनकी नारियां नदियों का आश्रय हुई और उनकी हड्डियां संसार के पर्वतों का आश्रय बनी उनका उधर अनादि प्रधान तथा समुद्रों और प्राणियों के मरण का उत्पत्ति स्थान हुआ उनका हृदय मन का जन्मदाता हुआ उन पर ब्रह्म की आत्मा धर्म हमारा और आपका सनकादिक को मारो शिव तत्व ज्ञान और सतोगुण का आश्रय हुई । ब्रह्मा नारद शिव तथा सनकारी मुनि देवता दित्य मनुष्य हाथी पक्षी मृत आदि वन जंतु सर्प गंधर्व अप्सरा यक्ष सोगन भूत गण सर्प पशु पितर सिद्ध विद्याधर चारण और वृक्ष आदि विविध प्रकार के जल स्थल तथा आकाश चारी ग्रह नक्षत्र विद्युत मेघादि यह सब और भूत भविष्य तथा वर्तमान नारायण के ही अधीन है उन्होंने अपने विशाल रूप से इस विश्व को घेर रखा है जैसे सूर्य मंडल अपने भीतर बाहर सब तरफ प्रकाश कहलाता है उसी तरह वह विराट पुरुष अपने आप को प्रकाशित करता हुआ जगत के सब प्राणियों तथा वस्तुओं को

प्रकाश पहुंचाता है वह विराट पुरुष मृत्यु और अन्य अर्थात कर्म फल को पार कर गया है इसलिए वह अमृत व मोक्ष रूप निजानंद अर्थात अभय इन दोनों का स्वामी है इसी कारण उसकी अलग नियम महिमा गाई जाती है जो लोग उसके अधीन रहते हैं उन्हें बंधन और मोक्ष दोनों ही समय-समय पर वह परम पुरुष प्रदान करता रहता है यह बताने के लिए पुरुष सूक्त के पादु से विश्वा भूटानी इस वैदिक मंत्र का अर्थ बताते हुए कहते हैं यह भूर लोग आदि सभी लोग और इसके निवासी उसके पांव में स्थित हैं और उसके 3 उसके शेष तीन पदों में अमृत क्षेम और अभय विद्यमान रहा करते हैं पूर्व कल्प में भी संतान ही निश्चित ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और यदि इनके आश्रम तीनों लोगों के बाहर थे और ब्रह्मचर्य व्रत हीन गृहस्थाश्रम ई त्रिलोकी के भीतर विद्यमान थे वह जगत पूज्य परमात्मा दक्षिण और उत्तर इन दोनों मार्गों पर चलता था दक्षिण मार्ग का तात्पर्य है अविद्या सर्वथमय कर्म है विद्या साधन और उपासना रूपी मार्ग है जिस पर चलने से सांसारिक भोगों की प्राप्ति होती है और इसी मार्ग विद्या से मोक्ष होता है वह परमात्मा इन दोनों मार्गों का पारंगत है उस परमात्मा से यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ और उसी में प्रायः इंद्रिय और सतवादी तीनों गुणों से युक्त एक विराट पुरुष जायमान हुआ वही ईश्वर कहलाया वह ईश्वर उस विश्व अपने शरीर और अंड से भी आगे निकल गया। जैसे मंडल के मध्य में रहने वाला सूर्य अपनी किरणों से सर्वत्र प्रकाश पहुंचाता हुआ अंत में वह अपने मंडल और विश्व को लांग जाता है। मुनि लोगों के भी उसे तब जान पाते हैं जब उनकी दे इंद्रियां तथा मन शांत रहता है अशांत पुरुषके हृदय में भी यद्यपि उस महापुरुष की ज्योति जागती रहती है फिर भी दुष्टोंकी विविध तर्कना उनसे वह प्रकाश लुप्त हो जाता है उसका प्रथम अवतार पुरुष है काल स्वभाव सत और असद अर्थात कार्य कारणात्मिका प्रकृति यह उसकी शक्तियां है द्रव्य अर्थात महाभूत अहंकार सतवादी गुण इंद्रियां समझती शरीर तथा विराट स्वराज स्थावर और जंगम यह व्यष्टि शरीर ही उस परम पुरुषके कार्य है ब्रह्मा शिव विष्णु यह दक्ष आदि प्रजापति नारद आदि देवर्षि स्वर्ग लोकके पालक खग लोग पालक नवलोक पालक तल तथा पाताल लोक पालक गंधर्व विद्याधर और चरणोंके रक्षक यक्ष राक्षस और सर्प योगके पालक अथवा समस्त श्रेष्ठ ऋषि पितर दायित्व पति सिद्धोंके स्वामी तथा प्रेत पिशाच भूत कुष्मांड बृंगी आदि जल जंतु अमृत तथा पक्षियोंके अधिपति। यह उनकी विभूति हैं।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ 1॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि॥
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥ 2॥
यथा महान्ति भूतानि पूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ 3॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥ 4॥

श्री मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दोंमें अद्वैत तत्त्वका प्रतिपादन करता है। इस पुराणके द्वितीय स्कन्धके नवम अध्यायका अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि परमतत्त्व ब्रह्माको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश करते हुए सृष्टि संरचनाके सम्बन्धमें भगवानके द्वारा ब्रह्माजीके लिए यह दिव्य ज्ञान प्रदान किया गया है कि सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही मैं विद्यमान था मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सुक्ष्म और न तो दोनों का

नियत पूर्ववर्ती कारण अज्ञान। जहां यह सृष्टि नहीं है वहां मैं ही मैं हूं, और सृष्टिके रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी मैं ही हूं। और जो कुछ शेष रहेगा वह भी वस्तुतः न होने पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा में दो चंद्रद्वयकी भाँति मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश मंडलके नक्षत्रोंमें राहुकी भांति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, उसे मेरी माया समझना चाहिए। जैसे प्राणियोंके पंच भूत रचित छोटे बड़े शरीरोंमें आकाश आदि पंचमहाभूत उन शरीरोंके कार्य रूपसे निर्मित होने के कारण प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही उन स्थानों और रूपोंमें कारण रूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किए हुए हूं और आत्म दृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूं। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं इस प्रकार नेति नेति निषेधकी पद्धतिसे और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है इस अन्वय की पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरुप भगवान ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं वे वास्तविक तत्व हैं, जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्व जानना चाहते हैं उन्हें केवल इतना ही जाने की आवश्यकता है

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. विष्णु पुराण के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का मूल कारण कौन हैं -

(क) ब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

2. ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता कौन है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

3. गरूड़ पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को किसकी की पुरातनी क्रीडा कहा है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

4. मत्स्य पुराण के अनुसार चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वरूप कौन प्रादुर्भूत हुए-

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) नारायण

5 श्री मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दों में किस तत्त्व का प्रतिपादन करता है -

(क) द्वैत (ख) अद्वैत

(ग) विशिष्टाद्वैत (घ) महाद्वैत

दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का उद्देश्य—

जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, तथा विनाश आदि से सम्बन्धित इस विधान की व्याख्या करना ही सृष्टि प्रक्रिया का उद्देश्य है । प्रत्येक दर्शन ने अपनी बौद्धिक सामार्थ्यानुसार इस जटिल प्रश्न पर विचार करने का प्रयास किया है । इसमें वेदान्त का प्रयास अन्य की अपेक्षा अधिक सराहनीय है ।उन्होने सृष्टि समस्या पर सूक्ष्म चिन्तन तथा गहन विमर्श द्वारा इस विश्व के निर्माण तथा विनाश का एक व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक विधान प्रस्तुत किया है ।

वेदान्त सम्मत सृष्टि प्रक्रिया— सृष्टि विकास के सम्बन्ध में वेदान्त ने कुछ पृथ्क मार्ग अपनाया है। उसके अनुसार प्रतिक्षण परिणामों एवं सुव्यवस्थित व्यवस्था वाला जगत् अचेतन परमाणु अथवा जड़ प्रकृति का कार्य नहीं हो सकता। ऐसी सुचारू व्यवस्था तो किसी चेतन विवेक द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है, अत: वेदान्ती सांख्यमत के विपरीत सृष्टि का एकमात्र चेतन ब्रह्म को बताते है। **'अस्य जगतो जन्मस्थितिभग: यत: सर्वगत: सर्वशक्ति - कारणाद भवति तद् ब्रह्म' ।।** जैसा कि कठोपनिषद में इस जगत् की उपमा एक वृक्ष से देकर वृक्ष का मूल उपर तथा शाखायें अधोमुखी बताई गई है। सृष्टि समस्या का समाधान कारण कार्य सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार वेदान्त ब्रह्म जो जगत् का उपादान तथा निमित्त कारण दोनों ही बतलाया है। एक ही तत्व को उपादान तथा निमित्त कारण मानना यद्यपि व्यवहार विरूद्ध प्रतीत होता है , किन्तु सूक्ष्मरूपेण विचार करने पर इसमें कुछ भी विरोध नहीं प्रतीत होता है। यथा मकड़ी अपने शरीर के चेतनांश की प्रधानता से जाले का उपादान कारण तथा शरीर के प्राधान्य से निमित्त कारण बनती है। तथैव – मायोपधिक ब्रह्म उपादान ,कारण तथा निरूपाधिक अनुपहित ब्रह्म इस जगत् का निमित्त कारण है।

यह सृष्टि क्यों और कैसे हुई। इस प्रश्न का उत्तर वेदान्त में स्वभावत: दिया गया है जिस प्रकार मनुष्य का श्वासो च्छवास प्रक्रिया स्वाभाविक है तथाविध रूप से सृष्टि भी उत्पन्न तथा विनष्ट है। श्रुतियों में भी सृष्टि समस्या पर विचार करने पर इसे ईश्वर का ऐच्छिक एवं लीलापूर्वक किया हुआ कार्य बतलाया गया है। श्रुति कहती है कि उस ईश्वर ने संकल्प किया कि मैं एक ही बहुत हो जाउँ। तथा उसने ईक्षण किया कि मैं अनेक होउॅ और फिर उस चेतन तत्व ब्रह्म से यह सम्पूर्ण जगत् उसी प्रकार उत्पन्न हुआ जैसे सत् पुरूष के शरीर से केश , लोम आदि उत्पन्न होते है।

इस कल्पना के आगे श्रुति सृष्टि का अन्य कोई हेतु नहीं देती है। मूल तत्व से इस जगत् की उत्पत्ति का और कब हुई। इस प्रश्न के सम्बन्ध में डॉ चटर्जी तथा दत्ता का कथन है – यहॉ युक्ति के स्थान पर कल्पना से ही काम लिया जाता है। उसे तर्क की कसौटी पर कसना उचित भी नहीं हैं। वेदान्त ने सृष्टि के रहस्य को स्पष्ट करने के लिये श्रुति की सहायता ली है, बिना श्रुति की सहायता के केवल तर्क द्वारा सृष्टि के रहस्य को ज्ञात करना असम्भव है। वेदान्त के अनुसार सृष्टि का अर्थ किसी नवीन पदार्थ की उत्पत्ति नहीं, अपितु अव्यक्त का व्यक्त होना है। सृष्टि शब्द का अर्थ है – सर्ग सृष्टि तथा सत्तावान जगत् का नाम रूप और व्याकरणमात्र है –**अनेन जीवेनात्मना ऽनुप्रविश्य नामाख्ये व्याकरवाणि ।।** वेदान्तियों ने एकमात्र सत् तत्व ब्रह्म को इस नामरूपात्मक जगत् का बीज कारण बताया है। ब्रह्म से ही समस्त भौतिक जगत् की उत्पत्ति होती है। यही वेदान्त की मर्यादा है – **परमाच्च ब्रह्ण : प्राणादिकं जगज्जायत इति वेदान्तमर्यादा।** नित्य शुद्ध बुद्ध भुक्त अविकारी एक ब्रह्म इस नानारूपात्मक नित्य विकारी जगत् को उत्पन्न करने में कैसे समर्थ हो सकता है। ऐसा होने पर ब्रह्म उन समस्त दोषों से संस्पृष्ट होने लगेगा जो इसे जगत् में है। उसके अनन्तता निरवयता अखण्डता आदि विशेषण बाधित होने लगेंगे। किन्तु वेदान्त में इन समस्त समसयाओं को समाधान खोजा गया है – मायानाम्नी शक्ति में – **एक एव परमेश्वर: कूटस्य नित्यो विज्ञानधातुरविद्यययया , माययया मायाविदने कथा विभाव्यते ।।** यह माया ब्रह्म की एक अतिशक्तिशाली ,स्वाभाविक एवं अनिर्वचनीय शक्ति है। इसके द्वारा सृष्टि करने में वह समर्थ होता है

और सांसारिक दोषों से भी अस्पृष्ट रह जाता है। गीता में भगवान ने इस जगत् की उत्पत्ति अपने द्वारा आवेष्टित प्रकृति द्वारा बताई है।

ब्रह्म की इस अनिर्वचनीय विलक्षण शक्ति की दो शक्तियॉ हैं आवरण तथा विक्षेप। आवरण शक्ति रज्जु के यथार्थ रूप को आच्छादित वस्तु में नवीन वस्तुओं की उद्भावना करती है। इस प्रकार वस्तु का यथार्थ रूप तो अपरिवर्तित रहता है, किन्तु उसी एक वस्तु में किसी परिवर्तन के बिना ही अन्य वस्तुओं का दर्शन होने लगता है। इन दर्शित होने वाली वस्तुओं का दर्शन होने लगता है। इन दर्शित होने वाली वस्तुओं का आधार वही अपरिवर्तित तत्व रहता है। वह अपरिवर्तित तत्व उद्भासित होने वाली वस्तु से अलग रहता है किन्तु माया की शक्ति द्वारा उसका यथार्थ यह कथन उचित ही है। कुछ लोग सोचते हैं कि सृष्टि उस ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए है। मेरा कहना है कि उसका प्रयोजन उसे छिपाता है और उसके अतिरिक्त यह और कुछ नहीं कर सकती है।

अब प्रश्न उठता हैं कि माया शक्ति के प्रभाववश एक ही ब्रह्म में नाना रूप जगत का दर्शन कैसे हो सकता है। इस कथन का उत्तर आचार्य शंकर ने अतिसुन्दर दृष्टान्त द्वारा दिया है कि तिमिर रोग के कारण नेत्र दीप्ति के नष्ट हो जाने पर जिस प्रकार द्रष्टा को एक चन्द्रमा के स्थान पर अनेक चन्द्रमा दिखाई पड़ते है उसी प्रकार अविद्या द्वारा कल्पित नामरूपादि के रूप में ब्रह्म से देश कालगत पृथक स्थिति हो किन्तु स्वयं समस्त विकारों में उसी प्रकार संस्पृष्ट नहीं होता जैसे जल में पडा सूर्य का प्रतिबिम्ब जल की शीतोष्णता से अछूता रहता है।

सृष्टिक्रम – वेदान्त मत में सृष्टि का क्रमिक विकास स्वीकार किया गया है। यह क्रमिक विकास सूक्ष्मतम रूप से स्थूल तर रूप की दिशा में होता है। इस विकास परम्परा की तीन अवस्थायें – कारणावस्था, सूक्ष्मावस्था तथा स्थूलावस्था ।

तमोगुण प्रधान माया की विक्षेप शक्ति से उपहित हुआ ब्रह्म ईश्वर की संज्ञा प्राप्त करता है। यह ईश्वर की सृष्टि का कारण है। इस उपहित ब्रह्म से सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न होता है। आकाश एक अनन्त लघु सूक्ष्म तथा सर्वव्यापक और सर्वप्रथम उत्पन्न पदार्थ है। आकाश से क्रमश: स्थूल तत्वों का उद्भव होता है। आकाश से वायु , वायु से अग्नि , अग्नि से जल , तथा जल से पृथ्वी उत्पन्न होते है। इन पॉचों तत्वों में अन्य परिवर्तित तत्वों की अपेक्षा स्थायित्व रहता है। वेदान्त ने सृष्टिप्रक्रिया के सम्बन्ध में उपनिषदों का स्मरण किया है–**तस्माद्धा एतस्मादात्मन आकाशऽसंभूतआकाशाद्वायुर्वारग्निरग्नेरापोऽद्देभ्य: पृथिवी ।** यद्यपि माया त्रिगुणात्मिका है तथापि आकाशदि कार्य जड है , अत: इनके कारण में तमोगुण का प्राधान्य कहा गया है। पॉचों तत्व सूक्ष्म हैं। अत: वेदान्त में ये तन्मात्र सूक्ष्मभूत अथवा अपंचीकृत भूत कहलाते है।

इन पॉचों के क्रमश: गुण इस प्रकार हैं – आकाश का गुण शब्द , वायु का गुण स्पर्श, अग्नि का उष्णता, जल का रस तथा गन्ध पृथिवी का गुण है। इन तत्वों में उत्रोत्तर गुणों की वृद्धि हो जाती है। आकाश में एकमात्र गुण रहता है शब्द किन्तु वायु में शब्द और स्पर्श, अग्नि में अपने गुण उष्णता के अतिरिक्त अपने पूर्व तत्वों के गुणों का भी समावेश रहता है। एवंविध जल में रस के अतिरिक्त तीन पूर्व गामी गुण तथा पृथिवी में गन्धसहित चार अन्य गुण भी रहते है। इन पॉचों में सूक्ष्मतन्मात्राओं में तो सूक्ष्म तत्वों का निर्माण होता है, किन्तु स्थूल सृष्टि के निर्माण के लिये वेदान्त में पंजीकरण की विशिष्ट प्रक्रिया का आश्रय लिया गया है। सृष्टि प्रक्रिया के अर्न्तगत पंजीकरण प्रक्रिया का विवेचन

किया गया है। पंजीकरण अद्वैत वेदान्त की स्थूल सृष्टिनिर्माण की विशिष्ट प्रक्रिया है। आकाशादि पंचतन्मात्राओं के संयोग से स्थूल महाभूतों की उत्पत्ति होती है। अत: स्थूल महाभूतों में प्रत्येक सूक्ष्म तन्मात्र के अतिरिक्त अन्य तन्मात्राओं के भी गुण समाविष्ट रहते है । पंचदशीकार ने पंजीकरण की प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार किया है – **द्विधा विधाय चैकेकं चतुर्धा प्रथमं पुन: ।**

स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्त्वप पंच ते ।। इस क्रियानुसार सर्वप्रथम आकाशादि पंचतन्मात्राओं को दो समान भागों में विभक्त किया। तत्पश्चात पंचतन्मात्राओं के दश भागों में से प्रथम पॉच को छोडकर अन्य पॉच भागों को पुन: चार –चार भागों में विभक्त किया गया। इस प्रकार प्रत्ये क तन्मात्र के पॉच विभाग हो गये। एक अर्धांश तथा चार अष्टमांश। इन पॉच विभागों में प्रत्येक तन्मात्र में उस तन्मात्र के अपने अर्धांश के अतिरिक्त शेष चार तन्मात्राओं की सम्मिलन करने से प्रत्येक तन्मात्र पुन: पूर्ण हो जायेगी। अपने अर्धांश के साथ अन्य तन्मात्राओं का चतुर्थांश भी सम्मिलित रहने से अन्य तन्मात्राओं के गुणों का भी समावेश किया जाता है। यथा – स्थूल आकाश में ½ शब्द। यद्यपि स्थूल महाभूतों में प्रत्येक तत्व निहित रहता है , किन्तु प्रत्येक महाभूत में अपना तत्व अधिक मात्रा में होने से उनके लिये पृथक – पृथक् आकाश, वायु, इत्यादि सम्बोधनों का व्यवहार होता है। इन्हीं पंचीकृत भूतों से चौदह भुवन तथा उसमें वास करने वाले प्राणिवर्ग के स्थूल शरीरादि का निर्माण होता है।

ज्ञानेन्द्रियॉ– आकाशादि अपंचीकृत पंचतन्मात्राओं के सात्विक अंशों में पृथक् – पृथक् क्रमानुसार श्रोत्र,त्वक्,चक्षु, रसना घ्राणेन्द्रियॉ उत्पन्न हुई है। ये इन्द्रियॉ अतिसूक्ष्म हैं । इनका निवास क्रमश: कर्ण, त्वक, नेत्र, रसना तथा नासिका में है। शब्द, स्पर्श , रूप, रस, तथा इनके विषय है। ये इन्द्रियॉ बहिर्मुखी होती है, किन्तु यदा कदा आन्तरिक विषयों को भी ग्रहण करती है।

कर्मेन्द्रियॉ- आकाशादि पंचतन्मात्राओं के राजस अंशो से व्यक्तिश: क्रमबद्ध श्रेणी में वाक्, हस्त , पाद, वायु तथा उपस्थ कर्मेन्द्रिया प्रादुर्भूत होती है। 1 क्रिया के प्राधान्य से ये कर्मेन्द्रिया कहलाती है। इनके कार्य है – वाणी , आदान, गमन, मलोत्सर्ग तथा सन्तानोत्पत्ति।

न्याय-वैशेषिक का सृष्टि संरचना विचार —

न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्वकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें सृष्टिवादके सिद्धान्तको अपनाता है। सांख्यको छोड़कर भारतके प्रत्येक दर्शनमें सृष्टिवादके सिद्धान्तको शिरोधार्य किया गया है। परन्तु वैशेषिकके सृष्टि सिद्धान्त की कुछ विशेषताएँ है, जो इसे अन्य सृष्टि सिद्धान्तोंसे अनूठा बना देती है। वैशेषिकके मतानुसार विश्वका निर्माण परमाणुओंसे हुआ है। परमाणु चार प्रकारके हैं पृथ्वीके परमाणु, जलके परमाणु, वायुके परमाणु और अग्निके परमाणु। चूँकि विश्वका निर्माण चार प्रकारके परमाणुओंसे हुआ है। इसलिए वैशेषिकका सृष्टि-सम्बन्धी मत परमाणुवादका सिद्धान्त कहा जाता है। परमाणु शाश्वत होते हैं। इनकी न सृष्टि होती है और न नाश होता है। निर्माणका अर्थ है, विभिन्न अवयवोंका संयुक्त हो जाना, विनाशका अर्थ है विभिन्न अवयवोंका बिखर जाना। परमाणु निरवयव है, इसलिए निर्माण और विनाश से परे हैं।

सांख्य दर्शन में सृष्टि संरचना विचार—

सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरुष और प्रकृति से हुआ है। पुरुष में स्वयं आत्मा का भाव है जबकि प्रकृति पदार्थ और सृजनात्मक शक्ति की जननी है।

विश्व की आत्मायें संख्यातीत है जिसमें चेतना तो है पर गुणों का अभाव है। वही प्रकृति मात्र तीन गुणोंके समन्वय से बनी है। इस त्रिगुण सिद्धान्त के अनुसार सत्त्व, रजस् तथा तमस् की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन में सृष्टि संरचना का स्वरूप सूत्र निम्नलिखित है—

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्,
महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्रण्युभयमिनिन्द्रियं
तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।।

प्रकृति मूल रूप से सत्व,रज तथा तमस की साम्यावस्था को कहते है। तीनो आवेश परस्पर एक दूसरे को निःशेष कर रहे होते हैं। परमात्मा का तेज परमाणु (त्रित) की साम्यावस्था को भंग करता है और असाम्यावस्था आरंभ होती है। सृष्टि संरचना-कार्य में यह प्रथम परिवर्तन है। इस अवस्था को महत् कहते है। यह प्रकृति का प्रथम परिणाम है। मन और बुध्दि इसी महत् से बनते हैं। इसमें परमाणु की तीन शक्तिया बर्हिमुख होने से आस-पास के परमाणुओं को आकर्षित करने लगती है। अब परमाणु के समूह बनने लगते है। तीन प्रकार के समूह देखे जाते हैं। एक वे है जिनसे रजस् गुण शेष रह जाता है। यह तेजस अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इलेक्ट्रोन कहते है। दूसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें सत्व गुण प्रधान होता है वह वैकारिक अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक प्रोटोन कहते है। तीसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें तमस् गुण प्रधान होता है इसे वर्तमान विज्ञान की भाषा में न्यूट्रोन कहते है। यह भूतादि अहंकार है। इन अहंकारों को वैदिक भाषा में आपः कहा जाता है। ये(अहंकार) प्रकृति का दूसरा परिणाम है। तदनन्तर इन अहंकारों से पाँच तन्मात्रएँ (रूप,रस,गंध, स्पर्श और शब्द) पाँच महाभूत बनते है अर्थात् तीनों अहंकार जब एक समूह में आते है, तो वे परिमण्डल कहाते है। परिमण्डलों के समूह पाँच प्रकार के हैं। इनको महाभूत कहते हैं। इन पञ्चमहाभूतों से समस्त चराचर सृष्टि संरचना का स्वरूप होता है।

योग दर्शन में सृष्टि संरचना सम्बन्धी विचार—

योग-दर्शन में ईश्वर को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है। विश्व की सृष्टि प्रकृति के विकास के फलस्वरूप ही हुई है। यद्यपि ईश्वर विश्व का स्रष्टा नहीं है, फिर भी वह विश्व की सृष्टि में सहायक होता है। विश्व की सृष्टि पुरुष और प्रकृति के संयोजन से ही आरम्भ होती है। पुरुष और प्रकृति दोनों एक-दूसरे से भिन्न एवं विरुद्ध कोटि के हैं। दोनों को संयुक्त करने के लिए ही योग-दर्शन में ईश्वर की मीमांसा हुई है "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टःपुरुषविशेष ईश्वरः"। अतः ईश्वर विश्व का निमित्त कारण है, जबकि प्रकृति विश्व का उपादान कारण है। इस बात को विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्र ने प्रमाणिकता दी है।

मीमांसा-दर्शन में जगत विचार—

उत्तरमीमांसा (वेदांत) अज्ञान से सृष्टि और आत्मज्ञान से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है। अन्य दर्शनों में द्वयणुकादि क्रम से महाभूत पर्यन्त महासृष्टि और महाभूत से परमाणु पर्यन्त विनाश को महाप्रलय कहा है। अर्थात् संपूर्ण भाव कार्य द्वयणुकादि क्रम से उत्पन्न होते हैं और स्थूल से परमाणु पर्यंत जाकर नष्ट हो जाते हैं। पंच महाभूतों में पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु नित्य हैं। आकाश स्वयं ही नित्य है, किंतु पूर्व मीमांसा के अनुसार दो प्रकार की सृष्टि और तीन प्रकार के प्रलय होते हैं, जिनमें महासृष्टि और खंड सृष्टि शब्द से दो सृष्टि कही गई है। ऐसे ही प्रलय, महाप्रलय और खंड

प्रलय शब्द से तीन प्रलय कहे गए हैं। उनमें खंड सृष्टि और खंड प्रलय आजकल के समान ही माना गया है। उदाहरणार्थ किसी स्थल विशेष का भूकंप आदि से विनाश हो जाता है और कहीं पर नवीन वस्तु की सृष्टि हो जाती है। महासृष्टि में परमाणुओं से द्वयणुकादि द्वारा पंचमहाभूत पर्यन्त नवग्रहादिकों की सृष्टि होती है। मत्स्यपुराणादि में भी खंड प्रलय के अंतर्गत विद्यमान पदार्थों की स्थिति का विवरण प्राप्त होता है, किंतु पूर्व मीमांसा महासृष्टि और महाप्रलय को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार सभी पदार्थों के नाश में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। अतः मीमांसा दर्शन खंड सृष्टि और खंड प्रलय को ही मानता है।

2.4 सारांश

किसी वस्तु की उत्पत्ति अथवा निर्माण सृष्टि कहलाती है। सूर्यसिद्धान्त के सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं वेदों में सृष्टियुत्पत्ति के सिद्धान्त प्रचुर मात्रा में मिलते है। पुराणों में भी सृष्टि की अवधारणा का वर्णन प्राप्त होता है। दर्शनशास्त्र में भी सृष्टि संरचना के स्वरूप का वर्णन प्रायः सभी आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनशास्त्र में किया गया है। असके अनुसार विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरुष और प्रकृति से हुआ है। वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविर्भाव होता है। इस प्रकार इस इकाई में आपने वेदों पुराणों तथा दर्शनशास्त्र में सृष्टि संरचना के स्वरूप के विषय में विस्तार स अध्ययन किया।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

निर्जल	-	जल से रहित
निरंजन	-	दुर्गुण एवं दोष से रहित, निगुर्ण ब्रह्म
सृष्टिवाद	-	सृष्टि से सम्बन्धित सिद्धान्त
लयकर्ता	-	अंत करने वाला
अविनाशी	-	जिसका कभी अंत ना हो
अव्यक्त	-	वाणी के द्वारा जिसका वर्णन न किया जा सके।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

लघूत्तरीय प्रश्न

1.ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण विराटपुरुष बताया गया है।

2.विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण तथा भुजाओं सं क्षत्रिय उत्पन्न हुए।

3.सृष्टि संरचना के स्वरूपमें विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया

4.हिरण्यगर्भ आत्मबल का देने वाला है,

5.ब्रह्म का संकल्प जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- (ख) 2- (क) 3- (ख) 4- (घ) 5-(ख)

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्तः-आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004
2. बृहत्संहिता-आचार्यवराहमिहिर, प-अच्युतानन्दझा,चौखम्बाविद्याभवनवाराणसी
3.ऋग्वेद, सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016
4.अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016
5. वैदिक ब्रह्माण्ड का परिचय-उ.मु.वि.वि.हल्द्वानी
6.मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रतिष्ठान वाराणसी, 2002
7.पुराणविमर्श - गीताप्रेस गोरखरपुर

2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भुवनकोश विमर्श, प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स दिल्ली, वर्ष 2004
2.यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2015
3.श्रीमद्भागवतपुराणम्, वेदव्यास,गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2059
4.ऋग्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2016
5.गोलपरिभाषा, झा, सीताराम, दरभङ्गा, बिहार, श्रीसीताराम पुस्तकालय, संवत् 2027
6.श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 20486

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1-पुराणों के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2-सांख्य तथा योग दर्शन के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का सविस्तार स्पष्ट कीजिए।
3-वेदान्त दर्शन में वर्णित सृष्टि संरचना के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
4-वेदों में वर्णित सृष्टि संरचना के स्वरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई-3 सृष्टि उत्पत्ति के विविध सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 वैदिक सृष्टि का स्वरुप
3.4 सृष्ट्युत्पत्ति के भारतीय सिद्धांत
    3.4.1ब्रह्मा द्वारा सृष्टि
    3.4.2 विराट्पुरुष द्वारा सृष्टि
    3.4.3 विश्वकर्मा द्वारा सृष्टि
    3.4.4 प्रजापति द्वारा सृष्टि
3.5 स्थिरदशा सिद्धान्त
3.6 विस्फोट सिद्धान्त
3.7 स्पन्दनशील सिद्धान्त
3.8 स्थिरदशा सिद्धान्त और भारतीय सृष्टि विज्ञान
    3.8.1 विस्फोट सिद्धान्त तथा भारतीय सृष्टि विज्ञान
    3.8.2 स्पन्दनशील सिद्धान्त तथा भारतीय सृष्टिविज्ञान
3.4 सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई वैदिक विज्ञान एवं गणित के अन्तर्गत सृष्टि विज्ञान नामक चतुर्थ खण्ड की- सृष्टि उत्पत्ति के विविध सिद्धान्त नामक द्वितीय इकाई है । वेद ईश्वरीय ज्ञान है। यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में मानवों के कल्याण साधन के लिए निःश्वसित हुआ। वेद वैदिक-संस्कृति के मूलाधिष्ठान हैं। वे शिक्षाओं के अक्षय निधि और ज्ञान के रत्नाकर हैं। वेद संसार रूपी सागर से पार उतरने के लिए नौका रूप हैं। वेद में मनुष्य जीवन की सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान है। अज्ञानान्धकार में पड़े हुए मनुष्यों के लिए वे प्रकाशस्तम्भ हैं,भूले भटके लोगों को वे सन्मार्ग दिखाते हैं। पथ भ्रष्टों को कर्त्तव्य का ज्ञान प्रदान करते हैं,अध्यात्म पथ के पथिकों को प्रभु-प्राप्ति के साधनों का उपदेश देते हैं। सक्षेप में वेद अमूल्य रत्नों के भण्डार हैं।आचार्य सायण के अनुसार" इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के निवारण का उपाय जो बतलाएं वे ग्रन्थ राशि वेद कहलाते हैं।" महर्षि मनु के शब्दों में—"**वेदोऽखिलोधर्ममूलम्"** वेद धर्म का मूल है ।"सर्वज्ञानमयो हि सः" अर्थात् वेद सकल ज्ञान से भरपूर है। वैदिक विज्ञान, राष्ट्रधर्म, समाज-व्यवस्था, पारिवारिक-जीवन, वर्णाश्रम-धर्म, सत्य, प्रेम, अहिंसा, त्याग आदि को दर्पण की भाँति दिखाता है।

सृष्टि का प्रारम्भ कब हुआ यह एक अत्यन्त महत्पूर्ण विषय है। वेद सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान के आदि स्रोत हैं। सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन ऋग्वेद के अदितिसूक्त विश्वकर्मासूक्त, पुरुषसूक्त, प्रजापतिसूक्त, नासदीयसूक्त, ऋतसूक्त तथा अथर्ववेद के काल सूक्त आदि सूक्तों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी सृष्टि विषयक अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते है। इस इकाई में आप वेदों में सृष्टि विषयक वैदिक अवधारणाओं के प्राचीन और आधुनिक सिद्धांतों विषय में विस्तार से पढेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- वैदिक सृष्टि के स्वरूप का विस्तार से वर्णन करने में समर्थ होंगे।
- वैदिक सृष्टि की अवधारणा से परिचित हो पायेंगे ।
- साथ ही प्राचीन एवं आधुनिक सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे।
- वेदों में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों के विषय में भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- वेदोत्तर साहित्य में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों को बताने में समर्थ होंगे।

3.3 वैदिक सृष्टि का स्वरूप

वैदिक सृष्टि के सन्दर्भ में सर्वप्रथम इस बात को जानने की आवश्यकता है कि सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई ? सृष्टि का विस्तार किस प्रकार हुआ ? वैदिक मनीषीयों के चिन्तन का यही मुख्य विषय रहा है। वेदों का मूल विषय 'सृष्टि विज्ञान' या 'सृष्टि विद्या' है। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त' में सृष्ट्युत्पत्ति के पूर्व विद्यमान अवस्था का चित्रण करते हुए सृष्टि क्रम प्रतिपादित किया गया है। जन्तु विज्ञान के साथ ही वनस्पति विज्ञान का आदिम स्वरूप वैदिक मंत्रों में समाहित है। ऋग्वेद में वनस्पति के लिए 'वनिन्' एवं 'ओषधि' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद में चतुर्विध वनस्पिति की चर्चा की गयी है- वनस्पति, वानस्पत्य, ओषधि और वीरूध्। वेदों में जैव विकास क्रम के सन्दर्भ में

निहित ज्ञान की सूक्ष्म विवेचना आवश्यक है। सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके मूल कारण के विषय में प्राचीन काल में अद्यतन मानव जिज्ञासा यथावत् बनी हुई है। वर्तमान विज्ञान भी अनेकानेक प्रयोगों द्वारा नित्नवीन सिद्धान्तों की स्थापना का प्रयास कर रहा है। इस विषय में अन्तिम निर्णय आज भी अप्राप्त है। मुख्य शब्द मुख्य वैदिक, सृष्टि, उत्पत्ति, वैदिक, वाङ्मयमय शब्द वेद भारतीय मनीषियों की अतुलनीय ज्ञानराशि का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप हैं जिसमें परा एवं अपरा विद्या के मूल तत्त्व का सहज ही अन्वेषण किया जा सकता है। प्राचीन ऋषियों ने ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक पक्ष का गहन चिन्तन किया था। वेदों में भौतिकी, रसायन, वनस्पति, प्रौद्योगिकी, कृषि, जन्तु विज्ञान, पर्यावरण, ज्योतिष एवं खगोल विज्ञान से सम्बद्ध प्रचुर सामग्री विद्यमान है। असंदिग्ध एवं निरपेक्ष ज्ञान ही विज्ञान है। वैदिक वाङ्मय में यद्यपि वैज्ञानिक तथ्यों, यन्त्रों तथा प्रयोगशालाओं का प्रत्यक्षः वर्णन तो नहीं मिलता किन्तु उनके मन्त्रों में विज्ञान के प्रत्येक शाखाओं के तत्व बीज रूप में निहित है। वैदिक मंत्रों में सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके विकासक्रम की सूक्ष्म विवेचना दृष्टिगत होती है। वेद मानव मनीषा की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियों का अमूल्य अंश है। ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द 'ज्ञानराशि' का वाचक है। मनु ने वेद को सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत माना है।1 ज्ञान और विज्ञान में अबिनाभाव सम्बन्ध है; ज्ञान के होने पर विज्ञान की सत्ता अवश्यक ही होती है। अतएव ज्ञानराशि वेद में वैज्ञानिक तत्त्वों की गवेषणा की जा सकती है। को विज्ञान कहा जाता है। विज्ञान के व्युत्पत्यात्मक अर्थ की दृष्टि से वेद एवं विज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि वेंदों का प्रमुख प्रतिपाद्य पूर्ण एवं विशुद्ध ज्ञान ही है, जो 'ब्रह्मज्ञान' है। 'परमेश्वर का ज्ञान' ही एक ऐसा ज्ञान है जो सभी ज्ञानों की निरातिशयता या ज्ञान की पराकाष्ठा आ आधार है। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में कहा गया है कि सभी देवगण ब्रह्म के रूप में विज्ञान की ही उपासना करते हैं। विज्ञान को ब्रह्म ही जानों। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में ब्रह्म को विज्ञान और आनन्द इन दोनों विशेषणों से युक्त बताया गया हैं। वेद एवं विज्ञान के सम्बन्ध को प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती ने इन शब्दों में प्रतिपादति किया है, परीक्षा द्वारा अपरोक्ष ज्ञान पाने में ही विज्ञान का आग्रह है एवं लक्ष्य को स्थिर रखकर पथ को सीधा कर लेने भर से यह वेद व ब्रह्मज्ञान का पथ हो सकता है। वेद व विज्ञान के बीच एक बहुत घनिष्ठ प्रकार की आत्मीयता है। वैदिक मनीषीयों को भौतिक जगत् से सम्बद्धित विज्ञान का विस्तृत वर्णन अपेक्षित नहीं था अतएव उन्होंने वेदों में वैज्ञानिक तथ्यों का साक्षात् वर्णन न करके प्रतीक या संकेत रूप में वर्णन किया है। वेदों में वृक्षों के गुण-धर्मों एवं महत्व को प्रतिपादित किया गया है। जैव विकास क्रम के सन्दर्भ में निहित ज्ञान की सूक्ष्म विवेचना आवश्यक है। सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके मूल कारण के विषय में प्राचीन काल में अद्यतन मानव जिज्ञासा यथावत् बनी हुई है। वर्तमान विज्ञान भी अनेकानेक प्रयोगों द्वारा नित् नवीन सिद्धान्तों की स्थापना का प्रयास कर रहा है। इस विषय में अन्तिम निर्णय आज भी अप्राप्त है। ऋषियों ने 'पुरू सुक्त', 'हिरण्यगर्भ सूक्त' एवं 'नासदीय सूक्त' में सृष्टि उत्पत्ति के विषय में जो चिन्तन प्रस्तुत किया है वह इस दिशा में नव दृष्टि प्रदान करने वाला है। अतः वैदिक मंत्रों की वैज्ञानिकता को समझने की आवश्यकता है। सन्दर्भ-सूची सन्दर्भ-सूची मनु0 2.7-सर्वज्ञानमया हि सः। तै0उ0 2.5- विज्ञानं देवाः सर्वे। ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चद्वेद। तै0उ0 3.5- विज्ञानं ब्रह्मेति इत्यादि सूक्तियाँ प्रमाणिक हैं।

3.4 सृष्ट्युत्पत्ति के भारतीय सिद्धान्त

तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ। पश्चात् आकाश से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियां, औषधियों से अन्न, अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ। यही क्रम प्रायः संस्कृत साहित्य के अन्य वैज्ञानिक तथा दार्शनिक ग्रन्थों में भी मिलता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश ये पञ्चमहाभूत सृष्टि की उत्पत्ति का मूल माने गए हैं। सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है, इन तीन गुणों के आपसी सम्मेलन से प्रकृति में विकार उत्पन्न होता है, यही विकार सृष्टि कहलाती है। ये सर्वप्रथम पञ्चमहाभूतों में परिणत होकर समग्र सृष्टि का सृजन करते हैं। यही पञ्चमहाभूत सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक परम्परा में सृष्टि प्रक्रिया के प्रमुख सिद्धान्त भी हैं। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा तथा वेदान्त ये छः वैदिक और बौद्ध, जैन तथा चार्वाक् आदि अवैदिक दर्शन, सभी इन पञ्चमहाभूतों पर विचार अवश्य ही करते हैं। वैदिक ब्रह्माण्डोत्पत्ति सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन वेदान्त दर्शन में सृष्टि के सात आवरणों के माध्यम से मिलता है, जिसे दशाङ्गुलन्याय नाम से भी जाना जाता है। इसके अनुसार पृथ्वी से दशगुना जल, जल से दशगुना अग्नि, अग्नि से दशगुना वायु, वायु से दशगुना आकाश, आकाश से दशगुना अहंकार, अहंकार से दशगुना महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से दशगुना मूलप्रकृति और यह मूलप्रकृति भगवान के एक पाद में है। उपर्युक्त परिकल्पनाओं के अतिरिक्त भी वैदिक साहित्य में अन्य सिद्धान्त प्रमुखता से मिलते हैं। पुरुष सूक्त तथा नासदीय सूक्त ये दोनों सृष्टि विषयक प्रसिद्ध वैदिक सूक्त हैं तथा ये ब्रह्माण्डोत्पत्ति सिद्धान्त को विस्तार से परिभाषित करते हैं। नासदीय सूक्त सृष्टि से पूर्व के पक्षों पर ध्यानाकर्षित करता है तथा यह सूक्त वैदिक चिन्तन की उस पराकाष्ठा को दर्शाता है जिसमें सृष्टि के कारण विद्यमान हैं।

वैदिक तथा पौराणिक वाङ्मय के अध्ययन के आधार पर स्पष्ट होता है कि भारतीय साहित्य वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति का वर्णन पर्याप्त मात्रा में हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के जो प्रमाण प्रायः प्राप्त होते हैं, उन सभी प्रमाणों के विमर्श के आधार पर ब्रह्माण्ड एवं उसकी उत्पत्ति को मुख्य चार सिद्धान्तों के द्वारा प्रतिपादित किया जा सकता है। "भुवनकोशविमर्श" नामक पुस्तक में प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी जी ने ब्रह्माण्डोत्पत्ति के विषय में इन सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। वे सिद्धान्त निम्न हैं –

1. ब्रह्मा द्वारा सृष्टि
2. विराट्पुरुष द्वारा सृष्टि
3. विश्वकर्मा द्वारा सृष्टि
4. प्रजापति द्वारा सृष्टि

3.4.1ब्रह्मा द्वारा सृष्टि

नासदीयसूक्त में वर्णन मिलता है कि सृष्टि से पूर्व कुछ भी नहीं था पश्चात् स्वयमेव शुद्धचैतन्य परब्रह्म की सत्ता उत्पन्न हुई। इसी परब्रह्म ने संकल्पमात्र से सृष्टि की रचना की। सृष्टिरचना में सर्वप्रथम सत्य की उत्पत्ति हुई तत्पश्चात् क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी उत्पन्न हुए। ब्रह्मा का वर्णन श्रीमद्भागवतमहापुराण में भी प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान विष्णु के मन में सृष्टि की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् भगवान विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। इसी ब्रह्मा ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की। ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार ब्रह्मा ने सर्वप्रथम हिरण्याण्ड को उत्पन्न

किया, इस हिरण्याण्ड का आवरण जल था। जल का तेज, तेज का वायु, वायु का आकाश क्रमशः आवरण थे, इन पञ्चमहाभूतों का आवरण महत्तत्व था, तथा महत्तत्त्व अव्यक्त से आवृत्त था। कुछ इसी प्रकार का वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद् में भी मिलता है। पौराणिक साहित्य देखने पर हमें प्राप्त होता है कि ब्रह्मा इस सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता है। पौराणिक साहित्य में ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन त्रिदेवों की कल्पना इसी सन्दर्भ में की गई है। त्रिदेवकल्पना में सत्व-रज-तम इन तीन गुणों के अनुरूप ब्रह्मा रजोगुणयुक्त होकर विश्व का सृजन करता है, विष्णु सत्त्वगुणसम्पन्न होकर होकर सृष्टि का पोषण करते हैं तथा शिव तमोगुणयुक्त स्वरूप धारण कर सृष्टि का नाश करते हैं। यहाँ ब्रह्मा को सृष्टि का कर्ता, विष्णु को पालनकर्ता तथा शिव को संहारकर्ता के रूप में रखा गया है। पौराणिक साहित्य के अनुसार प्रायः ब्रह्मा ही सृष्टिकर्ता हैं, उन्हीं से यह सृष्टि उत्पन्न हुई है।

3.4.2 विराट्पुरुष द्वारा सृष्टि

संस्कृत साहित्य परम्परा में विराट्पुरुष का वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है। सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में विराट्पुरुष का वर्णन मिलता है – **"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्"**। इस प्रकार ऋग्वेद में विराट्पुरुष के सर्वकालत्व तथा सर्वव्यापकत्व का वर्णन मिलता है। विराट्पुरुष का वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय में भी प्राप्त होता है। इसी विराट्पुरुष से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। इसी ब्रह्माण्ड में भूर्भुवादि चतुर्दशलोक, उन लोकों में अनेकों सौर-परिवार, उन सौर परिवारों में अनेकों ग्रह-उपग्रह, उनमें अनेकों सृष्टियां तथा उनमें अनेक प्राणी फिर जीव और अजीव सहित समस्त चराचर जगत् की रचना हुई। वैदिक साहित्य में विराट्पुरुष को "सहस्रशीर्षा पुरुष" कहते हैं, अर्थात् सहस्रों सिरों वाला पुरुष। विराट्पुरुष के सिर, पैर, भुजाएं आदि अंग सहस्रों की संख्या में हैं, इसी विराट् पुरुष से समस्त सृष्टि उत्पन्न होती है तथा इसी में समाहित हो जाती है। यह विराट्पुरुष सर्वव्यापक है और तीनों कालों का नियन्ता भी है। ऋग्वेद का पुरुषसूक्त इसी विराट् पुरुष का विस्तार से वर्णन करता है, यह विराट् पुरुष एक से अनेक के रूप में सृष्टि का विस्तार करता है। पुरुषसूक्त के अनुसार समस्त द्यौ, आकाश, दिशाएं, जीव जगत् इसी विराट्पुरुष द्वारा उत्पन्न हैं।

3.4.3 विश्वकर्मा द्वारा सृष्टि

"विश्वेषु कर्म व्यापारो यस्य स विश्वकर्मा" अर्थात् विश्व का सृजन करना जिसका कार्य है वही विश्वकर्मा है। विश्वकर्मा को पौराणिक साहित्य में सृजनकर्ता कहा गया है। विश्वकर्मा का अर्थ ही विश्व का कर्ता होता है। वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि परमेश्वर द्वारा निर्मित हुई है। इसी परमेश्वर के गुणों की संज्ञा देवता नाम से प्रसिद्ध है। ये देवता ही परमेश्वर की आज्ञा से सृष्टि करते हैं। विश्वकर्मा, सविता, इन्द्र, विष्णु, वरुण आदि देवता परमेश्वर की आज्ञा से विभिन्न कार्यों का संपादन करते हैं। इन्हीं देवताओं में से एक विश्वकर्मा भी हैं।

अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद है। स्थापत्य साहित्य में विश्वकर्मा प्रमुख आचार्य के रूप में भारतीय ज्ञानाकाश में सूर्य की भाँति विद्यमान हैं। स्थापत्यशास्त्र के अनुसार विश्वकर्मा ही सृष्टि के निर्माता हैं, इस सम्पूर्ण चराचर जगत की उत्पत्ति विश्वकर्मा द्वारा हुई है। स्थापत्यशास्त्र वर्तमान में वास्तुशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है। अपराजितपृच्छा, समराङ्गणसूत्रधार आदि वास्तुशास्त्रीय प्रमुख ग्रन्थों में विश्वकर्मा को ही सृष्टिनिर्माता के रूप में रखा गया है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में विश्वकर्मा की चर्चा

विस्तार से की गई है परन्तु इस विचार का बीज मुख्य रूप से वैदिक साहित्य में ही हमें दृष्टिगोचर होता है।

3.4.4 प्रजापति द्वारा सृष्टि

प्रजा के पति अर्थात् प्रजा के स्वामी को प्रजापति कहा गया। सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्रजापति का वर्णन प्राप्त होता है - **"हिरण्यगर्भः समवर्ततााग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्"**अर्थात् परमात्मा से सर्वप्रथम प्रजापति उत्पन्न हुए और वे उत्पन्न होते ही सभी लोकों के स्वामी बन गए। यही प्रजापति वैदिक श्रुतियों में हिरण्यगर्भ नाम से भी प्रसिद्ध हुए। पौराणिक साहित्य में प्रजापति को ब्रह्मा की पहली उत्पत्ति मानी जाती है, आगे चलकर यही प्रजापति विभिन्न प्रकार की सृष्टियों का सृजन करते हैं। महाभारत के मोक्षधर्म में इक्कीस तथाहरिवंशपुराण में तेरह प्रजापतियों का वर्णन प्राप्त होता है, इसके अनुसार पितामह ब्रह्मा ने सर्वप्रथम लोकों के कर्ता प्रजापतियों का सृजन किया तत्पश्चात् इन प्रजापतियों ने लोकों की रक्षा की और नई सृष्टि उत्पन्न की।

1. ब्रह्माण्डोत्पत्ति के आधुनिक सिद्धान्त

ग्रहों, तारों, आकाशगंगाओं, जीव-जगत्, पदार्थ और ऊर्जा के अन्य सभी रूप ब्रह्माण्ड में समाहित हैं। सर्वप्रथम आधुनिक खगोलशास्त्र के मुख्य सिद्धान्त दो प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिकों प्लेटो तथा अरस्तू ने प्रस्तुत किए। आधुनिक संदर्भ में दो प्रमुख सिद्धान्त प्रसिद्ध थे, इसमें पहला भूकेन्द्रिक सौरपरिवार तथा दूसरा सूर्यकेन्द्रिक सौरपरिवार ये दो सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर दूसरी शताब्दी में टॉलमी द्वारा विस्तार से भू-केन्द्रिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। भारतवर्ष के महान वैज्ञानिक आर्यभट्ट ने सर्वप्रथम पृथ्वी को ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र माना, परन्तु उन्होंने ब्रह्माण्ड को स्थिर माना, और कहा कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। उनका यह सिद्धान्त खगोल जगत में "भू-भ्रमण सिद्धान्त" नाम से प्रसिद्ध है।

द्वितीय महत्वपूर्ण सिद्धान्त यूरोप के वैज्ञानिक निकोलस कोपरनिकस ने प्रस्तुत किया। यह भू-केन्द्रिक सिद्धान्त के विपरीत सूर्य केन्द्रिक सिद्धान्त था। सूर्य-केन्द्रिक सिद्धान्त के अनुसार सूर्य सौरपरिवार का केन्द्र है, पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। कोपरनिकस के सिद्धान्त का भी यूरोप में पर्याप्त विरोध हुआ। इसके बाद दुनियां के अलग-अलग कोनों में खगोल विज्ञान में अनेकों खोजें हुई। जर्मनी के जोहांस केपलर ने ग्रहों की गतियों का स्पष्टीकरण दिया तथा इटली के वैज्ञानिक गैलीलियो ने दूरबीन की खोज की तथा अनेकों खोजें हुई, जो आज भी निरन्तर जारी हैं। ब्रह्माण्ड को समझने के लिए प्रमुख रूप से निम्न आधुनिक सिद्धान्तों का अध्ययन करना आवश्यक है।

1. स्थिरदशा सिद्धान्त
2. विस्फोट सिद्धान्त
3. स्पन्दनशील सिद्धान्त

3.5 स्थिरदशा सिद्धान्त

ब्रह्माण्ड में न सिकुड़न दिखाई पड़ती है और न ही विस्तार दिखाई पड़ता है। व्यवहारिक रूप में यही दिखाई भी पड़ता है, इस प्रकार जो भी आकाश को देखेगा वह यही समझेगा कि यह स्थिर है। उस स्थिति में ब्रह्माण्ड को स्थिर कह सकते हैं।अल्बर्ट आइन्स्टाइन को इस सिद्धान्त का जनक माना

जाता है। उनका मानना था कि ब्रह्माण्ड स्थिर है और सदैव स्थिर दशा में ही रहता हैऔर यह ब्रह्माण्ड करोड़ों वर्षों से स्थिर है। आइन्स्टाइन के इस सिद्धान्त को बीसवीं सदी के ब्रह्माण्ड विज्ञानी फ्रेड हॉयल ने अंग्रेज गणितज्ञ हरमान बांडी और अमेरिकी वैज्ञानिक थोमस गोल्ड के साथ संयुक्त रूप से मिलकर स्पष्ट किया। यह सिद्धान्त स्थिरदशा सिद्धान्त तथा स्थायी दशा सिद्धान्त के नाम से विख्यात है। इसके अनुसार न तो ब्रह्माण्ड का आदि है और न ही इसका कभी अन्त होगा। यह सदैव ही स्थिर दशा में विद्यमान रहा है और रहेगा भी। यह समयानुसार अपरिवर्तनशील है, यद्यपि इस सिद्धान्त में प्रसरणशीलता समाहित है, परन्तु फिर भी ब्रह्माण्ड के घनत्व को स्थिर रखने के लिए पदार्थ इसमें स्वतः रूप से उत्पन्न और परिवर्तित होता रहता है।

3.6 विस्फोट सिद्धान्त

आधुनिक सिद्धान्तों में सर्वाधिक मान्य और प्रख्यात यह सिद्धान्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को विस्फोट द्वारा सिद्ध करता है। विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम विस्फोट हुआ, उस विस्फोट से ही ब्रह्माण्ड में सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हब्बल ने किया। उनका मानना था कि ब्रह्माण्ड फैल रहा है तथा उन्होंने यह तर्क दिया कि ब्रह्माण्ड में आकाशगंगाएं लगातार एक दूसरे से दूर जा रही हैं, अतः अतीत में किसी समय ये आकाशगंगाएं अवश्य ही एक साथ रही होंगी। उनका मानना था कि दस से पंद्रह अरब वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण द्रव्यराशि एक स्थान पर एकत्रित थी, उस समय ब्रह्माण्ड का घनत्व असीमित था, तथा सम्पर्ण ब्रह्माण्ड अति सूक्ष्म बिन्दु में समाहित था। किसी अज्ञात कारण से इसी सूक्ष्म बिन्दु में विस्फोट हुआ और उस विस्फोट से द्रव्य इधर-उधर छिटक गया। इसी स्थिति में अकारण ही दिक्-काल की भी उत्पत्ति हुई। इस घटना को खगोलविदों द्वारा ब्रह्माण्डीय विस्फोट का नाम दिया जाता है। एक अंग्रेज विज्ञानी सर फ्रेड हॉयल ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते समय मजाक में "बिग-बैंग"इस शब्द का प्रयोग किया था, इसीलिए इस सिद्धान्त को बिग-बैंग सिद्धान्त भी कहा जाता है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सिद्धान्तों में विस्फोट सिद्धान्त सर्वाधिक मान्यता प्राप्त सिद्धान्त है। एक ओर जहां स्थिरदशा सिद्धान्त में पदार्थो का सृजन निरन्तर प्रक्रिया है, वहीं विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार पदार्थों का सृजन अकस्मात् हुआ।

3.7 स्पन्दनशील सिद्धान्त

स्पन्दनशील का अर्थ सिकुड़ने और फैलने की नियमित प्रक्रिया से है, इसके अनुसार ब्रह्माण्ड फैलता रहता है तथा सिकुड़ता रहता है। इस सिद्धान्त को दोलायमान सिद्धान्त भी कहते हैं। इसी फैलने और सिकुड़ने की अवस्था को स्पन्दनशील कहते हैं। यह फैलने और सिकुड़ने की लगातार स्थिति बनी रहती है। वर्तमान में हमारा ब्रह्माण्ड फैल रहा है, परन्तु एक सीमित अवस्था में फैलने के बाद इसमें सिकुड़न आ जाएगी। इसी सिद्धान्त को स्पन्दनशील सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड के सिकुड़न और प्रसरण की प्रक्रिया करोड़ो वर्षों के अन्तराल में होती है। डॉ. एलन संडेज को इस सिद्धान्त का प्रवर्तक माना जाता है। उनका मानना है कि आज से 120 करोड़ वर्ष पहले एक विस्फोट हुआ तभी से यह ब्रह्माण्ड फैलता जा रहा है। 290 करोड़ वर्ष बाद गुरुत्वाकर्षण बल के कारण इसका विस्तार रुक जाएगा और इसके बाद इसमें संकुचन की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। यह ब्रह्माण्ड संकुचित होते-होते अनन्त रूप से सिकुड़ते हुए एक अतिसूक्ष्म बिन्दुमय

आकार धारण कर लेगा, उसके बाद अत्यन्त गुरुत्वाकर्षण के कारण ही इसमें पुनः विस्फोट होगा और इसमें पुनः फैलाव प्रारम्भ हो जाएगा। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहेगी, इसी सिद्धान्त को स्पन्दनशील सिद्धान्त कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

प्र. 1. भारतीय वाङ्मय के आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति के कितने सिद्धान्त बताए गए हैं?

प्र. 2. तीन गुणों के नाम बताइये।

प्र. 3. आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति के कितने सिद्धान्त बताए गए हैं?

प्र. 4. तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार सर्वप्रथम क्या उत्पन्न हुआ?

प्र. 5. भारतीय दर्शन के आधार पर सृष्टि का मूल किसे माना गया है?

प्र. 6. सांख्य के अनुसार प्रकृति क्या है?

प्र. 7. दशाङ्गुल न्याय क्या है?

प्र. 8. नासदीय सूक्त में क्या वर्णन मिलता है?

प्र. 9. श्रीमद्भागवत् के अनुसार सृष्टि का वर्णन क्या है?

प्र. 10. पुरुषसूक्त के अनुसार सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई?

प्र. 11. विश्वकर्मा को क्या कहा जाता है?

प्र. 12. वैदिक श्रुतियों में हिरण्यगर्भ को क्या कहा गया?

प्र. 13. स्थिरदशा किसे कहते हैं?

प्र. 14. विस्फोट सिद्धान्त सृष्टि किस प्रकार मानता है?

प्र. 15. स्पन्दनशील सिद्धान्त क्या है?

3.8 स्थिरदशा सिद्धान्त और भारतीय सृष्टि विज्ञान

स्थिरदशा सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड एक स्थिर सत्ता है तथा इसका कोई भी रचयिता नहीं है, और ना ही इसका कभी अन्त होगा। इसी प्रकार पर यदि हम भारतीय सृष्टिविज्ञान की बात करें तो यहां भी पदार्थ के परमाणुरूप को स्थिर ही माना गया है, यहाँ स्थिर से उत्पत्ति और विनाश का अभाव है। यह परमाणु सदा ही विद्यमान रहते हैं, परन्तु इनमें परिवर्तन भी समय-समय पर होते रहते हैं। ये परिवर्तन एक सीमित काल तक ही होते हैं। जिस वस्तु की उत्पत्ति होती है, उसका विनाश भी निश्चित है। यह उत्पत्ति और विनाश का क्रम भी स्थिर ही है। क्योंकि कोई नहीं जानता कि यह सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई, और इसका रचयिता कौन है? इस सम्पूर्ण सृष्टि के कारणों को समझने के लिए भारतीय मनीषियों ने समय-समय पर कई सिद्धान्त दिए हैं। परन्तु वे इन सिद्धान्तों से भी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हैं, इसीलिए उन्होंने इसे नेति-नेति कहकर इसकी अनन्तता को स्वीकार किया है।

दार्शनिक दृष्टि से प्रकृति का मूल स्वरूप तीन गुणों की साम्यावस्था है, ये तीन गुण हैं – सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। तीनों गुण प्रकृति में सदा ही विराजमान रहते हैं, परन्तु इन तीनों के सन्तुलन में जब विकृति उत्पन्न होती है तब उस स्थिति में सृष्टि उत्पन्न मानी जाती है। अतः प्रकृति में विकृति ही सृष्टि कहलाती है। यह सृष्टि लगातार होती रहती है, और नष्ट भी होती रहती है। इस प्रकार यह क्रम अनन्त काल तक चलता रहता है। सृष्टि का बनना और नष्ट होना एक नियमित प्रक्रिया है, यह परिवर्तन प्रकृति में सदा ही बना रहता है। परन्तु प्रकृति कभी भी परिवर्तित नहीं रहती, केवल उसके

गुणों में विकृति होती है। इस प्रकार भारतीय दार्शनिक तथा वैज्ञानिक चिन्तन एक दृष्टि में सृष्टि को नित्य मानता है, और इसमें होने वाले परिवर्तनों को गुणों के असन्तुलन का परिणाम। ये सिद्धान्त पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए स्थिरदशा सिद्धान्त से साम्यता रखते हैं। अनादि और अनन्त का भाव ही स्थिरता है। इसी स्थिरता के आधार पर ही आधुनिक वैज्ञानिकों ने स्थिरदशा सिद्धान्त को प्रस्तुत किया।

3.8.1 विस्फोट सिद्धान्त तथा भारतीय सृष्टि विज्ञान-

ब्रह्माण्डोत्पत्ति के आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों में विस्फोटसिद्धान्त सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को एक बिन्दु में से मानता है। इसके अनुसार ब्रह्माण्ड एक महाविस्फोट के साथ फैलता है तथा उसके बाद यह विस्तार को धारण करता है। भारतीय वैज्ञानिक ज्ञान परम्परा के अनुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक हिरण्यमय अण्डे के फूटने से हुई। यह हिरण्याण्ड सर्वप्रथम दो भागों में विभाजित हुआ और इसके दोनों कपालों से पृथिव्यादि समस्त प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई। इस विषय में ऋग्वेद में मिलता है –

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्"

अर्थात् सर्वप्रथम एक हिरण्याण्ड में विस्फोट हुआ और उसके गर्भ से एक शक्तिशाली पुरुष उत्पन्न हुआ और वह समस्त लोकों में व्याप्त हो गया। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद प्रो.देवी प्रसाद त्रिपाठी जी ने अपनी पुस्तक भुवनकोशविमर्श में इस हिरण्याण्ड की तीन गतियां बताई हैं – पर्यप्लवन, प्रसर्पण और समेषण। पर्यप्लवन की गति में यह हिरण्याण्ड सर्वप्रथम अक्षभ्रमण की अवस्था अर्थात् अपनी धुरी पर घूम रहा था। फिर यह प्रसर्पण की गति को प्राप्त हुआ और इसमें गतिशीलता प्रारम्भ हुई और इसमें वृद्धि हुई। इसके बाद यह समेषण की स्थिति में आया और इसमें गम्भीर शब्दनाद के साथ इसका प्रसार प्रारम्भ हो गया।

इस प्रकार भारतीय हिरण्यगर्भ सिद्धान्त और आधुनिक विस्फोट सिद्धान्त में समानता मिल जाती है। जिसमें ब्रह्माण्ड की पर्यप्लवन स्थिति को हम आधुनिक मूल बिन्दु मान सकते हैं जिसे आधुनिक वैज्ञानिकों ने "प्रधान परमाणु" कहा। उस परमाणु में जब शब्दनाद के साथ गतिशीलता प्रारम्भ हुई तथा यह प्रसर्पण अवस्था में था। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस अवस्था को ही महाविस्फोट कहा है। हिरण्याण्ड की तीसरी अवस्था जिसे भारतीय ऋषियों ने समेषण अवस्था कहा है, उसमें हिरण्याण्ड का विस्तार होता है। यह महाविस्फोट के बाद के विस्तार की ओर संकेत करता है। अर्थात् ब्रह्माण्ड का विस्तार प्रारम्भ हुआ। अतः ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ में जो हिरण्यगर्भ सिद्धान्त के अन्तर्गत कहा गया है, प्रायः वही सिद्धान्त आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय दार्शनिक पद्धति के अनुसार भी प्रायः इसी प्रकार का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। सांख्यशास्त्र के अनुसार मूल प्रकृति में पुरुष के तेज से विक्षोभ हुआ और उसी विक्षोभ के बाद सृष्टि की उत्पत्ति हुई। समस्त प्रकार के ग्रह-नक्षत्रों की रचना भी इसी विस्फोट के कारण हुई। आधुनिक विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार यह दार्शनिक परिकल्पना इससे मिलती-जुलती हुई है। यहां मूल बिन्दु अर्थात् प्रधान परमाणु को हम प्रकृति का स्वरूप मान सकते हैं। उसमें अत्यधिक ऊर्जा के प्रभाव को हम सांख्य पुरुष की ऊर्जा के रूप में मान सकते हैं। जिस प्रकार प्रकृति का पुरुष की ऊर्जा के साथ संयोग से प्रकृति में विक्षोभ हुआ। कुछ इसी तहत आधुनिक वैज्ञानिकों का भी मानना है कि प्रधान परमाणु

के पास अत्यधिक ऊर्जा की सघनता के कारण इस मूल बिन्दु पर विस्फोट हुआ। इस प्रकार भारतीय प्राचीन सिद्धान्तों के अनुरूप ही आधुनिक वैज्ञानिक भी अपनी खोजों के अनुसार निष्कर्ष तक पहुंच रहे हैं।

3.8.2 स्पन्दनशील सिद्धान्त तथा भारतीय सृष्टिविज्ञान-

स्पन्दनशील सिद्धान्त आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा ब्रह्माण्ड के विस्तार और संकुचन को परिभाषित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। अन्य अर्थों में कहें तो यह सिद्धान्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और विनाश को परिभाषित करता है। ब्रह्माण्ड तथा इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है तथा यह सृष्टि नष्ट भी होती है। इस सिद्धान्त को हमारे प्राचीन ऋषियों ने स्पष्ट भी किया है। प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा परमाणुओं के संयोग से सृष्टि को परिभाषित किया गया है। भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार पदार्थ का परमाणुरूप स्थिर है, तथा वह कभी भी नष्ट नहीं होता। यही परमाणु अन्य परमाणु के साथ मिलकर सृष्टि करता है, तथा प्रलय की अवस्था में स्थूल स्वरूप से परमाणुरूप में पुनः परिवर्तित हो जाता है। परमाणु के इसी स्थूल स्वरूप धारण करने को हम परमाणु का विस्तार तथा पुनः परमाणुरूप में परिवर्तित होने को संकुचन की प्रक्रिया के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने ब्रह्माण्ड को स्थिर, अनादि और अनन्त नहीं माना। उनके अनुसार यह ब्रह्माण्ड एक असीमित शक्ति के द्वारा उत्पन्न होता है, और नष्ट भी होता है। इसीलिए भारतीय शास्त्रों में प्रलय की परिकल्पना हमें प्राप्त होती है। ब्रह्माण्ड की इस विस्तारित तथा संकुचित होने की प्रक्रिया को प्रलय सिद्धान्त द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। भारतीय ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि यह सब उत्पत्ति और प्रलय का संचालन परमात्मा करता है। परमात्मा के ही संकल्प मात्र से सृष्टि उत्पन्न होती है तथा नष्ट भी होती है। तैत्तिरीयोपनिषद् में वर्णन मिलता है कि सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ, उसके बाद क्रमशः वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी उत्पन्न हुए –**एतस्मादात्मन आकाश सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या औषधयः। ओषधेभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।** अर्थात् सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियां, औषधियों से अन्न तथा अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार इस ऋचा में सर्वशक्तिशाली भौतिक रचना आकाश की मानी गई है। इस प्रकार समग्र सृष्टि की रचना होती है, परन्तु यह सृष्टि अनन्त नहीं है, यह प्रलय अवस्था में समाप्त भी होती है। सृष्टि के इस प्रलय को प्राकृतप्रलय कहा जाता है, इसी को महाप्रलय भी कहते हैं। पौराणिक वर्णनों के अनुसार सृष्टि का रचनाकार ब्रह्मा है, लेकिन यह ब्रह्मा भी अनन्त नहीं है। एक निश्चित समय बाद इसकी आयु पूर्ण हो जाती है। परन्तु जब ब्रह्मा की आयु पूर्ण होती है तब यह सृष्टि भी प्रलय को प्राप्त होती है।

इस महाप्रलय में सभी प्रकार के पदार्थ अपने नित्य परमाणु स्वरूप के प्राप्त कर क्रमशः विलय होते हैं। इस प्रक्रिया में पृथिवी का परमाणुरूप जल में, जल का परमाणुरूप अग्नि में, अग्नि का परमाणुरूप वायु में, वायु का परमाणुरूप आकाश में क्रमशः विलीन हो जाते हैं। यही परमाणुओं की विलीन होने की प्रक्रिया को हम ब्रह्माण्ड का संकुचन भी कह सकते हैं। इसके बाद पुनः नवीन

सृष्टि की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। भास्कराचार्य बीजगणित नामक पुस्तक में इसी सिद्धान्त को खहर राशि (जिसमें शून्य भाजक होता है) में अविकारत्व को दृष्टान्त के रूप मेंइस प्रकार कहते हैं-

अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेSनन्तेSच्युते भूतगणेषु यद्वत्।।

अर्थात् खहर राशि (जिसमें हर शून्य हो) में किसी राशि को जोडने या घटाने से शून्य हर में उसी प्रकार कोई विकार नहीं होता, जिस प्रकार प्रलय काल में भगवान अच्युत के शरीर में अनेक जीव प्रविष्ट हो जाते हैं तथा सृष्टिकाल में उनके शरीर से अनेक जीव निकलते हैं तथापि उनके शरीर में कोई विकार नहीं होता है, अर्थात् ज्यों का त्यों रहता है। यदि भगवान को मूल बिन्दु या परमाणु समझें, तो स्पन्दनशील सिद्धान्त से साम्यता मिलती है। उत्पत्ति और प्रलय का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है, यही स्पन्दनशील सिद्धान्त है।

भारतीय विज्ञान प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ की मृत्यु को निश्चित मानता है, और जिसकी मृत्यु होती है उसकी उत्पत्ति भी निश्चित ही है। अतः उत्पत्ति और लय का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णन मिलता है कि –

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

अर्थात् जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, और जो मर गया है वह पुनः जन्मता है। इस प्रकार स्पन्दनशील सिद्धान्त की साम्यता भारतीय सृष्टिविज्ञान से साम्यता अवश्य रखती है। उत्पत्ति और प्रलय का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। यही स्पन्दनशील सिद्धान्त है।

अभ्यास प्रश्न-2

प्र. 16. स्थिरदशा का अर्थ क्या है?

प्र. 17. स्थिरदशा को प्राचीन भारतीय सिद्धान्त के अनुसार कैसे समझेंगे?

प्र. 18. स्थिरता का क्या अर्थ है?

प्र. 19. विस्फोट सिद्धान्त की भारतीय सिद्धान्तों से क्या साम्यता है?

प्र. 20. सांख्य के अनुसार विस्फोट की समानता क्या है?

प्र. 21. स्पन्दनशील सिद्धान्त को भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर परिभाषित किस प्रकार किया जा सकता है?

3.4 सारांश

ब्रह्माण्ड के विषय में प्राचीन भारतीय तथा आधुनिक विज्ञान के अनेकों सिद्धान्त वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। आधुनिक और प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों की बात करें तो उनमें साम्यता अवश्य ही दिखती है। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा सृष्टि के विषय में स्थिरदशा, विस्फोट, स्पन्दनशीलता ये तीन सिद्धान्त दिए गए हैं। प्राचीन भारतीय सृष्टिप्रक्रिया के अध्ययन के आधार पर हम देखते हैं कि परमाणुओं का नित्यत्त्व स्थिर है, यह स्थिरदशा सिद्धान्त से साम्यता रखता है। द्वितीय आधुनिक सिद्धान्त विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार समग्र सृष्टि एक महान विस्फोट से उत्पन्न हुई। इसकी साम्यता के विषय में यदि बात की जाए तो प्रकृति की साम्यावस्था में सृष्ट्युत्पत्ति के कारणस्वरूप त्रिगुणों के परस्पर टकराने से जो विकार उत्पन्न होते हैं वह विस्फोट सिद्धान्त से साम्यता रखता है। तृतीय और महत्वपूर्ण आधुनिक सिद्धान्त स्पन्दनशील है। स्पन्दनशील सिद्धान्त

भौतिक प्रकृति को अनित्य मानता है, इसके अनुसार सृष्टि में विस्तार और संकुचन एक नियमित प्रक्रिया है। विस्तार के समय सृष्टि उत्पन्न होती है और संकुचन सृष्टि के विनाश की प्रक्रिया है। भारतीय मत में भी सृष्टि को उत्पत्ति और विनाश के सहित ही माना गया है। अतः स्पन्दनशील सिद्धान्त सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश के सिद्धान्त से साम्यता रखता है। उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों के साथ साम्यता रखते हैं।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

जिज्ञासा	-	जानने की इच्छा
विमर्श	-	विचार-चिन्तन
गूढतम	-	अत्यन्त रहस्यमयी
अबूझ	-	अनसुलझी
रचयिता	-	रचना करने वाला
व्यापकता	-	अधिक विस्तार सीमा
वैदिक ऋचा	-	वेदों के मन्त्र
साम्यावस्था	-	स्थिर अवस्था
खगोलविद	-	ब्रह्माण्ड विज्ञानी
परिणत	-	परिवर्तन
पराकाष्ठा	-	अत्यन्त तीव्रता
सृजन	-	रचना, उत्पत्ति
सर्वकालत्व	-	सभी कालों में विद्यमान
सर्वव्यापकत्व	-	सभी स्थानों में विद्यमान
चराचर	-	चर और अचर
स्थापत्य	-	स्थापना से संबन्धित
भूकेन्द्रिक	-	भूमि को केन्द्र में रखकर
सूर्यकेन्द्रिक	-	सूर्य को केन्द्र में रखकर
विपरीत	-	उल्टा
अपरिवर्तनशील	-	जिसमें परिवर्तन नहीं होता
अकारण	-	विना कारण के
अकस्मात्	-	अचानक
सिकुड़ना	-	संकुचित होना
रचयिता	-	रचना करने वाला
अक्षभ्रमण	-	धुरी पर घूमना
असीमित	-	सीमा से रहित
नवीन	-	नया
साम्यति	-	समानता

समग्र - सम्पूर्ण

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. भारतीय साहित्य वाङ्मय के आधार पर ब्रह्माण्डोपत्ति के प्रमुख चार सिद्धान्त हमें प्राप्त होते हैं। जिनमें विश्वकर्मा द्वारा सृष्टि ब्रह्मा द्वारा सृष्टि, प्रजापति द्वारा सृष्टि तथा विराट् पुरुष ,द्वारा सृष्टि का वर्णन हमें मिलता है।
2. सत्व-रज-तम नामक तीन गुण हैं।
3. आधुनिक खगोलविदों द्वारा तीन प्रमुख सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है – ये विस्फोट सिद्धान्तस्थिरदशा सिद्धान्त तथा स्पन्दनशील सिद्धान्त हैं। ,
4. तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ।
5. पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश ये पञ्चमहाभूत सृष्टि की उत्पत्ति का मूल माने गए हैं।
6. सांख्य के अनुसार सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।
7. दशाङ्गुलन्याय के अनुसार पृथ्वी से दशगुना जल, जल से दशगुना अग्नि, अग्नि से दशगुना वायु, वायु से दशगुना आकाश, आकाश से दशगुना अहंकार, अहंकार से दशगुना महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से दशगुना मूलप्रकृति और यह मूलप्रकृति भगवान के एक पाद में है।
8. नासदीयसूक्त में वर्णन मिलता है कि सृष्टि से पूर्व कुछ भी नहीं था पश्चात् स्वयमेव शुद्धचैतन्य परब्रह्म की सत्ता उत्पन्न हुई।
9. श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान विष्णु के मन में सृष्टि की जिज्ञासा उत्पन्न हुई तत्पश्चात् भगवान विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। इसी ब्रह्मा ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की।
10. पुरुषरूक्त के अनुसार सृष्टि का रचनाकार विराट्पुरुष है।
11. विश्वकर्मा को पौराणिक साहित्य में सृजनकर्ता कहा गया है। विश्वकर्मा का अर्थ ही विश्व का कर्ता होता है।
12. प्रजापति वैदिक श्रुतियों में हिरण्यगर्भ नाम से भी प्रसिद्ध हुए।
13. जब ब्रह्माण्ड में न सिकुड़न दिखाई पड़ती है और न ही विस्तार दिखाई पड़ता है, उस स्थिति को स्थिरदशा कहा जाता है।
14. विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि एक महाविस्फोट से उत्पन्न हुई।
15. स्पन्दनशील का अर्थ सिकुड़ने और फैलने की नियमित प्रक्रिया से हैइसके अनुसार , ब्रह्माण्ड फैलता रहता है, तथा सिकुड़ता रहता है।
16. स्थिर से अर्थ उत्पत्ति और विनाश का अभाव है
17. प्राचीन भारतीय सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति स्थिर है, तथा पञ्चमहाभूतों के परमाणु भी स्थिर हैं।
18. अनादि और अनन्त का भाव ही स्थिरता है।
19. भारतीय सृष्टिविज्ञान के आधार पर हिरण्यगर्भ में विस्फोट होने से यह सृष्टि उत्पन्न हुई। आधुनिक विज्ञान भी सृष्टि का कारण विस्फोट को ही मानता है।
20. सांख्य के अनुसार तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है, और प्रकृति में विकार उत्पन्न होने से सृष्टि उत्पन्न होती है, यही प्रकृति का विकार प्रकृति का विस्फोट कहलाता है।

21. भारतीय परम्परा के अनुसार उत्पत्ति और प्रलय का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। इसी प्रकार स्पन्दनशील सिद्धान्त में भी विस्तार और संकुचन नियमित प्रक्रिया है।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2016
2. खगोलीय पिण्डों का परिक्रमणकोपर्निकस, व्याख्या, तिवारी, श्रवणकुमार एवं पाण्डेय , , रमाकान्त, वाराणसी हिन्दी प्रकाशन समितिसन् 1972 ,
3. गोलपरिभाषासंवत् 2027 ,झा, सीताराम, दरभङ्गा, बिहार, श्रीसीताराम पुस्तकालय ,
4. भुवनकोश विमर्श, प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स दिल्ली, वर्ष 2004

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2015
2. राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्, डॉ श्रीकृष्ण जुगनू, परिमल प्रकाशन, वर्ष 2005
3. श्रीमद्भागवतपुराणम्वेदव्यास ,,गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2059
4. श्रीमद्भगवद्गीतागीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2048 ,

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र. 1. सृष्टिविज्ञान के प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

प्र. 2. सृष्टिविज्ञान के आधुनिक सिद्धान्तों का वर्णन करें।

प्र. 3. स्थिरदशा सिद्धान्त की भारतीय सृष्टिविज्ञान के संदर्भ में तुलनात्मक व्याख्या करें।

प्र. 4. विस्फोट सिद्धान्त की भारतीय सृष्टिविज्ञान के संदर्भ में तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्र. 5. स्पन्दनशील सिद्धान्त की भारतीय सृष्टिविज्ञान के संदर्भ में तुलनात्मक व्याख्या करें।

प्र. 6. भारतीय सृष्टि विज्ञान और आधुनिक सिद्धान्तों के आधार पर निबन्ध लिखें।

इकाई-4 ब्रह्माण्ड के अवयव

इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 ब्रह्माण्ड का स्वरूप एवं अवधारणा
4.4 वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

वैदिक विज्ञान एवं गणित से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की यह चतुर्थ इकाई है। इससे पूर्व कि इकाईयों में आपने सृष्टि विज्ञान के सिद्धान्तों को जाना। प्रस्तुत इकाई में हम ब्रह्माण्ड के अवयव को जानेंगे। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इसका उत्तर स्पष्ट शब्दों में कोई नहीं दे सकता। जिज्ञासुओं ने इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए कई प्रयत्न किए हैं। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल पर्यन्त इस जिज्ञासा की पूर्ति हेतु मनुष्य आकाश में स्थित खगोलीय पिण्डों को निहारता आया है। प्रस्तुतप्रमाणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हमारे पूर्वज भी ब्रह्मांड के प्रति उतने ही जिज्ञासु थे, जितने आज हम हैं। सभ्यता के प्रारंभ से ही मनुष्य दिन में आँखों को चकाचौंध कर देने वाले सूर्य और रात में निरभ्र आकाश को अपनी मुलायम चांदनी से सुशोभित कर देने वाले चन्द्रमा तथा उसके साथ-साथ आकाश में स्थित असंख्य टिमटिमाते तारों एवं अन्य खगोलीय घटनाओं को देखकर रोमांचित होता रहा है। प्राचीन काल से ही मनुष्य ने सूर्योदय से सूर्यास्त तक, चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कलाओं और ऋतु परिवर्तन जैसी प्राकृतिक घटनाओं के माध्यम से समय की गणना करने का प्रयास किया। इन आकाशीय घटनाक्रमों ने मनुष्य के सामाजिक और धार्मिक जीवन को भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। भारतीय वैदिक विज्ञान में ब्रह्मांड की व्याख्या के तथ्य इस धारणा पर आधारित थे कि सारी भौतिक और प्राकृतिक क्रियाएं पंचमहाभूतों पर ही निर्भर हैं। इसी सिद्धान्त की पुष्टि हमें सर्वप्रथम तैत्तिरीयोपनिषद् में प्राप्त होती है। तैत्तिरीयोपनिषद् में पञ्चमहाभूतों की क्रमशः उत्पत्ति को वर्णित किया गया है। भारतीय ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड की महत्ता सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न एवं सबसे विस्तृत विषय के रूप में बताई गई है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय में वेदों से लेकर पुराणों तक, सभी ग्रन्थों में इसका वर्णन हमें मिलता है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ही सृष्टि की उत्पत्ति का बीज है, इस प्रकार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को ही सृष्टि की उत्पत्ति भी कहा जाता है। ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में हमें प्राप्त होते हैं, ऋग्वेद में नासदीयसूक्त, पुरुषसूक्त आदि ब्रह्माण्डोत्पत्ति के महत्वपूर्ण सूक्त हैं, जिनमें सृष्टिवर्णन विस्तार से किया गया है। आधुनिक विज्ञान भी इन्हीं सिद्धान्तों को आधार मानकर लगातार अनुसंधान कर रहा है। हमें यह जानना आवश्यक है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? क्या इसका कोई प्रारम्भ भी था ? इसकी उत्पत्ति से पूर्व क्या था? क्या इसका कोई जन्मदाता भी है ? यदि ब्रह्माण्ड का कोई जन्मदाता है तो पहले ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ या उसके जन्मदाता का? यदि पहले ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ तो उसके जन्म से पहले उसका जन्मदाता कहाँ से आया ? इस विराट ब्रह्माण्ड की मूल संरचना कैसी है ? ब्रह्माण्ड का भावी परिदृश्य (भविष्य) क्या होगा ? ब्रह्माण्ड के सदस्य कौन कौन हैं ? - ये कुछ ऐसे मूलभूत प्रश्न हैं जो आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने सदियों पूर्व थे। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से सम्बंधित इन मूलभूत प्रश्नों के उत्तर धर्माचर्यों, दार्शनिकों, और वैज्ञानिकों ने सप्रमाण दिए है। जिसका विस्तृत अध्ययन आप प्रस्तुत पाठ में करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप—

- ब्रह्माण्ड के स्वरूप का वर्णन करने में समर्थ होंगे।
- ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे।
- वेदों में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों कि अवधारणा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- ब्रह्माण्ड की परिभाषा व अर्थ को जान सकेंगे।
- ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषयक सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

4.3 ब्रह्माण्ड का स्वरूप एवं अवधारणा

ब्रह्माण्ड शब्द संस्कृत भाषा का है और इसका अर्थ होता है "ब्रह्मा का अंश" या "ब्रह्मा का विस्तार". जिससे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, संरचना, विस्तार और नाश को समझने में मदद मिलती है। इस शब्द का उपयोग समस्त जीवत्त्व के संगठन और उसके साथ सम्बंधित विषयों के लिए किया जाता है। यह शब्द ब्रह्मा और अंड (जो अविकारी और अनन्त है) के समन्वय को दर्शाता है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड शब्द लैटिन शब्द "यूनिवर्सम" से लिया गया है, जिसका उपयोग रोमन राजनेता सिसेरो और बाद के रोमन लेखकों ने दुनिया और ब्रह्माण्ड को संदर्भित करने के लिए किया था। पाश्चात्य जगत में ब्रह्माण्ड को यूनीवर्स (Universe) कहा जाता है। आधुनिक विद्वानों के अनुसार – "ब्रह्माण्ड समय और अन्तरिक्ष की अन्तर्वस्तु को कहते हैं। ब्रह्माण्ड में सभी ग्रह, तारे, मन्दाकिनी, खगोलीय पिण्ड, अपरमाणविक कण, सम्पूर्ण पदार्थ और ऊर्जा सम्मिलित है। अवलोकन योग्य ब्रह्माण्ड का व्यास वर्तमान में लगभग 91.1 अरब प्रकाश वर्ष है, पूरे ब्रह्माण्ड का व्यास अभी अज्ञात है, और हो सकता है कि यह अनन्त हो" वाचस्पत्यम् में ब्रह्माण्ड की परिभाषा को इस प्रकार से कहा गया है– **'तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्। तस्मिन् यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः'** अर्थात् वह अण्ड जिसमें सहस्रों ज्योतिपुञ्ज विद्यमान हैं, इस अण्ड में सृष्टियज्ञ करने वाले सभी लोकों के पितामह ब्रह्मा हैं। वे ही सभी प्रकार की सृष्टियां रचते हैं। अतः जिस अण्ड में ब्रह्मा समस्त प्रकार की सृष्टियों का सृजन करते हैं, उस अण्ड को ब्रह्माण्ड कहते हैं।

"यस्मिन् भाण्डे ग्रहनक्षत्रताराऽकाशगङ्गोल्का-धूमकेतुदैत्यमानवदेवादयः समस्ताः जीवादयो भूर्भुवादिचतुर्दशलोकाश्च समन्विताः सन्ति तदेव ब्रह्माण्डम्" अर्थात् जहाँ ग्रह, नक्षत्र, तारे, आकाशगङ्गा, उल्काएं, धूमकेतु, दैत्य, मानव, देवता आदि समस्त जीवादियों की सृष्टियां तथा भूर्भुवादि चतुर्दशलोक (भू-भुव-स्व-मह-जन-तप-सत्य ये सात ऊर्ध्वलोक, अतल-वितल-सुतल-तलातल-रसातल-महातल-पाताल ये सात अधोलोक) विद्यमान हैं, वह ब्रह्माण्ड कहलाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् की परिभाषा से भी यही स्पष्ट होता है। उसके अनुसार आकाश सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान् सत्ता है, आकाश के भीतर वायुतत्त्व उत्पन्न होता है, वायु के अन्दर अग्नितत्त्व, अग्नि के भीतर जलतत्त्व तथा जल के अन्दर पृथ्वीतत्त्व उत्पन्न होता है। इन पांच तत्त्वों कों दशाङ्गुलन्याय द्वारा समझते हैं, तो पृथ्वी से दश गुणा अधिक जल है, जल से दशगुणा अधिक अग्नि, अग्निसे दशगुणा अधिक वायु तथा वायु से दशगुणा अधिक आकाश की सत्ता है। ये पांचों तत्त्व क्रमशः इसी ब्रह्माण्ड के अंग हैं और इन्हीं की क्रमशः उत्पत्ति भारतीय ज्ञान-विज्ञान वाङ्मय में सृष्टि कहलाती है। प्राचीन-कालीन मानव को ब्रह्माण्ड का ज्ञान था। इस तथ्य के साक्षी के रूप में सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय को देखा जा सकता है। वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत, ब्रह्माण्डोत्पत्ति, ग्रह, नक्षत्र,

तारे, सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी का व्यापक उल्लेख प्राप्त होता है। ब्रह्माण्ड को गगन, व्योम, नभ, आकाश और अन्तरिक्ष आदि उपनामों से वर्णित किया है। ब्रह्माण्ड के सभी पिण्डों पर गुरुत्वाकर्षण-बल का प्रभाव पड़ता है तथा इसी गुरुत्वाकर्षण-बल के कारण ब्रह्माण्ड का प्रत्येक पिण्ड आश्चर्यजनक रूप से अपने स्थान पर स्थित है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने विश्व की कल्पना वलयाकार आकृति में की है परन्तु यह कल्पना भी नवीन नहीं है। अन्य प्राचीन ग्रन्थों पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि शैव ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड को लोक-अलोक तथा पुराणों में इहलोक तथा परलोक का सम्मिलित स्वरूप माना गया है। सूर्य सिद्धान्तकार ने ब्रह्माण्ड का स्वरूप इस प्रकार बताया है-

ब्रह्माण्डमेतत् सुशिरं तत्रेदं भूभुर्वादिकम्। कटाहद्वितयस्यैव सम्पुटं गोलकाकृतिः।।
ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते। तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा।।

अर्थात् दो समान कटाहों को परस्पर मुख से मिला देने से जिस आकृति का निर्माण होतो है। वही आकृति ब्रह्माण्ड की है। उन दोनों कटाह के मध्य जो रिक्त स्थान है, उसमे भूर्भुवादि चतुर्दश लोक विद्यमान है। ब्रह्माण्ड की परिधि को आकाश कक्षा कहते है। जिसके मध्य नक्षत्र ग्रह आदि की कक्षाएं है। इस प्रकार सूर्यसिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड गोलाकृतिक है। वेदों में हिरण्यमयाण्ड से सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति का वर्णन आया है। सुवर्णमय अण्डे के दो भाग हुए जिससे ब्रह्माण्ड का वृत्ताकारत्व सिद्ध होता है। समस्त प्रकार का दृश्य एवं अदृश्य जगत ब्रह्माण्ड से ही उत्पन्न होता है, तथा ब्रह्माण्ड में ही समाहित हो जाता है। ब्रह्माण्ड को भारतीय ज्ञान परम्परा में परब्रह्म परमात्मा की प्रथम संरचना कहा गया है। ब्रह्माण्डोत्पत्ति का सिद्धान्त ही भारतीय ज्ञान परम्परा में सृष्टिविज्ञान का सूत्रपात करता है। इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि ब्रह्माण्ड वह सत्ता है जो समस्त सृष्टि का मूल है और समग्र सृष्टि इसी ब्रह्माण्ड के भीतर समाहित भी है।

ब्रह्माण्ड के प्रमुख घटक—

किसी भी वस्तु को समझने के लिए उसके घटकों को समझना आवश्यक होता है। ऐसा भी कह सकते हैं कि समष्टिगत रूप को समझने के लिए उसके प्रत्येक व्यष्टिगत रूप को समझना आवश्यक होता है। ब्रह्माण्ड रूपी शरीर को समझने के लिए इसके व्यष्टिगत रूप को समझना आवश्यक होगा। यद्यपि ब्रह्माण्ड में असंख्य छोटे एवं बडे घटक हैं। परन्तु स्थूल रूप से विचार किया जाए तो ब्रह्माण्ड में चार स्थूल सदस्य है - आकाशगंगा, नीहारिका, तारामंडल तथा सौर परिवार।

1- आकाशगंगा— जब हम रात में तारों से भरे आकाश को देखते हैं तो हम उसकी दीप्ति के वैभव से प्रफुल्लित हो उठते हैं। यदि हम किसी गाँव में रहकर आकाश दर्शन करते हैं तो और भी अधिक आनंद आता हैं। जब हम प्रतिदिन आकाश का अवलोकन करतें हैं तो हमें धीरे-धीरे यह पता चलने लगता है कि न ही सभी तारों का प्रकाश एकसमान है, और न ही उनकें रंग। हम अपनी नंगी आंखों से जितने भी तारों एवं तारा समूहों को देख सकते हैं, वे सभी एक अत्यंत विराट योजना के सदस्य हैं, जो आकाश में लगभग उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ नदी के समान प्रवाहमान प्रतीत होता है। इसे 'आकाशगंगा' या 'मंदाकिनी (Galaxy) कहते हैं। प्राचीन भारतीय विज्ञान में इसे स्वर्गगंगा, आकाशगंगा, मन्दाकिनी, देवगंगा, क्षीरनदी, आकाशनदी, आकाशयज्ञोपवीत आदि कहा है। खगोलशास्त्रियों की गणना के अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड में सहस्रों अरब आकाशगंगाएँ हैं। प्रति आकाशगंगा में अनुमानतः हजारों अरब तारे होते हैं। हमारी आकाशगंगा में हमारा सौर-परिवार तो

एक कोने में बिन्दु मात्र दिखाई देता हैं। आकाशगंगा का व्यासमान प्रायः 100000 प्रकाश वर्ष है। आकाशगंगा में तीन प्रकार की तारों की श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणी में वे तारे आते हैं जो आकाशगंगा के सर्पिलों और नाभि में स्थित हैं। सूर्य भी इसी में समाहित है, इसे मन्दाकिनी गुच्छ कहते हैं। इसके बाहर प्रभामण्डलीय तारे हैं। यहाँ बहुत से तारों ने एक छोटी मन्दाकिनी का रूप भी लिया है। इनको हम गोलाकार तारागुच्छ कहते हैं। इनमें बहुत पुराने तारे पाए जाते हैं। इन गोलाकार गुच्छों से दूर करोड़ों तारें हैं जो आकाशगंगा के बाहरी भाग में छिटके पड़े हैं। ये तारे भी आकाशगंगा के ही अंग हैं।

2- नीहारिका— खगोल विज्ञान के अनुसार बिग बैंग की घटना के कुछ करोड़ वर्ष के बाद तारों और आकाशगंगाओं का निर्माण होने लगा। वास्तव में आकाशगंगा का निर्माण हाइड्रोजन, हीलियम गैसों तथा धूलकणों से बने विशाल बादल के इकट्ठा होने से हुआ है। आकाशगंगा को बनाने वाले इन बादलों को निहारिका कहते हैं। ब्रह्माण्ड में खरबों तारे हैं, जो अन्तरिक्ष मे समान रूप से वितरित नही हैं। ये तारे बहुत बड़े बड़े समूहों मे वितरित रहते है। प्रत्येक समूह मे खरबों तारे होते है। इन समूहों मे तारों के अलावा हाइड्रोजन गैस एवं धूल के कणों की बहुत अधिक मात्र भी उपस्थित रहती है। तारो के ऐसे प्रेत्यक समूह को नीहारिका कहते हैं। वास्तव में नीहारिकाएँ ब्रह्माण्ड की निर्माणी घटक हैं। ये तारों की तरह प्रकाशित होते हैं परन्तु ये तारे नहीं हैं क्योंकि इनका आकार तारों की तरह नहीं है। आकाश में छोटी-बड़ी अर्थात् सभी प्रकार की नीहारिकाएँ दिखाई देती हैं। जो नीहारिकाएँ ग्रहों के सदृश गोलाकार होती हैं उन्हें ग्रहीय नीहारिका कहते हैं।

3- तारामंडल — यह प्रकाशित खगोलीय पिंड हैं। जो गैसों से मिलकर बने होते हैं। इन तारों के समूह को तारामंडल कहते हैं । पूरे आकाश को 89 तारामंडलों में विभक्त करके उन तारामंडलों के नाम रख दिए गए हैं। राशिचक्र के तारामंडल बहुत प्रसिद्ध हैं, इनकी संज्ञा मेष, वृष आदि है। जैसे मेष राशि के सबसे चमकीले तारे का नामकरण एल्फातरीज किया गया है। आकाशगंगा का लगभग 98 प्रतिशत भाग तारों से बना है, शेष 2 प्रतिशत भाग में खगोलीय गैस और बहुत ही अधिक घने रूप में छाई धूल है। इन समस्त तारों का वर्गीकरण इनकी द्युति, वर्ग, ताप एवं स्वरूप आदिका ज्ञान भौतिक लक्षणों के द्वारा प्राप्त होता है। इसी को तारों का कान्तिमान कहते हैं। मुख्यतः कान्तिमान के द्वारा ही भौतिकशास्त्र में तारों का अध्ययन होता है।

4- सौर परिवार— सूर्य का परिवार ही सौर-परिवार कहा जाता है। इसी को सौरमण्डल भी कहते हैं हमारे सूरज और उसके ग्रहीय मण्डल को मिलाकर हमारा सौर मण्डल बनता है। इन पिंडों में आठ ग्रह, उनके 172 ज्ञात उपग्रह, पाँच बौने ग्रह और अरबों छोटे पिंड शामिल हैं। इन छोटे पिंडों में क्षुद्रग्रह, बर्फीला काइपर घेरा के पिंड, धूमकेतु, उल्कायें और ग्रहों के बीच की धूल शामिल हैं। जिस ग्रह के पास अपना प्रकाश नहीं होता है। ये सूर्य की किरणों को प्रवर्तित कर प्रकाशित होते है। शुक्र या अरुण दक्षिणावर्त्त दिशा में अर्थात पूर्व से पश्चिम दिशा में परिक्रमण करते हैं जबकि अन्य सभी ग्रह वातावर्त दिशा में अर्थात पश्चिम से पूर्व की दिशा में परिक्रमा करते है। सूर्य या ग्रह के बीच का गुरुत्वाकर्षण बल उन्हें परिक्रमण करने देता है। इन ग्रहों को आंतरिक एवं बाह्य भेद से दो भागो में विभाजित किया जाता है - बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल ये आंतरिक ग्रह हैं। बृहस्पति, शनि तथा अरुण ये बाह्य ग्रह हैं।

बोध प्रश्न—1 लघूत्तरीय प्रश्न -

1- आकाश में कौन सी दो नीहारिकाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं?

2- हमारे सौर मण्डल में कौन कौन से पिण्ड हैं।

3- आंतरिक ग्रह या पार्थिव ग्रह कौन कौन से हैं ? -

4- ब्रह्माण्ड में चार स्थूल सदस्य कौन-कौन से हैं ?

5- प्राचीन भारतीय विज्ञान में आकाशगंगा को किन किन नामों से सम्बोधित किया गया है।

4.4 वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त

ब्रह्माण्ड के सृजन की क्रिया का वर्णन ब्रह्माण्ड-उत्पत्ति का सिद्धान्त कहलाता है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं। प्रथम धार्मिक संकल्पना तथा द्वितीय वैज्ञानिक संकल्पना। ब्रह्माण्डोत्पत्ति की वैज्ञानिक संकल्पना के विषय में आपने पढा। धार्मिक संकल्पना प्रमुख प्राचीन भारतीय ग्रन्थों यथा- वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद, धर्म सूत्र आदि में दृष्टिगोचर होती है। पुराणों के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति का उल्लेख बहुत ही रहस्यमयी, विलक्षण एवं तर्क संगत है। अति प्राचीन काल से ही वैदिक मनीषियों ने ब्रह्माण्ड उद्भव के सिद्धान्त की स्थापना कर दी थी तथा यह भी बताया कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक ही मूल या बीज तत्व के द्वारा हुई है। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवस्थित ब्रह्माण्ड को देखने से यह बात स्पष्ट होती है कि इसका प्रथम कारण ईश्वर ही है। प्राचीन काल से लेकर आज तक इसी एक तत्व को आधार मानकर धर्माचार्यों, मनीषियों, विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने विविध प्रकार की परिकल्पनाओं और अवधारणाओं की कल्पना का जो स्वरूप प्रस्तुत किया वह वैज्ञानिक कम होकर ऐतिहासिक ज्यादा है। वैदिक ग्रन्थों में भी ब्रह्माण्ड-उत्पत्ति का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

उपनिषदों के अन्तर्गत इसी तत्व को परम ब्रह्म, स्रष्टा, पालक एवं संहारक के रूप में माना गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् में आया है कि ब्रह्मात्मा से ब्रह्माण्ड निकला, ब्रह्माण्ड से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से वनस्पति, वनस्पति से भोजन, भोजन से मानव आदि बने। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? इन तथ्यों का वर्णन वेद उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, भगवद्गीता, आदि प्राचीन ग्रन्थों में निहित है। भारत के संस्कृत-साहित्य के अमूल्य भण्डार के रूप में उपलब्ध वेदों के अन्तर्गत ब्रह्माण्डोत्पत्ति-मत भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किये गये है। परन्तु सभी मत का मूल एक ही है। ब्रह्माण्ड-पुराण का अधिकांश उल्लेख वेदों में वर्णित तथ्यों के समकक्ष है यही कारण है कि वेदों के ब्रह्माण्डोत्पत्ति सिद्धान्त का पुराण पर गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है -

विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड सृजन हेतु प्रयोग किया जाने वाला पदार्थ अन्तरिक्ष धूल माना गया है। ब्रह्माण्ड के निर्माण में विश्वकर्मा को प्रमुख वास्तुविद् माना गया है तथा यह मान्यता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति विश्वकर्मा ने उसी प्रकार की है जिस प्रकार किसी गृह की रचना निर्माण सामग्री और कारीगारों द्वारा होती है। इस प्रकार पुराणों के अन्तर्गत सृजन तत्व की प्राचीन शक्ति तत्व के रूप में माना गया है। इस शक्ति तत्व का अव्यक्त और प्रकृति के नाम से सम्बोधित किया गया है तथा यह बताया गया है कि प्रत्येक तत्व में एक शक्ति होती है। उदाहरणस्वरूप अग्नि में जलाने की शकति। इसी तरह से ईश्वर के

प्रतिनिधि विश्वकर्मा में ब्रह्माण्ड के निर्माण की शक्ति निहित है। ब्रह्माण्ड की इन्हीं शक्तियों में विष्णु, कृष्ण और नारायण को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। इस सृष्टि में अन्तरिक्ष, पृथ्वी और स्वर्ग तीन लोकों की कल्पना की गयी है। मत्स्य-पुराण में आया है कि भगवान विष्णु ने ब्रह्माण्ड की रचना में ऊपर वाले भाग को आकाश, नीचे के भाग को रसातल तथा मध्य भाग को पृथ्वी बताया है। ब्रह्माण्ड-उत्पत्तिक को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है- **'विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।तोषामिष्टानि समिषा भवन्ति यत्र सप्त ऋषीन्पर एकमाहुः'।** अर्थात् सृष्टि को रचने वाला (विश्वकर्मा) विशेष ज्ञान वाला आकाश के सामान सर्वत्र व्यापाक सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाला, विश्व के विधान को रचने वाला परम ज्ञानी, सबसे मुख्य तथ्य और सम्यक् रूप से सबका द्रष्टा है।

विराट पुरूष से ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति आदि विराट पुरुष से हुई है। ब्रह्माण्ड स्रष्टा इस विराट पुरुष को विश्व की आत्मा के रूप में माना गया है। इस आत्मा की नाभिक और मूर्तरूप के विखण्डन से अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु और अन्य आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति हुई। इस पृथ्वी के समस्त जीवधारी और मानव उसी आत्मा के विखण्डन का परिणाम है। भागवत पुराण में विराट पुरुष का वर्णन करते हुए कहा गया है कि विराट पुरुष के तलवे पाताल लोक, एड़ियां और पंजे रसातल लोक, पैर के पिण्ड तलातल, दोनों घुटने सुतल, जंघाएँ वितल और अतल, पेडू-भूतल, नाभि सरोवर और आकाश, वक्षस्थल स्वर्णलोक, गला महिलोक, बदन-जनलोक, ललाट-मस्तक, सत्यलोक बाहुए इन्द्र आदि देव, कर्ण दिशा, मुख अग्नि व सूर्य, तालु जल, जिह्वा-रस, कोख- समुद्र, अस्थियाँ-पर्वत आदि हैं।

महाभारत के शन्ति पर्व में ब्रह्माण्ड का सृजन अव्यक्त से बताया गया है। इसमें सर्वप्रथम फ्महान'' (विराट) से आकाश की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। आकाश से जल, जल से अग्नि, एवं वायु उत्पन्न हुई बताया गया है। सभी तत्त्वों के मिश्रण से पृथ्वी की संरचना बतायी गयी है। सृष्टि के पूर्व यही महाशक्ति आदि पुरुष में विद्यमान थी। इसीलिए इन्हें आदि पुरुष कहा गया है। आदि और अन्त से परे समस्त विश्व का बीच होने तथा नार (जल) में सोने के कारण इस विराट पुरुष को नारायण भी कहा गया है। ब्रह्माण्ड-पुराण में विराट पुरुष के विषय में उल्लेख है कि सृष्टि काल में विश्व-सृजन करने की अभिलाषा से महान तत्त्व उत्पन्न हुआ। यह महान तत्त्व प्रकाशमान था। सृष्टि की इच्छा से प्रेरित उस महान ने ब्रह्माण्ड की रचना की। इस रचना में सभी चराचर सजीव एवं निर्जीव विद्यमान हैं। इस महान को विद्वान, मन, आत्मा, मति, ब्रह्मा, भू-बुद्धि, ईश्वर, प्रजा, स्मृति और विभु कहते हैं।

ब्रह्म से ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मा ने निद्रा से जागने के बाद सृष्टि के सृजन का संकल्प लेकर अपने मन को नियुक्त किया। मन ने सृष्टि-सृजन हेतु सर्वप्रथम आकाश बनाया। आकाश का विलक्षण गुण है स्तर। फिर आकाश ने अपने को परिमार्जित करके वायु की रचना की, जिसका अर्थ है स्पर्श। वायु से देदीप्यमान प्रकाश की उत्पत्ति हुई। प्रकाश से जल की उत्पत्ति हुई। जल से पृथ्वी की संरचना हुई। इस पृथ्वी का विशिष्ट-गुण है गन्ध। ऋग्वेद वेद में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय में उल्लेख इस प्रकार है- **'चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो धृतमेने अजनन्नम्नमाने। यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावा पृथिवी अप्रथेताम्'।** अर्थात् सूर्य एवं दृश्य जगत का पिता अपनी विचार शक्ति से गम्भीर और

सबको धारण करने वाला, जल की रचना करने वाला। वह इस परिवर्तन में सूक्ष्म से स्थूलरूप (अणु परमाणु से दृश्य संसार) में आते हुए द्युलोक (नक्षत्र मण्डल), भूलोक (पृथ्वी आदि ग्रह मण्डल) को उत्पन्न करता है। जब (ज्यों-ज्यों) पूर्व निर्मित भाग दृढ़ होते जाते हैं। तदन्तर (त्यों-त्यों) आगे-आगे द्युलोक, भूलोक विस्तार पाते जाते हैं। विष्णु-पुराण में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ब्रह्म से बतायी गयी है तथा कहा गया है कि ब्रह्म के पूर्व सृष्टि के आदि मे न सत् था न असत्, न आकाश था न वायुमंडल, न रात थी, न दिन था, केवल ब्रह्म को छोड़कर शून्य था। मत्स्यपुराण के अन्तर्गत आया है कि सर्वप्रथम नारायण अवतरित हुए। नारायण ने विश्व-सृष्टि की कामना से अपने शरीर से सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण-बह्म, विष्णु और महेश को उत्पन्न किये। इसके पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा 23 तत्त्वों के समूह में प्रविष्ट होकर नारायण ने इन तत्वों को मिलाकर एक परिमाण प्राप्त किया। यह परिमाण विश्व-संरचना के तत्त्वों का गर्भ था जिससे ब्रह्माण्ड कीउत्पत्ति हुई। ब्रह्माण्ड-पुराण के अनुसार, ब्रह्माण्ड में सबसे पहले ऐश्वर्य शाली ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा को प्रकृति पुरुष भी कहा गया है। यह अनादि और नियत पुरुष है। इन्हें ब्रह्माण्ड के समस्त उत्पन्न पदार्थों का पिता भी कहा जाता है। ब्रह्मा ने सृष्टि के समय सत्व, रजस्, और तमो गुणों में क्षोभ उत्पन्न किया और महान तत्त्व को जन्म दिया। सृष्टि का अंकुर, यह महातत्व विश्व को प्रकट करने के लिए प्रलयकारी अन्धकार को अपने में समेट लिया। रजो और तमो गुण के कारण महातत्व ने विकास रूप में ज्ञान, तप, क्रिया, द्रव्य और अन्धकार उत्पन्न किया। महावत्व के विकार का रूप वायु, जल, पृथ्वी आदि हैं।

सूर्य से ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

इसी आधार पर सूर्य देव को सम्पूर्ण सृष्टि निर्माण का प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण कारक माना गया है। इसमें सूर्य को ब्रह्मा की आत्मा बताया गया है। सूर्य को राजपति, विश्वकर्मा, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, प्रजापति, हिरण्यगर्भ तथा अजन्मा सत् बताया गया है। मनुस्मृति में यह बताया गया है कि जब यह विश्व अज्ञात अन्धकार में अवस्थित होकर गम्भीर निद्रा में निमग्न था तब स्वयम्भू अपनी शकति से अन्धकार को हटाकर महान तत्वों के साथ प्रकाशमान हुए। स्वयम्भू ने विश्व को अपने शरीर से उत्पन्न करने की इच्छासे सर्वप्रथम जल की उत्पत्ति की। जल में अपना बीज लगाया। वह बीज हिरण्यगर्भ (सोने का अण्डा) बन गया है। यह हिरण्यगर्भ तेज में सूर्य के समान था। इस अण्डे से ब्रह्मा अवतरित हुए जिन्हें नारायण कहा जाता है। नारायण ने हिरण्यगर्भ को दो भागों में बाँटकर पृथ्वी और स्वर्ग की उत्पत्ति की। इन दोनों के मध्य अन्तरिक्ष, आठ दिशाएँ, समुद्र और पंच तत्वों से जीव की उत्पत्ति की। ऋग्वेद में मं0 10 सू0 121-1 के अनुसार- संसार के इस रूप में आने से पहले हिरण्यगर्भ की स्थिति में थी। यह सुवर्णमय उपादान पंचभूत समूह का एक मात्र धारक था। उसने ही भूलोक और द्युलोक को धारण किया। मत्स्य-पुराण के अन्तर्गत भी मनुस्मृति के समान ही वर्णन प्राप्त होता है जैसे- सृष्टि से पूर्व नारायण थे, नारायण ने सर्वप्रथम जल की उत्पत्ति की, जल में बीज से सोने का अण्डा मिला। अण्डे के भीतर सूर्य प्राप्त हुआ। यहाँ सूर्य विश्व-सृजन का कारक है। वायु-पुराण तथा ब्रह्माण्ड-पुराण में भी विश्व-सृष्टि हिरण्यगर्भ से बतायी गयी है। ब्रह्माण्ड-पुराण में लिखा गया है कि विश्व-सृष्टि के तत्वों में हिरण्यगर्भ से ब्रह्मा अवतरित हुए। यही ब्रह्मा समस्त जीवों की आत्मा होने के कारण परमात्मा का अंश कहलाये। इसी हिरण्यगर्भ से लोको की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माण्ड-पुराण में हिरण्यगर्भ को चार मुखों

वाला माना गया है। हिरण्यगर्भ से ही सूर्य, सोम, रुद्र, और जल की उत्पत्ति हुई। इनके पश्चात् आकाश और पृथ्वी की रचना हुई। इस सिद्धान्त का मानना है कि ब्रह्माण्ड बीज के रूप में सूर्य प्रधान एवं मुख्य कारक है जिससे सम्पूर्ण विश्व की रचना हुई है। इसके केन्द्र को हिरण्गर्भ के नाम से सम्बोधित करते हैं जो सत् और असत् पदार्थों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है।

बोध प्रश्न—2 बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- तैत्तरीय उपनिषद् के अनुसार ब्रह्माण्ड का उद्भव किस से माना गया है-

(क) जीवात्मा (ख) ब्रह्मात्मा

(ग) सूर्य (घ) हिरण्यगर्भ

2- ब्रह्माण्ड का प्रमुख वास्तुकार किस को माना गया है -

(क) विश्वकर्मा (ख) पुरुष

(ग) सूर्य (घ) हिरण्यगर्भ

3- भागवत पुराण के अनुसार विराट पुरुष के पाद में कौन सा लोक है -,

(क) सूर्यलोक (ख) पृथ्वी लोक

(ग) पाताल लोक (घ) स्वर्गलोक

4- महाभारत में ब्रह्माण्ड का सृजन किस से बताया गया है-

(क) जीवात्मा (ख) ब्रह्मात्मा

(ग) सूर्य (घ) अव्यक्त

5-विष्णु-पुराण में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस से बतायी गयी है

(क) सूर्य (ख) विराट पुरूष

(ग) ब्रह्म (घ) हिरण्यगर्भ

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति विषयक तत्वों को तथा वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत, ब्रह्माण्डोत्पत्ति को जाना। वैदिक वाङ्मय में न केवल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति अपितु आकृति के विषय में भी वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों में आपने- विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति, विराट पुरूष से ब्रह्माण्डोत्पत्ति, ब्रह्म से ब्रह्माण्डोत्पत्ति तथा सूर्य से ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों के विषय में जाना।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

प्राकृतिक	-	प्रकृति से संबन्धित
मतवैभिन्य	-	मान्यताओं में विविधता
पाश्चात्य	-	पश्चिम के, बाद के
ब्रह्माण्डोत्पत्ति	-	ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति
व्योम	-	आकाश
समष्टिगत	-	सम्पूर्ण
व्यष्टिगत	-	व्यक्तिगत

दक्षिणावर्त्त	-	दक्षिण दिशा की और
स्रष्टा	-	रचना करने वाला
विखण्डन	-	टूटना
स्थिर दशा	-	एक स्थिति में स्थिर रहना
अतीत	-	भूतकाल, बीता हुआ समय
प्रसरणशीलता	-	फैलने की निरन्तरता
सर्वाधिक	-	सबसे अधिक
सूक्ष्म	-	अत्यधिक छोटा
दिक्-काल	-	दिशा और काल
अकस्मात्	-	अचानक
रचयिता	-	रचने वाला
खगोलीय पिण्ड	-	आकाश में दिख रहे तारे, ग्रह आदि पिण्ड
जिज्ञासु	-	जानने की इच्छा से युक्त
असंख्य	-	अनन्त संख्या वाले, जिनको गिना न जा सके
शक्तिसम्पन्न	-	शक्ति से युक्त
प्रारम्भिक	-	शुरुआती
अवलोकन	-	देखना
जिज्ञासा	-	जानने की इच्छा
सृष्टिविषयक	-	सृष्टि से संबन्धित
ऊर्ध्वलोक	-	ऊपर के लोक
अधोलोक	-	नीचे के लोक
अभाव	-	न होना
आच्छादित	-	ढका हुआ
व्यापकता	-	अस्तित्त्व का व्याप्त होना
वैदिक	-	वेदों से संबन्धित
चराचर	-	स्थिर तथा अस्थिर
पौराणिक	-	पुराणों से संबन्धित
विद्यमान	-	उपस्थित होना
सृजन करना	-	उत्पन्न करना, रचना करना
खगोलशास्त्र	-	आकाशीय पिण्डों का शास्त्र
विपरीत	-	उल्टा
भू-भ्रमण	-	भूमि का घूमना

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोधप्रश्नोत्तर—1 लघूत्तरीय प्रश्न -

1-आकाशगंगा, नीहारिका, तारामण्डल तथा सौर परिवार।

2-स्वर्गगंगा, आकाशगंगा, मन्दाकिनी, देवगंगा, क्षीरनदी, आकाशनदी, आकाशयज्ञोपवीत आदि कहा है।

3-देवयानी और त्रिभुज

4-आठ ग्रह, उनके 172 ज्ञात उपग्रह, पाँच बौने ग्रह और अरबों छोटे पिंड शामिल हैं। इन छोटे पिंडों में क्षुद्रग्रह, बर्फीला काइपर घेरा के पिंड, धूमकेतु, उल्कायें और ग्रहों के बीच की धूल शामिल हैं।

5-आंतरिक ग्रह बुध, शुक्र, पृथ्वी तथा मंगल है।

बोधप्रश्नोत्तर—2 बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- (ग) 2- (घ) 3- (ग) 4- (ख) 5- (क)

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्तः-आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

2. बृहत्संहिता-आचार्यवराहमिहिर, प-अच्युतानन्दझा,चौखम्बाविद्याभवनवाराणसी

3.ऋग्वेद, सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

4.अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

5. वैदिक ब्रह्माण्ड का परिचय-उ.मु.वि.वि.हल्द्वानी

6.मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रतिष्ठान वाराणसी, 2002

7.पुराणविमर्श - गीताप्रेस गोरखरपुर

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भुवनकोश विमर्श, प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स दिल्ली, वर्ष 2004

2.यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2015

3.श्रीमद्भागवतपुराणम्, वेदव्यास,गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2059

4.ऋग्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2016

5.गोलपरिभाषा, झा, सीताराम, दरभङ्गा, बिहार, श्रीसीताराम पुस्तकालय, संवत् 2027

6.श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 20486

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रह्माड का अर्थ एवं स्वरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2. ब्रह्माण्ड के सदस्यों के बारे में विस्तार से बताइये।

3. ब्रह्माण्ड की परिभाषा तथा विषयों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

4. ब्रह्माण्डोत्पत्ति के वैदिक सिद्धान्तों की विस्तार से वर्णन कीजिए।